उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

बी.ए. कर्मकाण्ड (पंचम सेमेस्टर)

BAKA(N)-330

षोडश संस्कार परिचय

मानविकी विद्याशाखा

भारतीय कर्मकाण्ड विभाग

तीनपानी बाईपास रोड, ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139
फोन नं .05946- 261122 , 261123
टॉल फ्री न0 18001804025
Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन समिति (मार्च-2023)

अध्यक्ष कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी	**प्रोफेसर रामराज उपाध्याय** अध्यक्षचर, पौरोहित्य विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
प्रोफेसर रेनू प्रकाश - (संयोजक) निदेशक, मानविकी विद्याशाखा उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी	**प्रोफेसर उपेन्द्र त्रिपाठी** अध्यक्ष, वेद विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी **असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक,** वैदिक **ज्योतिष-भारतीय कर्मकाण्ड विभाग** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**प्रोफेसर रामानुज उपाध्याय** अध्यक्ष, वेद विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

पाठ्यक्रम सम्पादन, संयोजन एवं समन्वयक

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, वैदिक ज्योतिष—भारतीय कर्मकाण्ड विभाग

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. रंजीत दूबे असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी) वैदिक ज्योतिष एवं भारतीय कर्मकाण्ड विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1/3**	**1,2,3 /1**
डॉ. प्रमोद जोशी असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी) वैदिक ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1/2/3**	**4/1,2/3**
डॉ. विजय रतूड़ी असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एसी) वैदिक ज्योतिष एवं भारतीय कर्मकाण्ड विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**2/3**	**1,2/2**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, वैदिक ज्योतिष एवं भारतीय कर्मकाण्ड विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**3**	**4**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष- 2025

प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: -

ISBN NO. -

नोट : - (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

षोडश संस्कार परिचय BAKA(N)-330

(बी.ए. कर्मकाण्ड (पंचम सेमेस्टर)

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – प्राग्जन्म संस्कार	**पृष्ठ-2**
इकाई 1: संस्कार परिचय एवं प्रयोजन	3-19
इकाई 2: गर्भाधान संस्कार	20-29
इकाई 3: पुंसवन संस्कार	30-40
इकाई 4: सीमन्तोन्नयन संस्कार	41-56
द्वितीय खण्ड - जन्मोत्तर संस्कार	**पृष्ठ- 57**
इकाई 1: जातकर्म-नामकरण संस्कार	58-78
इकाई 2: निष्क्रमण एवं अन्नप्राशन	79-96
इकाई 3: चूड़ाकरण संस्कार	97-116
इकाई 4: कर्णवेध संस्कार	117-131
तृतीय खण्ड – अन्य संस्कार	**पृष्ठ- 132**
इकाई 1: अक्षराम्भ-विद्यारम्भ एवं उपनयन संस्कार	133-145
इकाई 2: वेदारम्भ, केशान्त एवं समावर्तन	146-167
इकाई 3: विवाह संस्कार	168-182
इकाई 4 : अन्त्येष्टि संस्कार	183-190

बी.ए. (पंचम सेमेस्टर) कर्मकाण्ड

षोडश संस्कार परिचय

BAKA(N)-330

खण्ड - 1
प्राक् संस्कार

इकाई – 1 संस्कार परिचय एवं प्रयोजन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 संस्कार परिचय

1.4 संस्कारों का प्रयोजन

बोध प्रश्न

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)–330, खण्ड 1 के प्रथम इकाई **संस्कार परिचय एवं प्रयोजन** से सम्बन्धित है। भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन एवं समृद्ध सांस्कृतिक धरोहरों में से एक है। यहाँ जीवन के प्रत्येक आयाम को धर्म, दर्शन और आचारशास्त्र से जोड़ा गया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य के जीवन को पवित्र, अनुशासित एवं लक्ष्यपूर्ण बनाने के लिए जिन विधि-का प्रयोग किया जाता है उन्हें **"संस्कार"** कहा जाता है। संस्कार केवल धार्मिक कर्मकाण्ड भर नहीं हैं, बल्कि ये जीवन को शुद्ध करने, व्यक्तित्व को निखारने और आत्मा को उन्नत करने की प्रक्रिया हैं। मनुस्मृति में कहा गया है कि –

"जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।"

अर्थात्, मनुष्य जन्म से साधारण होता है, किन्तु संस्कारों से वह श्रेष्ठ बनता है।

भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण इतिहास में यदि सबसे विशिष्ट तत्व को चिन्हित करना हो, तो निःसंदेह वह है – **संस्कारों की परंपरा**। भारत ने विश्व को न केवल आध्यात्मिक चिंतन और दर्शन प्रदान किया है, बल्कि जीवन को अर्थपूर्ण और अनुशासित बनाने वाली जीवन-व्यवस्था भी दी है। यहाँ मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के हर चरण को शुद्ध और पवित्र बनाने के लिए जो विधि-विधान विकसित किए गए, उन्हें संस्कार कहा जाता है। ये संस्कार जीवन के आचरण को केवल धार्मिक आधार ही नहीं देते, बल्कि सामाजिक और आध्यात्मिक अनुशासन का भी निर्माण करते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि

- ❖ संस्कार किसे कहते हैं।
- ❖ संस्कारों का मानव जीवन में क्या योगदान हैं।
- ❖ संस्कारों की उपयोगिता क्या हैं।
- ❖ संस्कारों के आधार पर क्या- क्या प्राप्त किया जा सकता है।

1.3 संस्कार परिचय

भारतीय वैदिक सनातन परम्परा अथवा मानव धर्म की संस्कृति 'संस्कारों' पर ही आधार है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिए अथवा उसे अक्षुण्ण

बनाये रखने के लिए ही संस्कारों का निर्माण किया था। मानव जीवन में इसका महत्व धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु वैज्ञानिक दृष्टि से भी है । सम्प्रति भारतीय संस्कृति को अविच्छिन्न बनाये रखने में संस्कारों का अद्वितीय योगदान है।

भारत की प्राचीन महत्ता एवं गौरव-गरिमा को गगनचुम्बी बनाने में जिन अनेक सत्प्रवृत्तियों को श्रेय मिला, उसमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण थी यहाँ की संस्कार पद्धति, जो प्रेरणापद प्रक्रिया पर अवलम्बित है। वेद मन्त्रों के संस्कार उच्चारण से उत्पन्न होने वाली धवनि, तरंगें, यज्ञीय उष्मा से सम्बद्ध होकर अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करती है। जो भी व्यक्ति इस वातावरण से एक होते हैं या जिनके लिए भी इस पुण्य प्रक्रिया का प्रयोग होता है वे उससे प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है, जिससे व्यक्तियों के गुण, कर्म, स्वभाव आदि की अनेकों विशेषतायें उपचार पद्धति है जिसका परिणाम व्यर्थ नहीं जाने पाता । व्यक्तित्व के विकास में इन उपचारों से आश्चर्यजनक सहायता मिलती देखी जाती है। संस्कारों में जो विधि-विधान हैं उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव मनुष्य को सत्मार्गगामी होने के उपयुक्त बनाता है।

संस्कार शब्द का सर्वजन स्वीकृत अर्थ है - गुणयुक्त, उत्कृष्ट या श्रेष्ठता से परिपूर्ण । यद्यपि संस्कार शब्द के अनेक अर्थ शब्दकोषों में दिए गये हैं तथापि जिस धार्मिक अर्थ में यह रूढ है वह है - 'शरीर संस्कार' । कायिक, वाचिक, मानसिक, सांसर्गिक, औत्पत्तिक दोषों को शुद्ध करने की प्रक्रिया को संस्कार' कहते हैं।

परिवार को संस्कारवान बनाने का कौटुम्बिक जीवन को सुविकसित करने का एक मनोवैज्ञानिक एवं धर्मानुभोटिल प्रक्रिया को संस्कार पद्धति कहा जाता है। कृषोत्सव के वातावरण में देवताओं की साक्षी, अग्नि देव का सान्निध्य, धर्म भावनाओं से ओत-प्रोत मनोभूमि, स्वजन- सम्बन्धियों की उपस्थिति पुरोहित द्वारा कराया हुआ धर्मकृत्य, यह सब मिलकर संस्कार से सम्बन्धित व्यक्ति को एक विशेष प्रकार की मानसिक अवस्था में पहुँचा देते हैं और उस समय जो प्रतिज्ञायें की जाती हैं – जो प्रक्रियायें कराई जाती हैं वे अपना गहरा प्रभाव सूक्ष्म मन पर छोड़ती हैं और वह बहुधा इतना गहरा एवं परिपक्व होता है कि उसकी छाप अमिट नहीं तो चिरस्थायी अवश्य बनी रहती हैं।

संस्कार या संस्कृति संस्कृत भाषा के शब्द है, जिसका अर्थ है - मनुष्य का वह कर्म, जो अलंकृत और सुसज्जित हो। प्रकारान्तर से संस्कृति शब्द का अर्थ है - धर्म। संस्कृति और संस्कार में कोई व्यापक अन्तर नहीं है। दोनों का अर्थ लगभग समान है। हिन्दू धर्म में मुख्य रूप से ‘षोडश संस्कार’ प्रचलित

माने गये है, जो मनुष्य की जाति और अवस्था के अनुसार किये जाने वाले धर्म कार्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। हिन्दू धर्म दर्शन की संस्कृति यज्ञमय है, क्योंकि सृष्टि ही यज्ञ का परिणाम है, उसक अन्त भी यज्ञमय है। इस यज्ञमय क्रिया में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया तक सभी संस्कार यज्ञमय संस्कार के रूप में ही जाने और माने जाते हैं। हिन्दू धर्म के षोडश संस्कार ये केवल कर्मकाण्ड नहीं है जिन्हें यूँ ही ढोया जा रहा है, अपितु पूर्णत: वैज्ञानिक एवं तथ्यपरक है। उनमें से कुछ का तो देशका परिस्थिति के कारण लोप हो गया है और कुछ का एक से अधिक संस्कारों में समावेश, कुछ का अब भी प्रचलन है और कुछ प्रतीक मात्र रह गये हैं, जबकि सभी सोलह संस्कारों को जीवन में धारण करना मानवमात्र का कर्तव्य होना चाहिये।

प्राचीन भारतीय जीवन का दृष्टिकोण एवं उद्देश्य यह था कि जब तक मनुष्य जीवित रहे, वह सर्वांगीण उन्नति करें और मृत्यु के अनन्तर स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त करे। जीवन के सर्वांगीण (शरीर और मन) विकास की व्यवस्था की गयी है। संस्कार का अर्थ है वह प्रक्रिया जिसके करने से मनुष्य अथवा पदार्थ किसी कार्य के लिए उपयोगी बन जाता है। अर्थात् किसी वस्तु में योग्यता का आधान करने वाली क्रियाओं को 'संस्कार' कहा जाता है। 'गुणान्तराधान संस्कारः' अर्थात् किसी वस्तु में अन्य गुणों का आधान करना 'संस्कार' है।

संस्कारों के द्वारा प्राचीन आर्य ऋषियों ने जीवन के प्रत्येक अंग को गुणों से भरने एवं विकसित करने का सद् प्रयास किया। उन्होंने संस्कारों को धार्मिक रूप दिया और उपनिषदों, सूत्रों ग्रन्थों एवं स्मृतियों में उनको पूर्ण व्यवस्थित रूप में वर्णन किया।

वेदों में संस्कार शब्द उपलब्ध नहीं होता। संस्करोति शब्द बनाने या चमका देने के अर्थ में उपनिषदों में 'प्रयुक्त हुआ है -

तस्मादेष एवं यज्ञ स्तस्य मतश्च वाक् ध वर्तिनी ।
तयोरन्तरां मनसा संस्करोति ब्रह्मा वाचा होता ।।

छान्दग्योपनिषद् ४/१६/१-२

जैमिनी के सूत्रों में संस्कार शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।

(जैमिनी सूत्र ३/१/३, ३/८/३, ०/२/९, ९/४/३३, १०/१/२ आदि)

जैमिनी सूत्र की शबर टीका में संस्कार शब्द का इस प्रकार अर्थ किया गया है.

संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति कस्यविदर्यस्य ।

(जैमिनी सूत्र ३/१/३ शबर टीका)

अर्थात् संस्कार उसका नाम है जिसके हो जाने पर पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के योग्य हो जाते है क्रमशः शबर कथित अर्थ ही संस्कार के लिए रूढ़ हो गया। संस्कार किए जाने से उत्पन्न योग्यता दो प्रकार की होती है

१. प्रथमतः, संस्कार किए जाने से व्यक्ति वेदाध्ययन या गृहस्थाश्रम प्रवेश आदि क्रियाओं के योग्य हो जाता था।

२. द्वितीयतः संस्कार करने से वीर्य अथवा गर्भादि के विभिन्न दोषों का परिहन हो जाता था। इन दोनों योग्यताओं पर बल दिए जाने के कारण धीरे-धीरे भारत के जन-जीवन में संस्कारों का प्रारम्भ हो गया। स्मृति काल में यह अनिवार्यता इतनी बढ़ी कि संस्कार उपनयन संस्कार होने से ही द्विजत्व सिद्ध होने लगा- ''संस्कारात् द्विज उच्यते।'

भारतवर्ष में वेदों का हिन्दू धर्म का आदि स्रोत माना गया है। जैसा कि कहा जा चुका है कि वेदों में न तो संस्कार शब्द व्याप्त है और न ही किसी संस्कार के प्रति निश्चित विधि या निषेध मिलते हैं। वस्तुतः संस्कृति और संस्कार का शाब्दिक अर्थ एक ही है, किन्तु इनके वास्तविक अर्थ को देखने से यह ज्ञात होता है कि संस्कृति साध्य है और संस्कार साधन। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि आचार्यो द्वारा विहित तथा आज तक प्रचलित संस्कारों से ही हमारी संस्कृति जीवित है। संस्कार सम्पूर्ण मानव जीवन से सम्बन्धित है। सभ्यता के आरम्भ में जीवन आज की अपेक्षा नितान्त साधारण या और वह विविध खण्डों में विभक्त नहीं हुआ था, सामाजिक संस्थायें, विश्वास, भावनायें, कलायें तथा विज्ञान आदि परस्पर एक दूसरे से मिश्रित थे। संस्कार जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त थे। प्राचीनकाल में धर्म तथा सर्वस्पर्शी तत्व था तथा कर्मकाण्ड जीवन में सभी सम्भव घटनाओं को शुद्धि तथा स्थायित्व प्रदान करते थे और इस प्रयोजन के लिए उन्होंने संसार के समस्त नैतिक तथा भौतिक साधनों का उपयोग संसार के समस्त नैतिक तथा भौतिक साधनों का उपयोग किया, जिन तक मनुष्य की पहुँच थी। संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना था जिससे वह अपने को मानवीय तथा अति मानव शक्तियों से पूर्ण संसार के अनुरूप बना सके।

संस्कार की व्युत्पत्ति, अर्थ, एवं परिभाषा

'संस्कार' शब्द् 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृञ्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर 'संपरिभ्यां करोती भूषणे' इस

पाणिनीय सूत्र से भूषण अर्थ में 'सुट' करने पर सिद्ध होता हैं इसका अर्थ है संस्करण, परिष्करण, विमलीकरण तथा विशुद्धकिरण आदि। संस्कार शब्द का दूसरी भाषा में यथातथ्य अनुवाद करना असम्भव है। अंग्रेजी के सिरीमनी और लैटिन के सिरीमोनिया शब्दों में संस्कार शब्द का अर्थ व्यक्त करने की क्षमता नहीं है। इसकी अपेक्षा सिरीमेनी शब्द का प्रयोग संस्कृत कर्म अथवा सामान्य रूप से धार्मिक क्रियाओं के लिए अधिक उपयुक्त है। संस्कार शब्द का अधिक उपयुक्त पर्याय अंग्रेजी का सैक्रामेण्ट शब्द है - जिसका अर्थ है - धार्मिक विधि विधान अथवा कृत्य जो आन्तरिक तथा आत्मिक सौन्दर्य का बाह्य तथा दृश्य प्रतीक माना जाता है।

वीरमित्रोदय में 'उद्धृत संस्कार की परिभाषा है.

आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेषः संस्कारः ॥

विधिसहित संस्कारों के अनुष्ठान से संस्कारित व्यक्ति में विलक्षण तथा अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भव हो जाता है। संस्कृति की भूमि पर संस्कार आधारित है। संस्कार ही मानव धर्म या संस्कृति के जन्म और उत्कर्ष का कारण एवं साधन है। संस्कार का सामन्य अर्थ है- संस्कृत करना या विशुद्ध करना। किसी वस्तु को विशेष क्रियाओं द्वारा उत्तम बना देना ही 'संस्कार' है। सामान्य मानव जीवन को विशेष प्रकार की धार्मिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है, जिससे कि वह जीवन में परमोत्कर्ष को प्राप्त कर सकें। ये विशिष्ट धार्मिक क्रियायें ही 'संस्कार' है। ये संस्कार ही प्रत्येक जन्म में संगृहीत होते चले जाते हैं, जिससे कर्मों का एक विशाल भण्डार बनता जाता है। इसे 'संचित कर्म' कहते है। इन संचित कर्मों का कुछ भाग एक जीवन में भोगने के लिए उपस्थित रहता है और यही जीवन प्रेरणा का कार्य करता है। अच्छे-बुरे संस्कार होने के कारण मनुष्य अपने जीवन में प्रेरणा का कार्य करता है। फिर इन कर्मों से अच्छे-बुरे नए संस्कार बनते रहते हैं, तथा इन संस्कारों की एक अंतहीन श्रृंखला बनती चली जाती है, जिससे मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

संस्कारों की संख्या एवं मान्य संस्कार-

संस्कारों का प्रचलन हमारे देश में वैदिक काल से ही है, क्योंकि इसके प्रमाण हमें वैदिक साहित्य में उपलब्ध हो जाते हैं। वैदिक साहित्य गृह्यसूत्र साहित्य स्मृति साहित्य तथा काव्यग्रन्थों में संस्कारों की परिभाषायें इनकी संख्या इनकी विधि आदि का वर्णन उपलब्ध हो जाता है। ऋग्वेद में चार संस्कारों का वर्णन उपलब्ध होता है - १. गर्भाधान २. पुंसवन ३. विवाह तथा ४. अन्त्येष्टि अथर्ववेद में एकादश संस्कारों का वर्णन मिलता है - गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण,

कर्णवेध, अन्नप्राशन, उपनयन, समावर्तन तथा अन्त्येष्टि। पारस्करगृह्यसूत्र में ग्यारह संस्कारों में दो संस्कारों को निष्क्रमण तथा केशान्त को और जोड़ दिया गया है इस प्रकार इनकी संख्या १३ कर दी गयी है। बौधायन गृह्यसूत्र में केशान्त को नहीं माना गया है। इसमें उपनयन संस्कार के पहले कर्णवेध को जोड़ा गया है और इस प्रकार बोधायन गृह्यसूत्र में भी १३ संस्कार माने गये हैं। बाराह गृह्यसूत्र में भी १३ संस्कारों का वर्णन है । दन्तोत्पत्ति, वेदव्रत तथा गोदान ये तीन संस्कार पहले के गृह्यसूत्रों में नहीं है तथा अन्य गृह्यसूत्रों में निर्दिष्ट निष्क्रमण, केशान्त तथा अन्त्येष्टि इन संस्कारों का वर्णन वाराह गृह्यसूत्र में नहीं है ।

वाल्मीकीय रामायण में गर्भाधान, नामकरण, उपनयन, विवाह तथा अन्त्येष्टि पाँच संस्कारों का

वर्णन मिलता है। महाभारत में – गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, विवाह, गोदान, उपाकर्म तथा अन्त्येष्टि इन तेरह संस्कारों का वर्णन मिलता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सोलह संस्कारों की मान्यता दी है –

गर्भाद्या मृत्युपर्यन्ता: संस्कारा: षोडशैव हि।

वक्ष्यन्ते तं नमस्कृप्यानन्तविद्यं परमेश्वरम्।।

ये संस्कार हैं – गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, गृहाश्रम, वानप्रस्थ, सन्यास तथा अन्त्येष्टि।

संस्कार बोधक चक्र

क्रम संख्या	**स्थान**	**संस्कारों की संख्या**
१	आश्वालायनगृह्यसूत्र	११
२	पारस्करगृह्यसूत्र	१३
३	बोधायनगृह्यसूत्र	१३
४	वाराहगृह्यसूत्र	१३

५	वैखानसगृह्यसूत्र	१८
६	गौतमधर्मसूत्र	४०
७	मनुस्मृति	१३
८	याज्ञवल्क्यस्मृति	१३
९	लौगाक्षिस्मृति	११
१०	मार्कण्डेयस्मृति	१२
११	व्यासस्मृति	१६
१२	आंगिरसस्मृति	२५
१३	जातुकर्ण्यस्मृति	१६
१४	हारीतस्मृति	१६

हिन्दू संस्कार विधि के लेखक डॉ0 राजबलि पाण्डेय ने समस्त संस्कारों को पाँच विभागों में विभाजित किया है -

1. प्राग्जन्म संस्कार – गर्भाधान, पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन।

2. बाल्यावस्था के संस्कार - जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण एवं कर्णवेध |

3. शैक्षणिक संस्कार - विद्यारम्भ, उपनयन एवं वेदारम्भ।

4. विवाह संस्कार – गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने हेतु संस्कार।

5. अन्त्येष्टि संस्कार – मृत्यु के पश्चात् किया जाने वाला संस्कार।

जिस प्रकार किसी मलिन को धो-पोंछकर शुद्ध पवित्र बना लिया जाता है अथवा जैसे सुवर्ण को आग में तपाकर उसके मलों को दूर किया जाता है और उसके मल जल जाने पर सुवर्ण विशुद्ध रूप में चमकने

लगता है, ठीक उसी प्रकार से संस्कारों के द्वारा जीव के जन्म-जन्मान्तरों से संचित मलरूप निकृष्ट कर्म-संस्कारों का भी दूरीकरण किया जाता है। यही कारण है कि हमारे सनातन धर्म में बालक के गर्भ में आने से लेकर जन्म लेने तक और फिर बूढ़े होकर मरने तक संस्कार किये जाते हैं। जैसा कि शास्त्र में कहा गया है—

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः ।
निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः ॥

गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि कर्म तक द्विजमात्र के सभी संस्कार वेद-मन्त्रों के द्वारा ही होते हैं। संस्कार से मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त होता है। संस्कारों की मान्यता में कुछ मतभेद भी हैं। गौतम धर्मसूत्र (11818) में 40 संस्कार माने गए हैं--' चत्वारिंशत् संस्कारैः संस्कृतः । ' महर्षि अंगिरा 25 संस्कार मानते हैं। परन्तु व्यास स्मृति में 16 संस्कार माने गये हैं। तदनुसार सोलह संस्कारों के नाम इस प्रकार हैं-

1. गर्भाधान संस्कार

यह संस्कार दंपति के लिए संतानोत्पत्ति से पूर्व किया जाता है। इसका उद्देश्य उत्तम एवं संस्कारित संतान की प्राप्ति है। ऋग्वेद में संतानोत्पत्ति को केवल शारीरिक क्रिया न मानकर आध्यात्मिक उत्तरदायित्व बताया गया है। गर्भाधान संस्कार यह सुनिश्चित करता है कि भावी पीढ़ी में श्रेष्ठ संस्कार स्थापित हों।

2. पुंसवन संस्कार

गर्भधारण के तीसरे महीने में किया जाने वाला यह संस्कार शिशु के स्वस्थ विकास और पुत्र-प्राप्ति की मंगल कामना से जुड़ा है। यह गर्भस्थ शिशु के शारीरिक और मानसिक विकास को प्रभावित करने वाला माना जाता है।

3. सीमन्तोन्नयन संस्कार

गर्भवती स्त्री के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए यह संस्कार विशेष महत्व रखता है। गर्भवती माता को सम्मान, स्नेह और शांति प्रदान करना ही इसका उद्देश्य है।

4. जातकर्म संस्कार

शिशु के जन्म के समय सम्पन्न होने वाला यह संस्कार शिशु का स्वागत करता है। इसमें शिशु को मधु और घृत चटाया जाता है और ईश्वर से उसके स्वस्थ जीवन की प्रार्थना की जाती है।

5. नामकरण संस्कार

जन्म के ग्यारहवें या बारहवें दिन किया जाने वाला यह संस्कार शिशु को पहचान प्रदान करता है। नाम केवल पहचान ही नहीं, बल्कि भविष्य की प्रेरणा भी है। शास्त्रों में अच्छे और अर्थपूर्ण नाम का विशेष महत्व बताया गया है।

6. निष्क्रमण संस्कार

जब शिशु पहली बार घर से बाहर निकलता है, तो उसका निष्क्रमण संस्कार किया जाता है। इसमें उसे सूर्य और चंद्रमा को दिखाया जाता है ताकि वह प्रकृति से जुड़ा रहे।

7. अन्नप्राशन संस्कार

छठे महीने में शिशु को पहली बार अन्न खिलाया जाता है। यह संस्कार जीवन के पोषण और स्वास्थ्य का प्रतीक है।

8. चूड़ाकरण संस्कार

बालक के तीन या पाँच वर्ष की अवस्था में उसका मुण्डन किया जाता है। यह संस्कार शारीरिक शुद्धि और मानसिक विकास से जुड़ा है।

9. कर्णवेध संस्कार

कर्णवेध, अर्थात् कान छेदन का संस्कार, स्वास्थ्य और आयु वृद्धि का प्रतीक है।

10. विद्यारंभ संस्कार

बालक जब पहली बार शिक्षा प्रारम्भ करता है, तब यह संस्कार सम्पन्न होता है। 'ॐ' या 'श्री' लिखवाकर उसे अक्षर ज्ञान कराया जाता है।

11. उपनयन संस्कार

यह संस्कार विशेष महत्व का है। इससे बालक का द्विजत्व प्रारम्भ होता है और उसे गुरु के संरक्षण में शिक्षा दी जाती है। यज्ञोपवीत धारण के साथ बालक वेदाध्ययन के लिए तैयार होता है।

12. वेदारंभ संस्कार

इसमें छात्र वेदों का अध्ययन प्रारंभ करता है। यह ज्ञान और विद्या की ओर जीवन की यात्रा का प्रारम्भ है।

13. समावर्तन संस्कार

शिक्षा पूर्ण होने पर यह संस्कार सम्पन्न होता है। यह जीवन में एक नये चरण, गृहस्थाश्रम में प्रवेश की तैयारी का संकेत है।

14. विवाह संस्कार

संस्कारों में यह सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। विवाह केवल व्यक्तिगत संबंध नहीं, बल्कि सामाजिक और धार्मिक अनुशासन है। इसका उद्देश्य परिवार, वंश और समाज की निरंतरता है।

15. वानप्रस्थ संस्कार

जब गृहस्थ अपने उत्तरदायित्व पूरे कर लेता है, तो वह वानप्रस्थ में प्रवेश करता है। यह संसार से धीरे-धीरे विरक्ति और आध्यात्मिक जीवन की ओर अग्रसर होने का प्रतीक है।

16. अन्त्येष्टि संस्कार

मृत्यु के बाद किया जाने वाला यह संस्कार जीवन की अंतिम यात्रा है। यह शरीर को पंचतत्व में विलीन करने और आत्मा की मोक्षगमन यात्रा के लिए प्रार्थना का संस्कार है।

इन संस्कारों का व्यासस्मृति एवं मनुस्मृति के विभिन्न श्लोकों में महत्त्वपूर्ण ढंग से वर्णन किया गया है। अतः इन संस्कारों का अनुष्ठान नितान्त आवश्यक है। इन संस्कारों के करने का अभिप्राय यह है कि जीव न जाने कितने जन्मों से किन-किन योनियों में अर्थात पशु, पक्षी, कीट, पतंग, सरीसृप, स्थावर, जग्डम, जलचर, थलचर, नभचर एवं मनुष्य आदि योनियों में भटकते हुए किस-किस प्रकार के निकृष्टतम कर्म-संस्कारों को बटोरकर साथ में ले आते हैं, इसका उन्हें पता नहीं चलता है। इन्हीं कर्म

संस्कारों को नष्ट-भ्रष्ट करके या क्षीण करके उनके स्थान में अच्छे और नये संस्कारों को भर देना या उत्पन्न कर देना ही इन संस्कारों का अभिप्राय या उद्देश्य होता है।

1.4 संस्कारों का प्रयोजन

भारतीय संस्कृति का मूलाधार धर्म और अध्यात्म रहा है। यहाँ जीवन को केवल भौतिक अस्तित्व नहीं माना गया, बल्कि उसे आत्मिक साधना और ईश्वर की प्राप्ति का साधन समझा गया है। यही कारण है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य को संस्कारित करने के लिए विधि-विधानों का एक दीर्घ क्रम बनाया गया, जिसे संस्कार कहा जाता है। संस्कार का शाब्दिक अर्थ है किसी वस्तु या व्यक्ति को शुद्ध करना, योग्य बनाना और उसमें श्रेष्ठ गुणों का आरोपण करना। वैदिक साहित्य में संस्कारों को जीवन का पवित्रतम आयाम बताया गया है। आचार्य शंकराचार्य ने भी संस्कार की परिभाषा देते हुए कहा है – "संस्कारो हि नाम आत्मनो गुणान्तराधानम्" अर्थात संस्कार वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा आत्मा में नये और श्रेष्ठ गुणों का आरोपण होता है। इस दृष्टि से संस्कार भारतीय जीवन को केवल धार्मिक कर्मकाण्ड का रूप नहीं देते, बल्कि वह आत्मा, मन और शरीर की शुद्धि का माध्यम हैं।

मनुस्मृति में स्पष्ट कहा गया है – "जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते। कर्मणा जायते विप्रः ब्रह्मज्ञानात् ब्राह्मणः॥" इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि मनुष्य जन्म से केवल सामान्य है, किन्तु संस्कारों के माध्यम से वह द्विज अर्थात पुनर्जन्मित, पवित्र और श्रेष्ठ कहलाता है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में जीवन की प्रत्येक अवस्था को संस्कारों से जोड़ा गया है। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक षोडश संस्कारों की परंपरा स्थापित की गई, जो मनुष्य के जीवन-चक्र को पूर्णता और पवित्रता प्रदान करती है।

संस्कारों की आवश्यकता इसलिए है कि वे मनुष्य को अज्ञान, अविवेक और असंयम से निकालकर विवेक, मर्यादा और साधना की ओर ले जाते हैं। ऋग्वेद में प्रार्थना की गई है कि संतान धर्मपरायण, बलवान और दीर्घायु हो। इसी भावना के लिए गर्भाधान और पुंसवन जैसे संस्कारों का विधान किया गया। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है – "सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः" अर्थात सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो और स्वाध्याय में प्रमाद मत करो। यह उपदेश संस्कारों का ही मूल है। उपनयन संस्कार शिक्षा की पवित्रता का प्रतीक है, विवाह संस्कार सामाजिक मर्यादा और उत्तरदायित्व का आधार है, और अन्त्येष्टि संस्कार यह सिखाता है कि मृत्यु भी जीवन का अंत नहीं,

बल्कि आत्मा की अनन्त यात्रा का एक पड़ाव है।

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का प्रयोजन बहुआयामी है। पहला प्रयोजन है व्यक्तिगत शुद्धि और आत्मिक उत्थान। संस्कारों के माध्यम से व्यक्ति अपने भीतर सद्गुणों का आरोपण करता है और दुराचारों से मुक्त होता है। दूसरा प्रयोजन है सामाजिक एकता और सामूहिकता। विवाह, नामकरण, अन्नप्राशन और अन्त्येष्टि जैसे संस्कार केवल व्यक्ति के नहीं होते, बल्कि सामूहिक रूप से सम्पन्न होते हैं। इससे परिवार, जाति और समाज में एकजुटता और सामंजस्य की भावना उत्पन्न होती है। तीसरा प्रयोजन है सांस्कृतिक निरंतरता। संस्कारों के माध्यम से भारतीय संस्कृति की परंपराएँ पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रहती हैं। यही कारण है कि सहस्राब्दियों बीत जाने पर भी भारतीय संस्कृति आज भी जीवित और गतिशील है।

महाभारत में कहा गया है – ‘‘संस्कारैर्हि भवन्त्येशा गुणा दोषविवर्जिताः’’ अर्थात संस्कारों से मनुष्य दोषों से मुक्त होकर गुणों से सम्पन्न होता है। यह कथन स्पष्ट करता है कि संस्कार केवल आचार-विचार का परिष्कार ही नहीं करते, बल्कि जीवन के दोषों और पापबोध को भी दूर करते हैं। इस दृष्टि से संस्कार आध्यात्मिक शुद्धि के साधन हैं। आधुनिक युग में जब समाज भौतिकवाद और व्यक्तिवाद की ओर बढ़ रहा है, तब संस्कारों की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। संस्कार हमें यह शिक्षा देते हैं कि जीवन केवल उपभोग और भोग का साधन नहीं, बल्कि आत्म-विकास और समाज की सेवा का अवसर है।

अतः भारतीय संस्कृति में संस्कारों की आवश्यकता अनिवार्य है, क्योंकि वे व्यक्ति को साधारण से असाधारण, शारीरिक से आत्मिक और स्वार्थ से परमार्थ की ओर ले जाते हैं। उनका प्रयोजन केवल व्यक्ति के भीतर सद्गुणों का आरोपण करना ही नहीं है, बल्कि समाज और संस्कृति की मर्यादा को बनाए रखना भी है। यही कारण है कि भारतीय जीवन-दर्शन में कहा गया है कि संस्कार बिना जीवन अंधकारमय है और संस्कारों से ही जीवन का उत्थान संभव है। वास्तव में संस्कार ही भारतीय संस्कृति की आत्मा हैं, जो मनुष्य को श्रेष्ठ बनाते हुए उसे ईश्वर से जोड़ते हैं।

संस्कारों का प्रयोजन मनुष्य को दैवी गुणों से युक्त करना है। संस्कारों से सत्व संशुद्धि होती है। सत्व-संशुद्धि पूर्णत: आध्यात्मिक और दैवी उपलब्धि हेतु वरण की जाती है। फलतः मनु महारा की उस उक्ति को बाह्य दृष्टि वाला व्यक्ति समझ ही नहीं सकता कि 'शरीर को ईश्वरीय' कैसे बनाया जा सकता है? पिता के वीर्य और माता के गर्भ जन्य दोषों को दूर करके निर्मल, निष्कलुष संतति का निर्माण संस्कारों के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है। माता-पिता की अभिलाषा और आकांक्षा को पूरा करने वाली संतति पृथ्वी पर जन्म ले सके इसके लिए तप और संस्कार ही माध्यम है। तप अदृश्य

को गर्भ में ढ़ालता है और संस्कार गर्भ को संस्कृत करता है। इसी विशिष्ट शरीर वाली संतति को मनु महाराज 'ब्रह्म निवास' योग्य मानते हैं-

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौंजीनिबन्धनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते॥
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ (मनुस्मृति २/२८-२९)

गर्भाधान, हवन, जातकर्म, चूडाकर्म, उपनयन संस्कारों से द्विजों के वीर्य एवं गर्भ से उत्पन्न दोष नष्ट हो जाते हैं। वेदाध्ययन, व्रत, होम, त्रैविद्य व्रत, देवर्षि पितृ तर्पण, पुत्रोत्पादन, महायज्ञ और यज्ञ के माध्यम से इस पार्थिव शरीर को ब्राह्मी तनु शरीर बनाया जाता है। वेदोक्त और धर्मशास्त्रोक्त संस्कारों से मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है।

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन तथा मुण्डन आदि संस्कार अपने निर्धारित काल में अवश्य कर लेना चाहिए। गर्भाधान के पश्चात् प्रायश: अनेक संस्कार एक वर्ष के भीतर किये जाते हैं। प्रसव के बाद नालच्छेदन, षष्ठी एवं बरही का स्नान, जातकर्म तथा नामकरण प्रायश: दस दिन से एक माह के भीतर कर लिये जाते हैं। इसी तरह से उपनयन संस्कार को भी सोलह वर्ष के भीतर न कराने से ब्रह्मतेज प्राप्ति में भारी क्षरण होता है।

संस्कारों को अवश्य करना चाहिए। इनसे अपूर्व लाभ होता है। इन्हें न करने से दैवीगुणों का विका नहीं होता है। संस्कारों को सम्पन्न करने में सामग्री, प्रक्रिया, प्रयोक्ता (वैदिक पुरोहित तथा यजमान) तथा काल का महत्व है । अतः इसके लिए मानसिक तैयारी अवश्य कर लेनी चाहिए। साथ ही वैकल्पिक व्यवस्था भी रखनी चाहिए।

संस्कार मानव जीवन के पथ को प्रशस्त करने का एक अति आवश्यक घटक है। अत: इसे प्रत्येक मनुष्य को स्वजीवन में धारण करना चाहिए। 'अकरणात करणं श्रेयः नहीं करने से करना अच्छा होता है। इसीलिए यह आवश्यक हो जाता कि जीवन में यदि करना है तो अच्छा ही करने की अभिलाषा होनी चाहिए। इस प्रकार संस्कार का महत्व एवं इसकी आवश्यकता मानव मात्र के लिए उपयोगी है।

बोध प्रश्न-

1. महर्षि अंगिरा के मत में कितने संस्कार हैं?

क. १३ ख. १८ ग. १६ घ. २५

2. गौतम मतानुसार संस्कारों की संख्या है -

क. १६ ख. ४० ग. १३ घ. २५

3. संस्कारों का प्रयोजन है?

क. समृद्धि प्राप्त करना ख. मनुष्य को दैवी गुणों से युक्त करना ग. अभिलाषा प्राप्ति घ. कोई नहीं

4. व्यासस्मृति में कितने संस्कारों का उल्लेख है?

क. १६ ख. २० ग. १८ घ. २५

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि भारतीय वैदिक सनातन परम्परा अथवा मानव धर्म की संस्कृति 'संस्कारों' पर ही आधारित है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिए अथवा उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए ही संस्कारों का निर्माण किया था। मानव जीवन में इसका महत्व धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु वैज्ञानिक दृष्टि से भी है। सम्प्रति भारतीय संस्कृति को अविच्छिन्न बनाये रखने में संस्कारों का अद्वितीय योगदान है। भारत की प्राचीन महत्ता एवं गौरव गरिमा को गगनचुम्बी बनाने में जिन अनेक सत्प्रवृत्तियों को श्रेय मिला, उसमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण थी यहाँ की संस्कार पद्धति, जो प्रेरणापद प्रक्रिया पर अवलम्बित है। वेद मन्त्रों के संस्कार उच्चारण से उत्पन्न होने वाली धवनि, तरंगें, यज्ञीय उष्मा से सम्बद्ध होकर अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करती है। जो भी व्यक्ति इस वातावरण से एक होते हैं या जिनके लिए भी इस पुण्य प्रक्रिया का प्रयोग होता है वे उससे प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है, जिससे व्यक्तियों के गुण, कर्म, स्वभाव आदि की अनेकों विशेषतायें उपचार पद्धति है जिसका परिणाम व्यर्थ नहीं जाने पाता। व्यक्तित्व के विकास में इन उपचारों से आश्चर्यजनक सहायता मिलती देखी जाती है। संस्कारों में जो विधि-विधान हैं उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव मनुष्य को सत्मार्गगामी होने के उपयुक्त बनाता है। परिवार को संस्कारवान बनाने का कौटुम्बिक जीवन को सुविकसित करने का एक मनोवैज्ञानिक एवं धर्मानुगत प्रक्रिया को संस्कार पद्धति कहा जाता है। कृषोत्सव के वातावरण में देवताओं की साक्षी, अग्नि देव का सान्निध्य, धर्म भावनाओं से ओत-प्रोत मनोभूमि, स्वजन-

सम्बन्धियों की उपस्थिति पुरोहित द्वारा कराया हुआ धर्मकृत्य, यह सब मिलकर संस्कार से सम्बन्धित व्यक्ति को एक विशेष प्रकार की मानसिक अवस्था में पहुँचा देते हैं और उस समय जो प्रतिज्ञायें की जाती हैं- जो प्रक्रियायें कराई जाती हैं वे अपना गहरा प्रभाव सूक्ष्म मन पर छोड़ती हैं और वह बहुधा इतना गहरा एवं परिपक्व होता है कि उसकी छाप अमिट नहीं तो चिरस्थायी अवश्य बनी रहती हैं। संस्कार या संस्कृति संस्कृत भाषा के शब्द है, जिसका अर्थ है. मनुष्य का वह कर्म, जो अलंकृत और सुसज्जित हो। प्रकारान्तर से संस्कृति शब्द का अर्थ है - धर्म

संस्कृति और संस्कार में कोई व्यापक अन्तर नहीं है। दोनों का अर्थ लगभग समान है। हिन्दू धर्म में मुख्य रूप से 'षोडश संस्कार' प्रचलित माने गये है, जो मनुष्य की जाति और अवस्था के 'अनुसार किये जाने वाले धर्म कार्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। हिन्दू धर्म दर्शन की संस्कृति यज्ञमय है, क्योंकि सृष्टि ही यज्ञ का परिणाम है, उसका अन्त भी यज्ञमय है। इस यज्ञमय क्रिया में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया तक सभी संस्कार यज्ञमय संस्कार के रूप में ही जाने और माने जाते हैं। हिन्दू धर्म के षोडश संस्कार ये केवल कर्मकाण्ड नहीं है जिन्हें यूँ ही ढोया जा रहा है, अपितु पूर्णतः वैज्ञानिक एवं तथ्यपरक है। उनमें से कुछ का तो देशकाल परिस्थिति के कारण लोप हो गया है और कुछ का एक से अधिक संस्कारों में समावेश, कुछ का अब भी प्रचलन है और कुछ प्रतीक मात्र रह गये हैं, जबकि सभी सोलह संस्कारों को जीवन में धारण करना मानवमात्र का कर्तव्य होना चाहिये।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

संस्कार – संस्कार का अर्थ है – संस्कृत करना अथवा विशुद्ध करना। किसी वस्तु में अन्य गुणों का आधान करना 'संस्कार' कहलाता है।

संस्कृत – विशुद्ध।

अक्षुण्ण - शाश्वत। जो निरन्तर गतिमान हो अर्थात् जो कभी रूके नहीं।

धार्मिक-धर्म से जुड़ा क्रिया पक्ष 'धार्मिक' कहलाता है।

अविच्छिन्न - जो कभी क्षीण न हो।

अलौकिक - लोक से इतर। दैवीय शक्ति को अलौकिक कहते है।

1. 7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ 2. ख 3. ख 4. क

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि - मूल लेखक- रामदैवज्ञ, टिका - प्रोफेसर रामचन्द्रपाण्डेयः

2. मुहूर्त्तपारिजात - पं. सोहन लाल व्यास

3. हिन्दू संस्कार पद्धति – डॉ0 राजबलि पाण्डेय

4. वीरमित्रोदय - आचार्य नारायण

5. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि

2. हिन्दू संस्कार पद्धति

3. वीरमित्रोदय

4. संस्कार विमर्श

5. षोडश संस्कार पद्धति

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कार से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।

2. संस्कारों के महत्व पर प्रकाश डालिये।

3. ज्योतिष शास्त्रोक्त संस्कार का विवेचन कीजिये।

4. संस्कारों की उपयोगिता पर निबन्ध लिखिये

इकाई – 2 गर्भाधान संस्कार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 गर्भाधान संस्कार

2.4 गर्भाधान संस्कार की परिभाषा

बोध प्रश्न

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)– 330, खण्ड 1 के इकाई 2 के **'गर्भाधान संस्कार'** से सम्बन्धित है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम और सर्वाधिक जीवंत संस्कृति मानी जाती है। इसकी महानता केवल दर्शन, योग और वेदांत तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के जीवन के प्रत्येक आयाम को संस्कारों की पवित्रता से जोड़कर चलती है। भारतीय मनीषियों का विश्वास रहा है कि मानव जीवन केवल भौतिक सुखों के लिए नहीं है, बल्कि यह आत्मिक उत्कर्ष और धर्मसंरक्षण का साधन है। - इसी कारण यहाँ जन्म से लेकर मृत्यु तक के प्रत्येक अवसर पर संस्कारों की व्यवस्था की गई है। इन संस्कारों का मूल उद्देश्य है - व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से शुद्ध करना, उसे जीवन के उच्चतम आदर्शों से जोड़ना तथा उसे समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी बनाना।

संस्कारों की इस शृंखला में **गर्भाधान संस्कार** का विशेष महत्त्व है। यह केवल संतानोत्पत्ति की जैविक प्रक्रिया का विधान नहीं है, बल्कि यह भावी जीवन की नींव रखने वाला संस्कार है। हमारे ऋषियों ने इसे जीवन के सोलह संस्कारों में प्रथम स्थान दिया है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य का शुद्ध, संयमित और आध्यात्मिक जीवन तभी संभव है जब उसका आरंभ ही पवित्रता और धर्मसम्मत रीति से हुआ हो। "संस्कारो हि मनुष्याणां जन्मभूमिकृतः स्मृतः" — यह स्मृति वचन स्पष्ट करता है कि जन्म का आधार ही संस्कार होना चाहिए।

भारतीय परंपरा मानती है कि संतानोत्पत्ति केवल परिवार विस्तार का साधन नहीं है, बल्कि यह धर्म, ऋषि, देव और पितरों के प्रति उत्तरदायित्व की पूर्ति है। मनुस्मृति में कहा गया है कि "सन्तानम् उत्पादयेत् पुत्रं धर्मार्थं न तु काम्यया" अर्थात संतानोत्पत्ति का उद्देश्य केवल काम-तृप्ति नहीं, बल्कि धर्म और लोककल्याण है। यही कारण है कि गर्भाधान संस्कार में दंपत्ति केवल शारीरिक संबंध ही नहीं बनाते, बल्कि वे देवताओं का आह्वान करते हैं, मंत्रों का उच्चारण करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनकी संतति शीलवान, गुणवान और धर्मनिष्ठ हो।

गर्भाधान संस्कार का महत्त्व केवल धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं है, बल्कि सामाजिक और वैज्ञानिक दृष्टि से भी अत्यधिक गहरा है। आधुनिक विज्ञान ने भी यह स्वीकार किया है कि गर्भाधान के समय माता-पिता की मानसिक स्थिति, आहार, विचार, वातावरण और भावनाएँ भावी संतान के व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं। हमारे ऋषियों ने इसी तथ्य को बहुत पहले समझकर गर्भाधान संस्कार का विधान किया, ताकि आरंभ से ही संतान का निर्माण श्रेष्ठ आदर्शों पर हो सके।

अतः प्रस्तावना के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति में गर्भाधान संस्कार जीवन का प्रथम और अनिवार्य संस्कार है, जो यह सुनिश्चित करता है कि मानव जीवन का प्रारंभ ही

पवित्रता और धर्ममय मार्ग से हो। यह केवल शारीरिक क्रिया नहीं, बल्कि यह वह पवित्र विधान है जिसमें संतान को देवत्व से जोड़ने, समाज को सुदृढ़ बनाने और संस्कृति को अमर बनाने की शक्ति निहित है। यही कारण है कि इसे भारतीय संस्कृति का जीवन-द्वार कहा जा सकता है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि -

- ग्रर्भाधान संस्कार किसे कहते हैं।
- ग्रर्भाधान संस्कार के महत्व को जान लेंगे।
- ग्रर्भाधान संस्कार की उपयोगिता क्या हैं।

2.3 गर्भाधान संस्कार

'**गर्भाधान**' शब्द दो पदों से मिलकर बना है गर्भ+आधान जिसका अर्थ है- स्थापित करना अथवा रखना। इस प्रकार गर्भाधान का शाब्दिक अर्थ है- पुरुष द्वारा बीजरूप शुक्र का स्त्री के गर्भाशय में स्थापित होना। शास्त्रों में स्त्री को क्षेत्र और पुरुष को बीज कहा गया है। जैसे बीज रोपण के लिए खेत रूपि भूमि आवश्यक है, उसी प्रकार पुरुष रूपी बीज का स्त्री रूपी क्षेत्र में यथोचित रूप से स्थापित होना ही गर्भाधान कहलाता है। परंतु यह केवल एक साधारण जैविक प्रक्रिया मात्र नहीं है। इस सृष्टि-विधान को धार्मिक और यज्ञमय बनाना, अर्थात् उसे संस्कारित करना ही संस्कार का कार्य है। सामान्यतः सभी जीवधारियों में स्त्री-पुरुष के संयोग से सहज ही सन्तानोत्पत्ति होती है, किन्तु यह प्रक्रिया केवल मैथुनी सृष्टि का पाशविक धरातल है। मनुष्य पशुओं से भिन्न है, क्योंकि उसे विवेक, आत्मनियंत्रण और संस्कृति का वरदान प्राप्त है। इसी कारण दीर्घदर्शी ऋषि-महर्षियों ने गर्भाधानादि संस्कारों का विधान किया, ताकि मानव मात्र को पाशविक प्रवृत्तियों से ऊपर उठाकर संयमित, संस्कारित एवं धार्मिक जीवन की ओर प्रवृत्त किया जा सके।

गर्भाधान संस्कार का उद्देश्य यही है कि संतानोत्पत्ति की प्रक्रिया केवल वासना या स्वेच्छाचार तक सीमित न रहकर, उसे धार्मिक अनुशासन और आध्यात्मिक चेतना से ओतप्रोत किया जाए। जब माता-पिता सुसंस्कृत और संयमित आचरण के साथ संतानोत्पत्ति करेंगे, तभी भावी पीढ़ी भी श्रेष्ठ गुणों और उच्च भावनाओं से सम्पन्न होगी। जैसे अंतःकरण की शुद्धि के लिए भगवद्भक्ति, शम, दम और तप आदि साधन बताए गए हैं, वैसे ही शरीर और बाह्य करणों की शुद्धि संस्कारों द्वारा होती है। गर्भाधान

संस्कार देखने में भले ही बाह्य क्रिया प्रतीत होता हो, किन्तु इसका गहन और स्थायी प्रभाव भावी संतान के मन, बुद्धि, चित्त और हृदय पर विलक्षण रूप से पड़ता है।

गर्भाधान संस्कार को प्रथम संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। गर्भाधान को प्राग्जन्म संस्कार कहते हैं। जातक का प्राग्जन्म के तीन संस्कार हैं - गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन। इन तीनों संस्कारों को सम्पन्न करने का अधिकार और दायित्व पिता का होता है। माता इसमें संवाहिका होती है। वह पति द्वारा सम्पन्न कराया जा रहा संस्कार शुद्ध भाव से धारण करती है। अत: पिता जागरूक न होने पर इन संस्कारों का अपलाप होता है। प्रसव के पश्चात् मानव शरीर धारण किया हुआ व्यक्ति अपने तप के माध्यम से अपने जीवन में बदलाव ला सकता है, परन्तु पिता द्वारा संस्कार न करने के कारण व्यक्ति के जीवन में शुभत्व उपस्थिति में अनेक विघ्न आते हैं। बहुत बार बहुसंख्य व्यक्तियों में जीवन को समझने की ऋषि दृष्टि ही उत्पन्न नहीं हो पाती है। अतः अनेक परिस्थितियों को देखते हुए एक ही दिन शुभ मुहूर्त में पुंसवन और सीमन्तोन्नयन दोनों संस्कारों का निर्वाह किया दजा सकता है। यह एक वैकल्पिक विधान है.

सीमन्तोन्नयनस्योक्तातिथिवासरराशिषु।
पुंसवं कारयेद् विद्वान सहैवैकदिनेऽथवा ।।

सनातन हिन्दू समाज संस्कारों को मानवोत्पत्ति के काल से अपरिहार्य मानता रहा है। पश्चिमी चिंत और उनके अनुयायी संस्कारों को आदिम युग के पश्चात् की प्रवृत्ति मानते हैं। यह दृष्टि उनको पश्चिमी जीवन के द्वारा विरासत में मिली है। भारतीय मत से सृष्टि सत्ययुग में सर्वश्रेष्ठ उपादानों से आरम्भ होती है। पश्चिमी मत से सृष्टि का धीरे-धीरे विकास होता है। अत: भारतीय समाज को अपने संस्कारों को सम्पूर्ण आस्था के साथ जीना चाहिए।

2.4 गर्भाधान संस्कार की परिभाषा -

जिस कर्म की द्वारा पति अपनी धर्मभार्या में अपना सत्व (वीर्य, बीज) स्थापित करता है, उसे

गर्भाधान कहते हैं – **"गर्भः संधार्यते येन कर्मणा तद् गर्भाधानमित्यनुगतार्थं कर्मनामधेयम्।"** (पूर्वमीमांसा, अध्याय १, पाद ४, अभिकरण २)

महर्षि शौनक के अनुसार जिस कर्म में स्त्री पति द्वारा प्रदत्त शुक्र धारण करती है, उसे गर्भालम्बन या गर्भाधान कहते हैं -

दो प्रकार के गर्भाधान-

निषिक्तो यत्प्रयोगेण गर्भः संधार्यते स्त्रिया।
तद् गर्भालम्भनं नाम कर्म प्रोक्तं मनीषिभिः ।।

पृथ्वी पर मनुष्य की उत्पत्ति दो प्रकार की है - १. दिव्य और २. योनिज। भगवान ब्रह्मा द्वारा सृष्टि के आरम्भ में १० ऋषियों की दिव्य उत्पत्ति हुई। ये १० ऋषि हैं - मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, वसिष्ठ, भृगु एवं नारद। इनमें से नारद के अतिरिक्त सभी ऋषियों ने अपनी धर्मभार्या के द्वारा सन्तानोत्पत्ति की। तभी से संस्कारों की भी उत्पत्ति हुई।

वैदिक एवं लौकिक प्रयोग -

आज का पश्चिमी समाज और उसका अनुगमन करने वाला भारतीय समाज का मानना है कि संस्कार बहुत बाद में प्रयुक्त हुए। अतः कतिपय इतिहासकार और ग्रन्थ लेखक यूरोप की भाष बोलते हुए लिखते हैं कि आदिम समाज में संस्कार नहीं था। गर्भाधान एक प्राकृतिक कर्म था। संस्कार रूप में गर्भाधान बहुत बाद में समाज में प्रविष्ट हुआ। उन्हें इस बात की कल्पना ही नहीं है कि हमारे ऋषि सर्वज्ञ और धर्म के आश्रय थे। सृष्टि के आरम्भ में ही वेद और वेद आश्रित संस्कार सनातन हिन्दू समाज में प्रवृत्त थे। अत: भारतवर्ष में दो प्रकार की मान्यता चल रही है। पहली मान्यता के अनुसार संस्कार सृष्टि के आरम्भ से प्रचलित हैं और दूसरी मान्यता के अनुसार संस्कार ईसा कुछ हजार वर्ष पूर्व आरम्भ हुए। दूसरी मान्यता हमारे लिए हास्यास्पद है। प्राचीन भारतवर्ष में पति वैदिक मन्त्र के द्वारा अपनी धर्मभार्या में गर्भाधान संस्कार करता था। यद्यपि गर्भाधान के अनेक वैदिक मन्त्र उपलब्ध थे पर उनमें 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु' सर्वप्रधान मन्त्र था। अनेक लोग अमंत्रक ही गर्भाधान करते थे। प्राचीन भारतवर्ष में ब्रह्मचर्य का पालन प्रायश: सभी लोग करते थे। महाभारतकाल से गर्भाधान हेतु सन्तोनगोपाल मन्त्र का प्रयोग आरम्भ हुआ। यह मन्त्र सरल और सर्वजनबोधगम्य था। फलत: अनेक दम्पत्ती गर्भाधान काल में इस मन्त्र का प्रयोग करते थे। मन्त्र इस प्रकार है-

ऊँ0 क्लीं देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गत:।। क्लीं ॐ।।

गर्भाधान से पूर्व के प्रयोग -

वीर, विद्वान, भाग्यवान्, राजा, ऋषि, देवतांश, कुलोद्धारक, वंशवर्द्धक आदि मनोभिलषित पुत्र की प्राप्ति के लिए गर्भाधान से पूर्व वैदिक प्रयोग (पुत्रेष्टियज्ञ) किये जाते थे। इन प्रयोगों की समाप्ति के साथ

प्रसाद रूप में चूर्ण बनाकर यज्ञकर्ता द्वारा यजमान भार्या को भक्षण हेतु दिया जाता था। इस चरू रूपी प्रसाद का भक्षण करने से संकल्पित सद्गुणों से युक्त पुत्र या पुत्री का जन्म होता था। कालान्तर में गर्भाधान से पूर्व अभिलाषाष्टक स्तोत्र, वंशवृद्धिकरंशकवच, हरिवंशपुराण का सप्ताह पाठ, दुर्गासप्तशती का शतचण्डीपाठ आदि प्रयोग बहुतायत में होने लगे। इन प्रयोगों को कराने के पश्चात् भी शुभमुहूर्त्त में गर्भाधान संस्कार करना अनिवार्य कर्म है। अतः गर्भाधान संस्कार के द्वारा माता-पिता अपनी इच्छा के अनुरूप संतान प्राप्त करते हैं। गर्भाधान संस्कार के द्वारा वंश, परिवार, समाज, देश और राष्ट्र का व्यापक अभ्युदय संभव है। अतः गर्भाधान संस्कार सृष्टि हित में अपूर्व व्यापक फल को प्रदान करता है। मात्र गर्भाधान संस्कार को अपना लेने से जीवन की समस्याओं का समाधान सम्भव है।

गर्भाधान की 'आयु

- अनेक ऋषिगण गर्भाधान की श्रेष्ठ आयु १८ वर्ष से ४० वर्ष मानते हैं।
- कतिपय ऋषिगण गर्भाधान की श्रेष्ठ आयु २० वर्ष से ४० वर्ष मानते हैं।
- महर्षि सुश्रुत के अनुसार कन्या की आयु १६ वर्ष तथा पुरूष की आयु २५ वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए- ऊनषोडश-वर्षायामप्राप्तः पंचविंशतम् ॥

गर्भाधान संस्कार के द्वारा मनुष्य पितृऋण से मुक्त होता है। ब्रह्मचर्य से ऋषिऋण तथा यज्ञ सेव समाप्त होता है। प्रत्येक मनुष्य के उपर तीन ऋण होते हैं - ऋषिऋण, देवऋण तथा पितृऋण। गर्भाधान संस्कार के द्वारा विद्वान, राजा, धनवान, वीर, कुशल या जैसा चाहे वैसी संतान माता-पिता प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए गर्भाधान के हेतु सुनिश्चित तिथि में संकल्पपूर्वक पूजन किया जाता है। अशुभ मुहूर्त में किया हुआ गर्भाधान अशुभ संतान को उत्पन्न करता है। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, चारित्रिक दोषों से 'युक्त संतानें प्रायश: अशुभकाल में किये हुए आधान के कारण उत्पन्न होती हैं। गर्भाधान एक ऐसा संस्कार है जो संतान के भीतर अदृश्य रूप में सभी गुणों को सुनियोजित करता है। परिवार, समाज एवं राष्ट्र को श्रेष्ठ संतान देने हेतु गर्भाधान मुहूर्त्त का महत्व सर्वश्रेष्ठ है।

अकस्मात् गर्भाधान होना और सुविचारित गर्भाधान करना दोनों के गुणों-प्रवृत्तियों में भावी शिशु अलग-अलग प्रभाव होता है । सुविचारित गर्भाधान से माँ-पिता अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप संतान उत्पन्न कर सकते हैं। यह यन्त्र प्रक्रिया साध्य और स्व संयम प्रक्रिया साध्य दोनों है। पति-पत्नी को श्रेष्ठ संतान प्राप्ति हेतु गर्भाधान के शुभत्व की पूर्ण तैयारी करनी चाहिए। अपने होने वाले शिशु में किन-किन गुणों, आदर्शों और प्रवृत्तियों (सात्विक, राजसिक, तामसिक) को दम्पत्ति चाहती है तदनुरूप 'उसे

आचरण करना चाहिए।

माता + पिता = संतान। पिता का सत्व और माता का क्षेत्र दोनों मिलकर स्वसदृश संतान प्राप्त करते हैं। माता दस माह तक संतान को गर्भ में धारण करती है। अतः माता का दायित्व पिता से अधिक होता है। वह पिता से दस गुणित श्रेष्ठ या बड़ी कही जाती है। गर्भ में पल रहा शिशु चेतन होता है। उसके उपर माँ की प्रवृत्ति, स्वास्थ्य, आकाशीय ग्रह तत्वों का सूक्ष्म प्रभाव, दिव्य मंत्रों का दिव्य प्रभाव तीव्र एवं प्रभावी ढंग से होता है। माँ का अवसाद, माँ का रुदन, माँ की उग्रता, माँ की मानसिक स्थिति, उच्चता, प्रसन्नता, शांतचित्तता का प्रभाव गर्भस्थ संतान पर अतिशय होता है। गर्भस्थ शिशु का सम्बन्ध माँ के रक्त और श्वसन से होता है। माँ के रक्त स्तर, हीमोग्लोबीन, रक् वायु कण, श्वास संख्या संतान में प्रायश: तद्वत् होती है। गर्भस्थ शिशु की जीवन प्रक्रिया माँ की जीवन प्रक्रिया से जुड़ी होती है। माँ की अभीप्सा एवं शिव संकल्प शिशु को अनुप्राणित एवं स्पन्दि करता है। माँ की अभीप्सा एवं शिव संकल्प शिशु को अनुप्राणित एवं स्पन्दित करता है । माँ का सूक्ष्म मनःप्रभाव शिशु के सूक्ष्म मनःप्रभाव से जुड़ा रहता है। गर्भिणी माँ को उच्च एवं संशुद्ध भावलोक में विचरण करना चाहिए। गर्भस्थ शिशु के मन, , बुद्धि, प्राण, वाक्, तेज आदि तत्व माँ के तत्व के साथ तादात्मय बनाये रहते हैं।

माँ का 'कार्टीसोन हार्मोन' संतान के ऊतकों (टिश्यूज) को प्रभावित करता है। यह तनाव से बढ़ता है। गर्भाशय में एम्नीओटिम फ्लूड में कार्टीसोन हार्मोन को नियन्त्रित रखकर माँ अपने शिशु को स्वस्थ रख सकती है। यह तनाव से बढ़ता है। अतः माँ को तनाव रहित जगह पर रहना चाहिए। जितने मास का गर्भ होता है उतने मास के तात्कालिक आकाशीय ग्रहों का प्रभाव गर्भस्थ संतान पर पड़ता है| गर्भ में चार से आठ मास के भीतर शिशु को ज्यादा सुरक्षा चाहिए। गर्भिणी माता को शान्त इसादगीपूर्ण ढंग से गर्भकाल में रहना चाहिए। माँ को गर्भनाल (प्लेसेन्टा) सुरक्षित रखने का हर संभव प्रयास करना चाहिए।

गर्भाधान हेतु स्त्री और पुरूष को रात्रि में ही मिलना चाहिए। ऐसा शास्त्र का आदेश है। दिन में गर्भाधान विपत्तिकाल में ही स्वीकार्य हो सकता है- दिवा न दारगमनमिति । इससे पुरूष की आयु क्षरण होता है। गर्भाधान में पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, ग्यारहवीं, तेरहवीं रात्रियाँ पूर्णत: वर्जित हैं। पुत्र की कामना से बारहवीं, चौदहवीं तथा सोलहवीं समरात्रियाँ सर्वश्रेष्ठ मानी गयी हैं। पुत्री की कामना से पाँचवीं, सातवीं नौवीं तथा पन्द्रहवीं विषमरात्रियाँ श्रेष्ठ मानी गयी हैं । सोलहवीं रात्रि सन्तान की कामना से अन्तिम रात्रियाँ प्रबलतम होती हैं । जैसे- पन्द्रहवीं रात्रि कन्या के लिए तथा सोलहवीं पुत्र के लिए। गर्भाधान हेतु एक रात में एक ही बार पति-पत्नी को आधान सम्पर्क करना चाहिए। इससे आधान काल

का पता रहता है।

गर्भाधान हेतु अशुभ काल -

चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, संक्रान्ति, वैधृति, व्यतीपात, परिघ, भ्रदा, संध्याकाल, माता - पिता का मरण दिन, श्राद्ध का प्रथम दिन तथा स्वयं के जन्म नक्षत्र में आधान हेतु सम्पर्क नहीं करना चाहिए । शुक्रास्त, गुरुअस्त, अधिकमास, क्षयमास में भी गर्भाधान शुभ नहीं होता।

शुभ काल -

सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र गर्भाधान हेतु श्रेष्ठतम दिवस हैं। गर्भाधान हेतु श्रवण, रोहिणी, हस्त, अनुराधा, स्वाति, रेवती, शतभिषा तथा तीनों उत्तरा श्रेष्ठतम नक्षत्र हैं। गर्भाधान हेतु पुष्य, धनिष्ठा, मृगशीर्ष, चित्रा, अश्विनी तथा पुनर्वसु ये मध्यम नक्षत्र हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सभी नक्षत्र निषिद्ध होते हैं। गर्भाधान काल में स्त्री को सुसज्जित रहना, प्रसन्न रहना तथा स्वल्प भोजन करना चाहिए।

बोध प्रश्न

1. प्राग्जन्म का प्रथम संस्कार कौन है?

क. सीमन्तोन्नयन ख. गर्भाधान ग. पुंसवन घ. जातकर्म

2. हरिवंशपुराण का पारायण किसकी प्राप्ति हेतु किया जाता है?

क. धन ख. सन्तान ग. ऐश्वर्य घ. मोक्ष

3. गर्भाधान की श्रेष्ठआयु क्या है?

क. २० से ४० वर्ष ख. ४० से ५० वर्ष ग. ५० से ६० वर्ष घ. कोई नहीं

2.5 संराश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि गर्भाधान संस्कार को प्रथम संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। गर्भाधान को प्राग्जन्म संस्कार कहते हैं । भारतीय संस्कृति में **संस्कारों** को जीवन का आधार माना गया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य के जीवन में सोलह संस्कार बताए गए

हैं, जिनमें प्रथम है **गर्भाधान संस्कार**। यह संस्कार केवल संतानोत्पत्ति की शारीरिक प्रक्रिया का विधान नहीं है, बल्कि यह भावी जीवन को श्रेष्ठ, धर्मनिष्ठ और संस्कारित बनाने की आधारशिला है।

गर्भाधान संस्कार के समय पति-पत्नी का संयमित जीवन, सात्विक आहार, पवित्र वातावरण और शुभ संकल्प अनिवार्य माने गए हैं। शास्त्रों का निर्देश है कि इस समय दंपत्ति देवताओं का आह्वान करें, पवित्र मंत्रों का उच्चारण करें और संतान के उत्तम गुणों के लिए प्रार्थना करें। यह प्रक्रिया दर्शाती है कि संतान केवल जैविक उत्पत्ति का परिणाम न होकर, एक संस्कारित और आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है।

आधुनिक विज्ञान ने भी यह स्वीकार किया है कि गर्भाधान के समय माता-पिता की मानसिक अवस्था, भावनाएँ और जीवनशैली शिशु के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव डालती हैं। गर्भाधान संस्कार की परंपरा इसी वैज्ञानिक सत्य को पहले ही समझ चुकी थी। इसीलिए कहा गया कि संतानोत्पत्ति के समय माता-पिता को शुद्ध विचार, सात्विक भोजन और संयमित आचरण रखना चाहिए।

संक्षेप में कहा जाए तो गर्भाधान संस्कार भारतीय संस्कृति का जीवन-द्वार है। यह संतानोत्पत्ति की पवित्रता, माता-पिता की जिम्मेदारी, समाज की नैतिकता और राष्ट्र की संस्कृति को सुरक्षित रखने का माध्यम है। वेदों और स्मृतियों में वर्णित यह संस्कार आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि यह हमें स्मरण कराता है कि जीवन की शुरुआत ही शुद्ध और संस्कारित आधार पर होनी चाहिए।

2.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1.(ख)

2. (ख

3. (क)

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि - मूल लेखक- रामदैवज्ञ, टिका - प्रोफेसर रामचन्द्रपाण्डेयः
2. मुहूर्त्तपारिजात - पं. सोहन लाल व्यास
3. हिन्दू संस्कार पद्धति – डॉ0 राजबलि पाण्डेय
4. वीरमित्रोदय - आचार्य नारायण
5. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित
6. संस्कार प्रकाश – गीताप्रेस, गोरखपुर

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रर्भाधान संस्कार से आप क्या समझते है स्पष्ट कीजिये ।

2. संस्कार के महत्व पर प्रकाश डालिये।

इकाई - 3 पुंसवन संस्कार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 पुंसवन संस्कार

3.4 पुंसवन संस्कार का प्रयोग

बोध प्रश्न

3.5 सारांश

3.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई BAKA (N) – 330, खण्ड 1 के इकाई 2 के ‘ **पुंसवन संस्कार** ’ से सम्बन्धित है। भारतीय संस्कृति में जीवन के प्रत्येक चरण को शुद्ध, मंगलकारी और धर्मानुकूल बनाने के लिए सोलह संस्कारों की परम्परा प्रचलित रही है। इन संस्कारों का उद्देश्य केवल बाह्य धार्मिक कर्मकाण्ड तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के जीवन को नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से सुव्यवस्थित करने की जीवन पद्धति है। संस्कार-प्रणाली का तात्पर्य ही यह है कि मानव जीवन को जन्म से मृत्यु तक संस्कारित किया जाए ताकि वह केवल जैविक अस्तित्व न रहकर सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धि का साधन बन सके। गर्भावस्था में किए जाने वाले संस्कारों में सबसे महत्वपूर्ण संस्कार **पुंसवन संस्कार** है।

पुंसवन संस्कार गर्भाधान के बाद गर्भस्थ शिशु की रक्षा, उसके स्वस्थ विकास और श्रेष्ठ गुणों के लिए किया जाने वाला महत्वपूर्ण संस्कार है। यह सामान्यतः गर्भावस्था के तीसरे महीने में सम्पन्न किया जाता है। आचार्य पाराशर, आचार्य अश्वलायन तथा गृह्यसूत्रकारों ने इसके विधान का वर्णन किया है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में भी संतानोत्पत्ति तथा गर्भस्थ शिशु की रक्षा हेतु विभिन्न मन्त्र मिलते हैं।

इस संस्कार का ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक महत्व इतना व्यापक है कि इसे केवल पुत्रोत्पत्ति की संकुचित आकांक्षा तक सीमित करना इसके मूल स्वरूप का अपमान होगा। वास्तव में यह संस्कार संतानोत्पत्ति को शुद्ध, पवित्र और सशक्त बनाने का वैदिक प्रयास है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि -

- ❖ पुंसवन संस्कार कब किया जाता है।
- ❖ पुंसवन संस्कार किसे कहते हैं।
- ❖ पुंसवन संस्कार के महत्व को जान लेंगे।
- ❖ पुंसवन संस्कार की उपयोगिता क्या हैं।

3.3 पुंसवन संस्कार

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन को शुद्ध, मर्यादित और धर्मानुकूल बनाने के लिए सोलह संस्कारों (षोडशसंस्कार) की परम्परा वर्णित है। ये संस्कार केवल बाह्य आचार-विचार या अनुष्ठान

मात्र नहीं हैं, बल्कि यह भारतीय मन और वैदिक चिन्तन की गहरी आध्यात्मिक दृष्टि का प्रतिफल हैं। संस्कार का उद्देश्य मनुष्य के जीवन को दिव्यता की ओर उन्मुख करना और उसके भीतर छिपी हुई संभावनाओं का परिष्कार करना है। गर्भ से लेकर मृत्यु पर्यन्त मानव जीवन के प्रत्येक सोपान पर किसी न किसी संस्कार की उपस्थिति इस तथ्य की पुष्टि करती है कि मनुष्य का जीवन केवल भौतिक अस्तित्व नहीं है, बल्कि धर्म, संस्कृति और समाज से जुड़ा हुआ एक सतत प्रवाह है। इन्हीं सोलह संस्कारों में से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार है पुंसवन संस्कार।

पुंसवन संस्कार द्वितीय संस्कार है। यह गर्भाधान संस्कार के पश्चात् किया जाता है। इसे करने का प्रथम अधिकार पति को होता है। पति के अभाव में देवर या गुरु द्वारा यह संस्कार सम्पन्न किया जाता है। गर्भधारण का निश्चय हो जाने के पश्चात् गर्भस्थ शिशु को पुंसवन नामक संस्कार के द्वारा अभिषिक्त किया जाता था । पुंसवन का अभिप्राय सामान्यतः उस कर्म से था जिसके अनुष्ठान से पुं= पुमान् (पुरुष) का जन्म हो ।" इस अवसर पर पठित तथा गीत ऋचाओं में पुमान् अथवा पुत्र का उल्लेख किया गया है तथा वे पुत्र जन्म का अनुमोदन करती हैं । पुत्र की जन्म देने- वाली माता की प्रशंसा की जाती थी तथा समाज में उसे सम्मानित स्थान प्राप्त था । यह परम्परा उस युग से चली आती थी जब युद्ध के लिए पुरुषों की अधिक आवश्यकता होती थी और प्रत्येक युद्ध के बाद पुरुष संख्या में कमी आ जाती थी । यदि सन्तति स्त्री भी हो तो आशा की जाती थी कि वह पुरुष संतान को आगे चलकर जन्म देगी ।

परिभाषा -

जिस संस्कार द्वारा पुमान् (पुलिंग, पुत्र) की प्राप्ति होती है, उसे पुंसवन संस्कार कहते हैं. '**पुमान् प्रसूयते येन तत्पुंसवनमीरितम्।**' (शौनक ऋषि)।

अत: पुत्र की कामना होने पर इस संस्कार को अवश्य करना चाहिए। पुंसवन संस्कार से पुत्र की प्राप्ति होती है। प्राजापत्य यज्ञ से भी पुत्र की प्राप्ति होती है, परन्तु यह यज्ञ अत्यन्त जटिल है।

प्रथम गर्भ और पुंसवन संस्कार -

प्रथम गर्भ का पुंसवन संस्कार अवश्य करना चाहिए। इसके पश्चात् माता-पिता को पुत्रप्राप्त की कामना हो तभी इस संस्कार को करना चाहिए। अनेक आचार्यों के अनुसार इसे प्रत्येक गर्भ साथ करना चाहिए। पुंसवन संस्कार के द्वारा पूर्व जीवन की स्मृति तथा गर्भदोष का नाश होता है। फलत: शौनक ऋषि के

अनुसार इस संस्कार को प्रत्येक गर्भ के साथ करना चाहिये।

यदि पुंसवन और सीमन्तोन्यन संस्कार को केवल प्रथम गर्भ के समय ही किया जायेगा तो प्रमुख संस्कारों की संख्या सोलह से घटकर चौदह हो जायेगी। कन्या प्राप्ति की इच्छा वाले दम्पत्ती तो पुंसवन संस्कार छोड़ भी सकते हैं, परन्तु पुत्र प्राप्ति की कामना वाले दम्पत्ती को इस संस्कार को इस संस्कार को करना ही चाहिए। पुंसवन संस्कार एक ऐसा संस्कार है जो गर्भस्थ शिशु को प्राग्जन्म की स्मृति को प्रदान करने की क्षमता रखता है। इसे जातिस्मरत्व भी कहते हैं । इसी संस्कार के द्वारा पिता अपनी तपस्या और दिव्यमन्त्र ज्ञान का आधान अपने पुत्र के भीतर करता है। फलत: उत्पन्न बालक जन्मकाल से ही शाप और वरदान देने की क्षमता से युक्त होता है। यद्यपि आज इस प्रकार के दिव्य कर्म लुप्तप्राय हैं परन्तु इनकी प्रक्रिया सम्प्रति उपलब्ध है। राजा परीक्षित को बालक द्वारा प्रदत्त शाप उस बालक में निहित पूर्व जीवन की विद्या और ज्ञान को प्रदर्शित करता है। इस तरह के अनेक उदाहरण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं।

स्मृतियों में इस प्रश्न पर भी विचार किया गया है कि यह संस्कार सम्पन्न करना चाहिए अथवा नहीं। शौनक के अनुसार यह कृत्य प्रत्येक गर्भधारण के पश्चात् करना चाहिए, क्योंकि स्पर्श करने तथा औषधिसेवन से गर्भ पवित्र व शुद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस संस्कार के अवसर पर उच्चारित तथा पठित मन्त्रों के प्रभाव से व्यक्ति में विगत जन्मों को स्मरण करने की क्षमता का सञ्चार होता है। याज्ञवल्क्यस्मृति पर विज्ञानेश्वर प्रणीत मिताक्षरा टीका में इस संस्कार की उपेक्षा की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । वहाँ कहा गया है : 'ये पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन के कृत्य क्षेत्र-संस्कार हैं, अतः इनका सम्पादन एक ही बार करना चाहिए, प्रत्येक र्भधारण में नहीं ।

पुंसवन संस्कार का काल –

पुंसवन संस्कार वैदिक परंपरा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण गर्भसंस्कार है, जिसका उल्लेख वेद, गृह्यसूत्र, स्मृतियों और धर्मशास्त्रों में मिलता है। संस्कारशास्त्र में यह नियम दिया गया है कि प्रत्येक संस्कार का एक निश्चित समय होता है। यदि उचित काल में संस्कार न किया जाए तो उसका फल बाधित हो जाता है। इस दृष्टि से पुंसवन संस्कार का समय विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना गया है।

गर्भस्पन्दन से पूर्व पुंसवन संस्कार किया जाता है। अत: गर्भ के अभिव्यक्त होने पर यह संस्कार करना चाहिए। गर्भधारण के द्वितीय या तृतीय मास में इस संस्कार को करना चाहिए । कतिपय ग्रन्थों में इसे षष्ठ या अष्टम मास में भी करने को कहा गया है। आज यह संस्कार प्रायश: द्वितीय या तृतीय

मास में किया जा रहा है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी तृतीय मास की पूर्ति होने के पश्चात् लिंग निर्धारित हो जाता

है। अत: तृतीय मास से पूर्व इसे कर लेना चाहिए। आचार्य रामदैवज्ञ ने भी मुहूर्त्तचिन्तामणि में कहा है

कि -

पूर्वोदितैः पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा।
मासेऽष्टमे विष्णुविधातृजीवैर्लग्ने शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे ।।

अर्थात् गुरु, रवि और भौमवासरों, मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु तथा हस्त नक्षत्रों में रिक्ता ४,९,१४ अमावस्या, द्वादशी, षष्ठी और अष्टमी तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में गर्भमासपति के बलवान रहने पर आठवें अथवा छठें मास में शुभग्रहों के केन्द्र १,४,७,१० एवं त्रिकोण ५,९ भावों में स्थित रहने पर तथा पापग्रहों के ३,६,११ भावों में जाने पर पुंसवन संस्कार तीसरे मास में करना चाहिये। इसके अनन्तर आठवें मास में श्रवण, रोहिणी और पुष्य नक्षत्रों में शुभलग्न में अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर गर्भिणी को भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिये।

गोभिल ऋषि के अनुसार पुंसवन संस्कार को तृतीय मास के तृतीय भाग में करना चाहिए अर्थात् गर्भ धारण के ८० दिन से ९० दिन के भीतर पुंसवन संस्कार करना चाहिए। यदि पुंसवन संस्कार किसी बाधा के कारण नियत काल में न हो सके तो सर्वप्रायश्चित होम करके इसे करना चाहिए।

मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा गया है –
"तृतीयमासे तु पुनः पुंसवनं विधीयते।"

अर्थात् गर्भधारण के तृतीय मास में यह संस्कार किया जाना चाहिए। यहाँ यह 'तृतीयमास' गर्भधारण के तीसरे महीने को सूचित करता है। शास्त्रकारों ने इस समय को इसलिए उपयुक्त माना है क्योंकि उस अवधि में गर्भ स्थिर होता है और भ्रूण की लिंग-निश्चिति की प्रक्रिया भी उसी समय चलती है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी यही निर्देश मिलता है –
"गर्भाधाने त्रयो मासाः पूता गर्भिण्यः स्मृता, ततोऽस्य पुंसवनं कार्यं विधिवत् शुभकाम्यया।"

अर्थात गर्भधारण के पहले तीन मास शुद्धि के लिए माने गए हैं। इसके बाद गर्भवती स्त्री पर पुंसवन संस्कार करना चाहिए।

इसी प्रकार **आश्वलायन गृह्यसूत्र** कहता है –

“तृतीयमासे गर्भिण्याः पुंसवनं कुर्यात्।”

अर्थात गर्भधारण के तीसरे मास में पुंसवन संस्कार करना चाहिए।

कई आचार्य यह भी कहते हैं कि यदि किसी कारणवश तीसरे महीने में संस्कार न हो पाए तो चौथे महीने तक इसे किया जा सकता है। परंतु छठे महीने के बाद यह कदापि नहीं करना चाहिए, क्योंकि उस समय भ्रूण की स्थूल संरचना और लिंग भेद स्पष्ट होने लगता है।

कात्यायन गृह्यसूत्र में इसका समर्थन मिलता है –

“यदा गर्भः स्थिरो भवति तदा पुंसवनं विधीयते।”

अर्थात् जब गर्भ स्थिर हो जाता है तब पुंसवन करना चाहिए। यहाँ ‘गर्भस्थिरता’ का अर्थ है भ्रूण का गर्भ में सुस्थापित होना, जो सामान्यतया तीसरे माह में होता है।

पुंसवन मुहूर्त -

यह संस्कार शुक्ल पक्ष में किया जाता है। मलमास, गुर्वस्त, शुक्रास्त में भी इसे करना चाहिए। रिक्ता तिथि (४,९,१४) और पर्व (पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी, संक्रान्ति) का परित्याग कर देना चाहिए। रवि, मंगल तथा गुरुवार को पुंसवन संस्कार किया जाता है। पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, मूल, अनुराधा, श्रवण, मृगशीर्ष नक्षत्रों में पुंसवन शुभकारी होता है।

3.4 पुंसवन संस्कार का प्रयोग

पुंसवनसंस्कार करनेवाला व्यक्ति ज्योतिषीके द्वारा निर्दिष्ट शुभ मुहूर्तमें नित्य-क्रिया सम्पन्न करके स्नानादिसे पवित्र होकर पूर्वमुख बैठकर अपने दाहिने भागमें पत्नीको बैठाकर दीप प्रज्वलितकर आचमन, प्राणायाम, आसनशुद्धि आदि करके पुंसवनसंस्कार सम्पन्न करनेके लिये निम्न संकल्प करे। उस दिन पति अपनी पत्नीको उपवास कराकर (भोजन आदि न कराकर) कार्य सम्पन्न करे।

प्रतिज्ञा-संकल्प-

दाहिने हाथमें जल, अक्षत, पुष्प, फल और द्रव्य लेकर निम्नलिखित संकल्प करे-

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णो- राज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे आर्यावर्तैकदेशे (यदि काशी हो तो अविमुक्तवाराणसी क्षेत्रे आनन्दवने गौरीमुखे त्रिकण्टकविराजिते महाश्मशाने भगवत्या उत्तरवाहिन्या भागीरथ्या वामभागे) ....नगरे / ग्रामे / क्षेत्रे षष्टिसंवत्सराणां मध्ये संवत्सरे अयने ऋतौ मासे पक्षे ""तिथौ "नक्षत्रे ""योगे करणे वासरे राशिस्थिते सूर्ये राशिस्थिते चन्द्रे शेषेषु ग्रहेषु यथायथाराशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशिष्टे शुभमुहूर्ते गोत्रः सपत्नीकः "शर्मा/ वर्मा/गुप्तोऽहं ममास्यां भार्यायां विद्यमानगर्भपुंस्त्वप्रति- पादनबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा पुंरूपतोदयप्रतिरोधककर्म- परिहारद्वारा च श्रीपरमेश्वरप्रीतये पुंसवनाख्यसंस्कारकर्म करिष्ये । तत्र पूर्वाङ्गतया गणेशाम्बिकापूजनं स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं साङ्कल्पिकेन विधिना नान्दीमुखश्राद्धं च करिष्ये।

[गणेशाम्बिका पूजन भी सम्पन्न करें।]

पुंसवन संस्कार में प्रधान कर्म-

मातृपूजा आदि सम्पन्न करके वटवृक्षके निचले भागमें उत्पन्न अंकुरों तथा वटवृक्षकी शाखाओंके ऊपर अग्रभागमें उत्पन्न नूतन पल्लवोंके बीचमें उत्पन्न हुए अंकुरों एवं कुशकी जड़ तथा सोमलता

(अभावमें पूतिका अथवा दूर्वा) - को लाकर स्वच्छ जलके साथ पीस ले तथा उस रसको स्वच्छ वस्त्रसे छानकर किसी पात्रमें सुरक्षित रख। तदनन्तर स्त्रीकी नासिकाके दाहिने छिद्रमें पति रस डाले।

आसेचनके मन्त्र -

रस डालते समय निम्न दो मन्त्रोंका पाठ करे-

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद् रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥

वीर्यवान् पुत्रप्राप्तिके लिये सकाम प्रयोग

यदि 'वीर्यवान् पुत्र हो' यह कामना हो तो पति जलसे पूर्ण एक पात्रको भार्याकी गोदमें रखकर अनामिका अँगुलीसे स्त्रीके गर्भका स्पर्श करते हुए निम्न मन्त्रका पाठ करते हुए गर्भका अभिमन्त्रण करे-

ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोम आत्मा छन्दाः स्यङ्गानि यजू सि नाम।

साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः।

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ स्वः पत ॥

दक्षिणा संकल्प-

इसके बाद ब्राह्मणको दक्षिणा देनी चाहिये और दस अथवा यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। उसके लिये निम्नलिखित संकल्प करना चाहिये-

ॐ अद्य यथोक्तगुणविशिष्टतिथ्यादौ गोत्र: "शर्मा / वर्मा/गुप्तोऽहं कृतस्यास्य पुंसवनाख्यकर्मणः साद्गुण्यार्थमिमां दक्षिणां ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दास्ये। यथासंख्याकान् ब्राह्मणान् भोजयिष्ये।

अभिषेक विधि-

इसके बाद आचार्य कलशके जलसे निम्न मन्त्रोंका पाठ करते हुए अभिषेक करे-

ॐ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वती: प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्त्रोतसः। सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमा सीद ॥

ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभि षिञ्चाम्यसौ। (शु० य० ९। ३०)

अभिषेकके अनन्तर ब्राह्मणोंका आशीर्वाद ग्रहणकर मातृगणों का विसर्जन करे और अनेन पुंसवनाख्येन कर्मणा भगवान् श्रीपरमेश्वरः प्रीयताम्—कहकर कर्म भगवान्को निवेदित कर दे।

विशेष बात

यह पुंसवनसंस्कार समयपर न हो सके तो सीमन्तोन्नयनके साथ करना चाहिये। जैसा कि बृहस्पतिने कहा है कि यह पुंसवनसंस्कार गर्भ-चलनके पहले न किया गया हो तो गर्भके चलनेपर भी सीमन्तोन्नयनके पूर्व अवश्य करना चाहिये | पंचांगपूजन तथा हवन आदि कार्य सम्पन्न करके पहले पुंसवनकी विधि पूर्ण करनेके अनन्तर सीमन्तोन्नयनकी विधि सम्पन्न करे।

संस्कार प्रकाश – गीताप्रेस, गोरखपुर

बोध प्रश्न -

1. पुंसवन संस्कार किस मास में किया जाता है

(क) 2 (ख)3 (ग) 4 (घ) 6

2. पुंसवन संस्कार किस को करने का अधिकार है

(क) देवर (ख) मामा (ग) पति (घ) भाई

3. मनुस्मृति के अनुसार पुंसवन संस्कार कब करना चाहिए?

(क) प्रथम मास में (ख) तृतीय मास में (ग) षष्ठम मास में (घ) जन्म के समय

4. पुंसवन संस्कार किस संस्कार से सम्बन्धित है?
(क) गर्भाधान संस्कार से पूर्व (ख) गर्भधारण के बाद (ग) जन्म के बाद (घ) विवाह के समय

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारतीय संस्कृति के सोलह संस्कारों में

पुंसवन संस्कार का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह संस्कार केवल पुत्रप्राप्ति की संकीर्ण आकांक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य गर्भस्थ शिशु के संरक्षण, उसकी स्वास्थ्यवृद्धि और श्रेष्ठ गुणों के विकास की मंगलकामना है। वैदिक वाङ्मय में संतानोत्पत्ति को केवल जैविक प्रक्रिया नहीं

माना गया, बल्कि उसे दैवीय और सांस्कृतिक उत्तरदायित्व के रूप में स्वीकार किया गया। इसी कारण गर्भावस्था में संस्कारों की परम्परा विकसित हुई।

ऋग्वेद, अथर्ववेद, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति और गृह्यसूत्रों में पुंसवन संस्कार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थों ने इसे संतानोत्पत्ति का शुद्धिकरण और सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में स्थापित किया। वैदिक काल में जहाँ इसका उद्देश्य गुणवान और बलवान संतान की प्राप्ति था, वहीं मध्यकाल में यह अधिकतर पुत्रप्राप्ति की भावना से जोड़ा गया। परन्तु व्यापक दृष्टि से यह संस्कार प्रत्येक संतान को श्रेष्ठ और संस्कारित बनाने का माध्यम है।

आधुनिक सन्दर्भ में भी पुंसवन संस्कार का महत्व कम नहीं हुआ है। यह परिवार और समाज को गर्भवती स्त्री के चारों ओर सुरक्षा और आशीर्वाद का वातावरण निर्मित करने का अवसर देता है। संस्कार का यह स्वरूप भारतीय संस्कृति की उस विशेषता को प्रकट करता है, जिसमें जैविक जीवन के प्रत्येक चरण को धार्मिक, नैतिक और सामाजिक दृष्टि से पवित्र और सार्थक बनाया जाता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि पुंसवन संस्कार केवल पुत्रप्राप्ति का अनुष्ठान न होकर संतानोत्पत्ति की संपूर्ण प्रक्रिया को संस्कारित करने वाला महान वैदिक संस्कार है, जो आज भी भारतीय संस्कृति की अमर धरोहर के रूप में जीवित है।

3.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1.(ख)

2. (ग)

3. (ख)

4. (ख)

5. (क)

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि - मूल लेखक- रामदैवज्ञ, टिका - प्रोफेसर रामचन्द्रपाण्डेयः

2. मुहूर्त्तपारिजात - पं. सोहन लाल व्यास

3. हिन्दू संस्कार पद्धति – डॉ0 राजबलि पाण्डेय

4. वीरमित्रोदय - आचार्य नारायण

5. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित

6. संस्कार प्रकाश – गीताप्रेस, गोरखपुर

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पुंसवान संस्कार से आप क्या समझते है स्पष्ट कीजिये।
2. पुंसवान संस्कार के महत्व पर प्रकाश डालिये।

इकाई - 4 सीमन्तोन्नयन संस्कार

इकाई की संरचना –

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 सीमन्तोन्नयन परिचय

4.4 सीमन्तोन्नयन पूजन विधि

4.5 सारांश

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड के 'सीमन्तोन्नयन' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है इस इकाई के माध्यम से आप सीमन्तोन्नयन संस्कार को जान पायेंगें, जन्म से पूर्व के संस्कारों में यह संस्कार है| इस इकाई के द्वारा आप इसे सरल रूप से समझ सकते है, इस संस्कार का प्रयोजन आंशिक रूप से विश्वासमूलक तथा व्यावहारिक था। जनसाधारण का यह विश्वास था कि गर्भिणी को अमङ्गकारी शक्तियाँ ग्रस्त कर सकती हैं। अतः उनके निराकरण के लिए विशेष संस्कार की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस प्रकार से आप इस इकाई के द्वारा इसकी विधि व महत्व को समझ सकेंगें

4.2 उद्देश्य

- सीमन्तोन्नयन संस्कार क्या है? इसे आप समझ सकेंगें|
- सीमन्तोन्नयन संस्कार की विधि को सरल रूप से समझ सकेंगें|
- सीमन्तोन्नयन संस्कार किन-किन मासों में किया जाता है,इसे समझ पायेंगे|
- सीमन्तोन्नयन के महत्व को समझ पायेंगें|

4.3 सीमन्तोन्नयन परिचय

'सीमन्तोन्नयन ' शब्दका अर्थ

सीमन्तोन्नयन शब्द दो पदोंके योगसे बना है। सीमन्त और उन्नयन। सीमन्तका अर्थ है, स्त्रीकी माँग अर्थात् सिरके बालोंकी विभाजक रेखा। विवाह-संस्कारमें इसी सीमन्तमें वरके द्वारा सिन्दूर-दान होता है और तभीसे वह विवाहिता सौभाग्यशालिनी वधू सीमन्तिनी और सुमंगली कहलाती है। स्त्रियोंका यह सीमन्तभाग अति संवेदनशील और मर्मस्थान कहा गया है। इसमें पवित्र सिन्दूरके सहयोगसे जो विशिष्ट भावनाएँ एवं संवेग प्रादुर्भूत होते हैं, वे उसके अखण्ड दाम्पत्य जीवनके लिये सहयोगी एवं अभ्युदयकारी होते हैं। सीमन्तोन्नयन-संस्कारमें भी पतिके द्वारा विशेष विधिसे गर्भिणी वधूके सीमन्तभागका ही संस्कार होता है, बालोंको दो भागोंमें बाँटा जाता है (उन्नयन), जिसका प्रभाव उस स्त्री तथा उसके भावी सन्तानपर पड़ता है। इस दृष्टिसे इस संस्कार का बहुत महत्त्व है।

प्रयोजन

आश्वलायन-स्मृति में इस विश्वास का उल्लेख है। वहाँ कहा गया है कि 'रुधिराशन में तत्पर कतिपय दुष्ट (सुदुर्भग) राक्षसियाँ पत्नी के प्रथम गर्भ को खाने के लिए आती हैं। पति को चाहिए कि उनके निर-सन के लिए वह श्री का आवाहन करे, यतः उसके द्वारा रक्षित स्त्री को उक्त राक्षसियाँ मुक्त

कर देती हैं। ये अलक्ष्य क्रूर मांसभक्षी प्रथम गर्भकाल में स्त्री पर अधिकार जमा लेती हैं तथा उसे पीड़ा पहुँचाती हैं। अतः उनके भगाने के लिए ही सीमन्तोन्नयन नामक संस्कार का विधान किया गया है। संस्कार का धार्मिक प्रयोजन माता के ऐश्वर्य तथा अनुत्पन्न शिशु के लिए दीर्घायुष्य की प्राप्ति था, जैसा कि इस अवसर पर पठित ऋचाओं से प्रकट होता है।

इस संस्कार को करने के प्रचलन के लिए हिन्दुओं का मनोविज्ञान-विषयक ज्ञान भी उत्तर-दायी था। गर्भ के पाँचवें मास से भावी शिशु का मानसिक निर्माण आरंभ हो जाता है।' इस कारण गभिणी स्त्री के लिए इस प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से अधिकतम सावधानी रखना आवश्यक था, जिससे गर्भ को किसी भी प्रकार का शारीरिक आघात न पहुंचे। उसके केशों को सँवार कर प्रतीकात्मक रूप से इस तथ्य पर बल दिया जाता था। इस संस्कार का एक अन्य प्रयोजन था गभिणी स्त्री को यथासम्भव हषित तथा उल्लसित रखना। 'राका' (पूर्णिमा की रात्रि) तथा 'सुपेशा' (सुडौल अवयवों वाली) आदि शब्दों द्वारा उसका सम्बोधन और स्वयं पति द्वारा उसके केशों को सजाना तथा सँवारना आदि साधनों को इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए उपयोग में लाया जाता था।

गर्भसंस्कार या गर्भिणी का संस्कार -

सीमन्तोन्नयन-संस्कारके सम्बन्धमें आचार्योंके भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ आचार्यों के मतमें यह संस्कार प्रत्येक गर्भके समय करना चाहिये तथा कुछ आचार्योंके अनुसार केवल प्रथम गर्भमें ही होना चाहिये। एक बार संस्कार हो जानेसे वह प्रत्येक गर्भके लिये संस्कृत हो जाती है। इसलिये आचार्य पारस्करजीने अपने गृह्यसूत्रमें इसको प्रथम गर्भ में ही करना विधेय है, ऐसा कहा है- 'प्रथमगर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा' (पा० गृह्यसूत्र १ । १५ । ३)। अतः यही मत सर्वमान्य है। इस संस्कारको गर्भधारणसे छठे या आठवें मासमें करना चाहिये। इस संस्कारसे सन्तानके मस्तिष्कपर शुभ प्रभाव पड़ता है।

सुश्रुतसंहिता में बताया गया है कि सिरमें विभक्त हई पाँच सन्धियाँ सीमन्त कहलाती हैं। इन सन्धियोंकी उन्नति अथवा प्रकाश होने से मस्तिष्कशक्ति उन्नत होती है और इनमें आघात होने से मृत्यु होती है, अतः इस संस्कार के द्वारा सीमन्तभाग को पुष्ट बनाते हुए गर्भस्थ सन्तानके मस्तिष्क आदिको भी बलवान् बनाया जाता है।

सीमन्तोन्नयनकी सामान्य प्रक्रिया -

इस समय गर्भ शिक्षण के योग्य होता है। अतः गर्भिणीको सत्साहित्यके अध्ययनमें रुचि रखनी चाहिये और सद्विचारोंसे सम्पन्न रहना चाहिये। इस संस्कारमें वीणावादकोंको बुलाकर उनसे किसी वीर राजा या किसी वीरपुरुषके चरित्रका गान कराया जाता है ताकि उसका प्रभाव गर्भस्थ शिशुपर हो और वह भी अत्यन्त वीर एवं पराक्रमी हो। इस संस्कारमें पति घृतयुक्त यज्ञावशिष्ट सुपाच्य पौष्टिक चरु (खीर) गर्भवतीको खिलाता है और शास्त्रवर्णित गूलर आदि वनस्पतिद्वारा गर्भिणीके सीमन्त (माँग) का पृथक्करण करता है।

गर्भिणी स्त्री के धर्म

स्मृतिकार तथा धर्मशास्त्री इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे कि गर्भिणी स्त्री की प्रत्येक गतिविधि का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। अतः प्राग्-जन्म संस्कारों के सम्बन्ध में विधियों तथा नियमों का उल्लेख करने के पश्चात् उन्होंने गर्भिणी स्त्री तथा उसके पति के कर्तव्यों तथा धर्मों का भी विधान किया है। ये कर्तव्य तीन भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। प्रथम वर्ग इस विश्वासपूर्ण धारणा पर आधारित है कि अमङ्गलकारी शक्तियाँ गभिणी स्त्री को क्षति पहुँनाती हैं, अतः उनसे उसकी रक्षा करना आवश्यक है। द्वितीय वर्ग में ऐसे नियमों का समावेश है जो गर्भिणी स्त्री के लिए अति शारीरिक श्रम का निषेध करते हैं। तीसरे वर्ग में समाविष्ट नियमों का प्रयो-जन माता के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा करना था।

प्रथम वर्ग के संबन्ध में मार्कण्डेयपुराण में इस प्रकार उल्लेख मिलता है- 'अनेक दुष्ट तथा सुदुर्भग पिशाचिनियाँ तथा राक्षसियाँ गर्भिणी स्त्री के गर्भके भक्षण और रुधिरपान के लिए तत्पर रहती हैं। अतः शुचिता, पवित्र मंत्रों के लेखन तथा सुन्दर व सुरभित माला आदि के धारण द्वारा सदा उसकी रक्षा करनी चाहिए। हे ब्राह्मण, विरूप तथा विकृति प्रायः वृक्षों, गड्डों, टीलों तथा समुद्रों में निवास करते हैं। वे सदा गर्गाभणी स्त्री की ताक में रहते हैं। अतः उसे इन स्थानों पर नहीं जाना चाहिए। विघ्न गर्भहन्ता का पुत्र है और मेहिनी उसकी दुहिता है। विघ्त गर्भाशय में प्रवेश कर गर्भ-पिण्ड को खा लेता है। मेहिनी उसमें प्रवेश कर गर्भपात करा देती है। मेहिनी की दुष्टता के परिणामस्वरूप ही स्त्री के गर्भाशय से सर्प, मेंढक मगर-मच्छ आदि जन्म लेते हैं। पद्मपुराण में गभिणी स्त्री के कर्तव्यों के विषय में करयय और अदिति के मध्य एक सुदीर्घ संलाप का उल्लेख है। कश्यप अदिति से कहते हैं-'उसे अधुचि स्थान, गंदा और चूने-बालू आदि पर नहीं बैठना चाहिए। उसे नदी में स्नान नहीं करना चाहिये और न ही किसी उजड़े घर में जाना चाहिए। उसे दीमक आदि के बनाये हुए (मिट्टी के ढेरों पर नहीं बैठना चाहिए। उसे मानसिक अशान्ति से सदा अपना बचाव करना चाहिए। उसे नखों, कोयलों तथा राख से भूमि पर चिह्न आदि नहीं बनाना चाहिए। उसे सदा निद्रालु व अलस नहीं रहना चाहिए। श्रम का उसे यथासम्भव वर्जन करना चाहिए। उसे रुक्ष पदार्थ, कोयला, राख तथा सिर की अस्थियों का स्पर्श नहीं करना चाहिए। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके अङ्गों को किसी प्रकार की क्षति न हो। उसे अपने केश खुले न छोड़ने चाहिए और न उसे कभी अशुचि रहना चाहिए। सोते समय उत्तर की ओर सिर नहीं करना चाहिए और न अपने अङ्गों को ही खुला छोड़ना चाहिए। उसे अशान्त नहीं रहना चाहिए और न अपने पैर ही भींगे रखने चाहिए। न उसे अमङ्गल्य शब्दों का व्यवहार करना चाहिए और न बहुत अधिक हँसना ही चाहिए। वह सदा उत्तम कार्यों में व्यस्त रहे और सास तथा श्वसुर की पूजा करती तथा पति की मङ्गल-कामना करती हुई प्रसन्न रहे।" मत्स्यपुराण में कश्यप अपनी द्वितीय पत्नी दिति से

कहते हैं सुवर्णे ! गर्भिणी स्त्री को गोधूलि के समय भोजन नहीं करना चाहिए। उसे वृक्ष के नीचे न तो जाना और न ठहरना ही चाहिए। वह सदा सोती ही न रहे। वह वृक्षों की छाया से दूर रहे। उसे औषध से मिश्रित उष्ण जल से स्नान करना चाहिए। उसे सुरक्षित तथा अलंकृत रहना चाहिए, देवताओं की पूजा करना और भिक्षा-दान आदि देना चाहिए। वह महीने के तीसरे दिन पार्वती-व्रतों का पालन करें । उसे हाथी-घोड़े आदि पर सवारी नहीं करनी चाहिए और पहाड़ अथवा अनेक मंजिलों वाले भवन पर नहीं चढ़ना चाहिए। उसे व्यायाम, भ्रमण, बैलगाड़ी में यात्रा, दुःख-शोक, रक्तस्राव, मुर्गे की तरह बैठने, श्रम, दिवा-शयन, रात्रि जागरण, बासी, खट्टा, उष्ण, रूक्ष तथा भारी भोजन, इन सभी का त्याग करना चाहिए ।

पति के कर्तव्य

पति का प्रथम व सबसे प्रधान कर्तव्य था अपनी गभिणी पत्नी की इच्छाओं की पूर्ति करना। याज्ञवल्क्य के मतानुसार 'गभिणी स्त्री की इच्छाओं (दौहृद) की पूति न करने से गर्भ दोषयुक्त हो जाता है। उसमें वैरूप्य आ जाता है या वह गिर जाता है। अतः पति को अपनी गभिणी पत्नी का अभीष्ट प्रिय करना चाहिए।' आश्वलायन-स्मृति

दौहृदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् ।
वैरूप्यं निधनं वाऽपि तस्मात् कार्यं प्रियं स्त्रियः ।।

में पति के अन्य कर्तव्यों का भी उल्लेख पाया जाता है। उसके अनुसार गर्भ के छठे मास के पश्चात् पति को केशों का कटवाना (वपन), मैथुन, तीर्थ-यात्रा तथा श्राद्ध का वर्जन करना चाहिए ।

वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद् गर्भिणीपतिः ।
श्राद्धच्च सप्तमान्मासादूर्ध्वं चान्यत्र वेदवित् ।।

कलि-विधान, क्षौर, शव यात्रा में सम्मिलित होने, नख काटने, युद्ध में भाग लेने, नया घर बनवाने (वास्तुकरण), बहुत दूर जाने, परिवार में विवाह तथा समुद्र के जल में स्नान करने का निषेध करता है,

क्षौरं शवानुगमनं नखकृन्तनं च युद्धं च वास्तुकरणं त्वतिदूरयानम् ।
उद्वाहमम्बुधिजलं स्पृशनोपयोगमायुःक्षयो भवति गभिणिकापतीनाम् ।।

क्योंकि इनसे गर्भिणी स्त्री के पति की आयु का क्षय होता है।" एक अन्य स्मृति पेड़ काटने को भी निषिद्ध ठहराती है।

आयुर्वेदिक आधार

गर्भिणी स्त्री के स्वास्थ्य के लिए विहित नियम हिन्दुओं के आयुर्वेदिक ज्ञान पर आधारित

हैं। सुश्रुत में प्रायः ऐसे ही नियमों का विधान किया गया है। 'गर्भधारण के समय से उसे मैथुन, अतिश्रम, दिवा-शयन, रात्रि-जागरण, वाहन पर चढ़ने, भय, मुर्गे की तरह बैठने, रेचन, रक्त बाहर निका-लने तथा मल-मूत्र के असामयिक स्थगन आदि का वर्जन करना चाहिए।" इस प्रकार गभिणी स्त्री के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए प्रत्येक सम्भव सावधानी बरती जाती थी।

4.4 सीमन्तोन्नयन पूजन विधि

विधि

यह संस्कार भी किसी पुरुष नक्षत्र के समय सम्पन्न किया जाता था। भावी माता को उस दिन उपवास करना होता था। वास्तविक विधि-विधान मातृपूजा, नान्दीश्राद्ध तथा प्राजापत्य आहुति आदि प्रास्ताविक कृत्यों के साथ आरम्भ होता था। तब पत्नी अग्नि के पश्चिम में एक कोमल आसन पर आसीन हो जाती थी और पति उदुम्बर के समसंख्यक कच्चे फलों के गुच्छों, दर्भ अथवा कुश के तीन गुच्छों, तीन श्वेत चिह्नवाले साही के काँटे, वीरव्रत काष्ठ की यष्टि तथा पूर्ण तकुवे के साथ 'भूर्भुवः स्वः' आदि मन्त्र अथवा महाव्याहृतियों में से प्रत्येक का उच्चारण करता हुआ पत्नी के सीमांतों को ऊपर की ओर (यथा शिर के अग्रभाग से आरम्भ कर) सँवारता था।" इस विधि के लिए बौधायन दो अन्य मन्त्रों का भी ऊल्लेख करते हैं।
भूत-प्रेतों को आतङ्कित करने के उद्देश्य से पत्नी के ऊपर लाल चिह्न बनाने की परवर्ती प्रथा भी प्रचलित थी। सीमन्तों को सँवारने के पश्चात् पति
तीबटे सूत्रों के धागे के साथ उदुम्बर की शाखा पत्नी के गले के चारों ओर बाँध देता था। इस अवसर पर वह एक मन्त्र पढ़ता था जो इस प्रकार है: 'यह वृक्ष ऊर्जस्वी है, तू भी इसी वृक्ष के समान ऊर्जस्वती तथा फलवतो हो।" उदुम्बर वृक्ष की शाखा के स्थान पर बौधायन जो के पौधे का विधान करते हैं। यह कृत्य स्त्री की उर्वरता तथा फलवत्ता का प्रतीक था। यह भाव उदुम्बर वृक्ष की शाखा तथा जो के पौधों के असंख्य फलों द्वारा परामृष्ट था।

इसके पश्चात् पति पत्नी से चावल की राशि तिल तथा घी की ओर देखने तथा सन्तति, पशु, सौभाग्य और अपने (पति के) दीर्घायुष्य की कामना करने के लिए कहता था। कतिपय धर्मशास्त्रियों के मतानुसार गर्भिणी स्त्री के आस-पास बैठी हुई ब्राह्मण स्त्रियों को इन माङ्गल्य-सूचक वाक्यों का उच्चारण करना चाहिए-'तू वीर पुत्रों की माता हो, तू जीव-पुत्रा हो,' आदि, आदि। तब पति दो वंशीवादकों से कहता था, 'ओ राजन्, गान करो, क्या इससे भी अधिक वीर्यवान् कोई कहीं पर है?" इस अवसर पर गान के लिए अधोलिखित मन्त्र विहित था- 'एक सोम ही हमारा राजा है। ओ नदि ! तेरी सीमा अविच्छिन्न है। ये मनुष्यजन तेरे तट पर निवास करें।' इन प्रार्थनाओं से ऐसा ज्ञात होता है कि आर्य अभी तक एक योद्धा जाति थे, जो नित्य नवीन विजय के लिए उत्सुक थे तथा इस उद्देश्य की

पूति के लिए वे वीर्यवान् पुत्रों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते थे। उपर्युक्त वचन एक प्रकार का वीररस से ओत-प्रोत गीत था, जिसका प्रयोजन वीरतापूर्ण वातावरण प्रस्तुत करना तथा उसके द्वारा अनुत्पन्न शिशु को प्रभावित करना था । ब्राह्मण-भोजन के साथ संस्कार समाप्त होता था। संस्कार के पश्चात गगन-मण्डल में तारों के प्रकट होने तक भावी माता मौन रखती थी। तब वह एक गौ के बछड़े का स्पर्श करती थी, जो पुंसन्तति का प्रतीक माना जाता था । व्याहृतियों - भूर्भुवः स्वः का उच्चारण कर वह मौन समाप्त कर देती थी।'

पंचांगपूजनके अनन्तर बहिःशालामें हवनकार्य सम्पन्न करे।

सर्वप्रथम एक हाथ लम्बी-चौड़ी एक वेदी बनाये तथा उसका निम्न विधिसे संस्कार करे-

पंच-भूसंस्कार

(१) परिसमूहन -

तीन कुशोंके द्वारा दक्षिणसे उत्तरकी ओर वेदीको साफ करे और उन कुशोंको ईशानकोणमें फेंक दे। (त्रिभिर्दर्भः परिसमुह्य तान् कुशानैशान्यां परित्यज्य)

(२) उपलेपन -
गायके गोबर तथा जलसे वेदीको लीप दे। (गोमयोदकेनोपलिप्य)
(३) उल्लेखन या रेखाकरण -
स्रुवाके मूलसे वेदीके मध्य भागमें प्रादेशमात्र (अँगूठेसे तर्जनीके बीचकी दूरी) लम्बी तीन रेखाएँ पश्चिमसे पूर्वकी ओर खींचे। रेखा खींचनेका क्रम दक्षिणसे प्रारम्भकर उत्तरकी ओर होना चाहिये। (स्फ्येन स्रुवमूलेन कुशमूलेन वा त्रिरुल्लिख्य)
(४) उद्धरण -
उन खींची गयी तीनों रेखाओंसे उल्लेखन-क्रमसे अनामिका तथा अंगुष्ठके द्वारा थोड़ी-थोड़ी मिट्टी निकालकर बायें हाथमें रखता जाय। बादमें सब मिट्टी दाहिने हाथपर रखकर ईशानकोणकी ओर फेंक दे।
(अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य)
(५) अभ्युक्षण या सेचन -
तदनन्तर गंगा आदि पवित्र नदियोंके जलके छींटोंसे वेदीको पवित्र करे। (जलेनाभ्युक्ष्य)

अग्नि-स्थापन -

किसी कांस्य अथवा ताम्रपात्र में या नये मिट्टी के पात्र (कसोरे)-में स्थित पवित्र अग्नि को वेदी के अग्निकोण में रखे और इस अग्नि में से क्रव्या दांश निकालकर नैऋत्यकोण में डाल दे। तदनन्तर अग्निपात्र को स्वाभिमुख करते हुए अग्नि को वेदी में स्थापित करे। उस समय निम्न मन्त्र पढ़े-

ॐ मङ्गलनामाग्नये सुप्रतिष्ठितो वरदो भव।

तदनन्तर ॐ मङ्गलनामाग्नये नमः इस मन्त्रसे गन्ध, पुष्पाक्षत आदिसे अग्निका पूजन करे।

ब्रह्मावरण-संकल्प -

चन्दन, पान, वस्त्र तथा द्रव्यदक्षिणा आदि वरणकी सामग्री हाथमें लेकर नीचे लिखा संकल्पवाक्य बोलकर ब्रह्माका वरण करे और वरणसामग्री उन्हें प्रदान कर दे।

ॐ अद्य कर्तव्यसीमन्तोन्नयनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूप-ब्रह्मकर्मकर्तुम् गोत्रम् शर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूल-यज्ञोपवीतवासोभिर्ब्रह्मत्वेन भवन्तमहं वृणे।

ब्रह्मा उस सामग्रीको अपने हाथमें लेकर कहे- 'वृतोऽस्मि ।'

यजमान कहे- 'यथाविहितकर्म कुरु ।'

ब्रह्मा कहे - 'ॐ यथाज्ञानं करवाणि।'

इसके बाद वेदीके दक्षिणकी ओर शुद्ध आसन बिछाये और उसके ऊपर पूर्वकी ओर अग्रभागवाले तीन कुशा रखकर यजमान निम्न वाक्य कहे -

'अस्मिन् सीमन्तोन्नयनहोमकर्मणि भवान् मे ब्रह्मा भव।'

ब्रह्मा कहे 'ॐ भवानि ।'

इसके बाद अग्निकी परिक्रमा कराकर यजमान उस आसनपर ब्रह्माको बैठाये।

कुशकण्डिका

प्रणीतापात्रस्थापन -

इसके बाद यजमान प्रणीतापात्रको आगे रखकर जलसे भर दे और उसको कुशाओंसे ढककर तथा ब्रह्माका मुख देखकर अग्निके उत्तरकी तरफ कुशाओंके ऊपर रखे।

अग्नि (वेदी) के चारों ओर कुश-आच्छादन (कुश-परिस्तरण) -

इक्यासी कुशोंको ले । उनके बीस-बीसके चार भाग करे। इन्हीं चार भागोंको अग्निके चारों ओर फैलाया जाता है। इसमें ध्यान देनेकी बात यह है कि कुशसे हाथ खाली नहीं रहना चाहिये। प्रत्येक भाग फैलानेपर हाथमें एक कुश बचा रहेगा। इसलिये प्रथम बारमें इक्कीस कुश लिये जाते हैं। वेदीके चारों ओर कुश बिछानेका क्रम इस प्रकार है-कुशोंका प्रथम भाग (२०+१) लेकर पहले वेदीके अग्निकोणसे प्रारम्भकर ईशानकोणतक उन्हें उत्तराग्र बिछाये। फिर दूसरे भागको ब्रह्मासनसे अग्निकोणतक पूर्वाग्र बिछाये। तदनन्तर तीसरे भागको नैर्ऋत्यकोणसे वायव्यकोणतक उत्तराग्र बिछाये और चौथे भागको

वायव्यकोणसे ईशानकोणतक पूर्वाग्र बिछाये। पुनः दाहिने खाली हाथसे वेदीके ईशानकोणसे प्रारम्भकर वामावर्त ईशानपर्यन्त प्रदक्षिणा करे।

पात्रासादन -

हवनकार्यमें प्रयोक्तव्य सभी वस्तुओं तथा पात्रों यथा- समूल तीन इतने कुश न मिलें तो तेरह कुशोंको ग्रहण करना चाहिये। उनके तीन-तीनके चार भाग करे। कुशोंके सर्वथा अभावमें दूर्वासे भी क्रिया सम्पन्न की जा सकती है।

कुश उत्तराग्र (पवित्रक बनानेवाली पत्तियोंको काटनेके लिये), साग्र दो कुशपत्र (बीचवाली सींक निकालकर पवित्रक बनानेके लिये), प्रोक्षणीपात्र (अभावमें दोना या मिट्टीका कसोरा), आज्यस्थाली (घी रखनेका पात्र), पाँच सम्मार्जन कुश, सात उपयमन कुश, तीन समिधाएँ (प्रादेशमात्र लम्बी), स्रुवा, आज्य (घृत), यज्ञीय काष्ठ (पलाश आदिकी लकड़ी), २५६ मुट्ठी चावलोंसे भरा पूर्णपात्र, चरुपाकके लिये तिल और मूँगसे भरा पात्र आदिको पश्चिमसे पूर्वतक उत्तराग्र अथवा अग्निके उत्तरकी ओर पूर्वाग्र रख ले।

उनके आगे वीणाके बजानेवाले दो गायकोंको बैठा देना चाहिये।

वहाँ प्रादेशमात्र अग्रभागसहित पीपलकाष्ठकी कील तथा शल्लकीका काँटा, पीला सूत लपेटा हुआ एक तकुआ तथा कुशाओंकी तीन पिंजूलिका बनाकर स्थापित करना चाहिये (तेरह कुशाओंको लपेटनेपर एक पिंजूलिका होती है। ऐसी तीन पिंजूलिका स्थापित करे।) गूलरके नवीन पत्तेकी डाली, जिनके दोनों तरफ फल लगे हों, सुवर्णके तारयुक्त सूत्र, पुष्प, बिल्वफलसहित अन्यान्य मांगलिक पदार्थ स्थापित करे।

पवित्रकनिर्माण -

दो कुशोंके पत्रोंको बायें हाथमें पूर्वाग्र रखकर इनके ऊपर उत्तराग्र तीन कुशोंको दायें हाथसे प्रादेशमात्र दूरी छोड़कर मूलकी तरफ रख दे। तदनन्तर दो कुशोंके मूलको पकड़कर कुशत्रयको बीचमें लेते हुए दो कुशपत्रोंको प्रदक्षिणक्रमसे लपेट ले, फिर दायें हाथसे तीन कुशोंको मोड़कर बायें हाथसे पकड़ ले तथा दाहिने हाथसे कुशपत्रद्वय पकड़कर जोरसे खींच ले। जब दो पत्तोंवाला कुश कट जाय तब उसके अग्रभागवाला प्रादेशमात्र दाहिनी ओरसे घुमाकर गाँठ दे दे ताकि दो पत्र अलग-अलग न हों। इस तरह पवित्रक बन गया। शेष सबको

(दो पत्रोंके कटे भाग तथा काटनेवाले तीनों कशोंको) उत्तर दिशामें फेंक दे।

पवित्रकके कार्य तथा प्रोक्षणीपात्रका संस्कार-

पूर्वस्थापित प्रोक्षणीको अपने सामने पूर्वाग्र रखे। प्रणीतामें रखे जलका आधा भाग आचमनी आदि किसी पात्रद्वारा प्रोक्षणीपात्रमें तीन बार डाले। अब पवित्रीके अग्रभागको बायें हाथकी अनामिका तथा अंगुष्ठसे और मूलभागको दाहिने हाथकी अनामिका तथा अंगुष्ठसे पकड़कर इसके मध्यभागके द्वारा

प्रोक्षणीके जलको तीन बार उछाले (उत्प्लवन)। पवित्रकको प्रोक्षणीपात्रमें पूर्वाग्र रख दे। प्रोक्षणीपात्रको बायें हाथमें रख ले। पुनः पवित्रकके द्वारा प्रणीताके जलसे प्रोक्षणीको प्रोक्षित करे। तदनन्तर इसी प्रोक्षणीके जलसे आज्यस्थाली, सुवा आदि सभी सामग्रियों तथा पदार्थोंका प्रोक्षण करे अर्थात् उनपर जलके छींटे डाले (अर्थवत्प्रोक्ष्य)। इसके बाद उस प्रोक्षणीपात्रको प्रणीतापात्र तथा अग्निके मध्यस्थान (असंचरदेश)-में पूर्वाग्र रख दे।

घृतको पात्र (आज्यस्थाली) में निकालना -आज्यपात्रसे घीको कटोरे में निकालकर उस पात्रको वेदीके दक्षिणभागमें अग्निपर रख दे।

चरुपाक विधि -

फिर आज्यस्थालीमें घृत डाले और चरु बनानेके लिये तिल, चावल तथा मूँग मिलाये और फिर उनको प्रणीतापात्रके जलसे तीन बार धोये, पीछे किसी एक पात्रमें जल भरकर उसमें वह तिल, चावल तथा मूँग डाल दे। उसके बाद यजमान उस चरुपात्रको हाथमें लेकर और ब्रह्मासे घृतको ग्रहण कराकर वेदीस्थित अग्निके उत्तरकी ओर चरुको रखे और ब्रह्माके हस्तस्थित घृतको दक्षिणकी ओर स्थापन करा

दे। फिर जिस समय चरु सिद्ध हो जाय अर्थात पक जाय, तब एक जलती हुई लकड़ीको लेकर चरुपात्रके ईशानभागसे प्रारम्भकर ईशानभागतक दाहिनी ओर घुमाकर अग्निमें डाल दे। फिर खाली बायें हाथको बायीं ओरसे घुमाकर ईशानभागतक ले आये। यह क्रिया पर्यग्निकरण कहलाती है।

सुवाका सम्मार्जन-

जब घी आधा पिघल जाय तब दायें हाथमें सुवाको पूर्वाग्र तथा अधोमुख लेकर आगपर तपाये। पुनः सुवाको बायें हाथमें पूर्वाग्र ऊर्ध्वमुख रखकर दायें हाथसे सम्मार्जन कुशके अग्रभागसे सुवाके अग्रभागका, कुशके मध्यभागसे सुवाके मध्यभागका और कुशके मूलभागसे सुवाके मूलभागका स्पर्श करे अर्थात् सुवाका सम्मार्जन करे। प्रणीताके जलसे सुवाका प्रोक्षण करे। उसके बाद सम्मार्जन कुशोंको अग्निमें डाल दे।

नुवाका पुनः प्रतपन -

अधोमुख सुवाको पुनः अग्निमें तपाकर अपने दाहिनी ओर किसी पात्र, पत्ते या कुशोंपर पूर्वाग्र रख दे।

घृतपात्र तथा चरुपात्रका स्थापन -

घीके पात्रको अग्निसे उतारकर चरुके पश्चिम भागसे होते हुए पूर्वकी ओरसे परिक्रमा करके अग्नि (वेदी) के पश्चिमभागमें उत्तरकी ओर रख दे। तदनन्तर चरुपात्रको भी अग्निसे उतारकर वेदीके उत्तर

रखी हुई आज्यस्थालीके पश्चिमसे ले जाकर उत्तरभागमें रख दे।

घृतका उत्प्लवन -

घृतपात्रको सामने रख ले। प्रोक्षणीमें रखी हुई पवित्रीको लेकर उसके मूलभागको दाहिने हाथके अंगुष्ठ तथा अनामिकासे और बायें हाथके अंगुष्ठ तथा अनामिकासे पवित्रीके अग्रभागको पकड़कर कटोरेके घृतको तीन बार ऊपर उछाले । घृतका अवलोकन करे और यदि घुतमें कोई विजातीय वस्तु हो तो निकालकर फेंक दे। तदनन्तर प्रोक्षणीके जलको तीन बार उछाले और पवित्रीको पुनः प्रोक्षणीपात्रमें रख दे। सुवासे थोड़ा घी चरुमें डाल दे।

तीन समिधाओंकी आहुति -

ब्रह्माका स्पर्श करते हुए बायें हाथमें उपयमन (सात) कुशोंको लेकर हृदयमें बायाँ हाथ सटाकर तीन समिधाओंको घीमें डुबोकर मनसे प्रजापतिदेवताका ध्यान करते हुए खड़े होकर मौन हो अग्निमें डाल दे। तदनन्तर बैठ जाय।

पर्युक्षण (जलधारा देना) -

पवित्रकसहित प्रोक्षणीपात्रके जलको दक्षिण हाथकी अंजलिमें लेकर अग्निके ईशानकोणसे ईशानकोणतक प्रदक्षिणक्रमसे जलधारा गिरा दे। पवित्रकको बायें हाथमें लेकर फिर दाहिने खाली हाथको उलटे अर्थात् ईशानकोणसे उत्तर होते हुए ईशानकोणतक ले आये (इतरथावृत्तिः) और पवित्रकको दायें हाथमें लेकर प्रणीतामें पूर्वाग्र रख दे। तदनन्तर हवन करे।

हवन-विधि

सर्वप्रथम प्रजापतिदेवताके निमित्त आहुति दी जाती है। तदनन्तर इन्द्र, अग्नि तथा सोमदेवताको आहुति देनेका विधान है। इन चार आहुतियोंमें प्रथम दो आहुतियाँ 'आधार' नामवाली हैं एवं तीसरी और चौथी आहुति 'आज्यभाग' नामसे कही जाती है। ये चारों आहुतियाँ घीसे देनी चाहिये। इन आहुतियोंको प्रदान करते समय ब्रह्मा कुशके द्वारा हवनकर्ताके दाहिने हाथका स्पर्श किये रहे, इस क्रियाको

'ब्रह्मणान्वारब्ध' कहते हैं।

दाहिना घुटना पृथ्वीपर लगाकर सुवामें घी लेकर, प्रजापतिदेवताका

ध्यानकर निम्न मन्त्रका मनसे उच्चारणकर प्रज्वलित अग्निमें आहति दे

(१) ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम। कहकर वेदी या कुण्डके मध्यभागमें आहुति दे। (सुवामें बचे घीको प्रोक्षणीपात्रमें छोड़े।)

आगेकी तीन आहुतियाँ इस प्रकार बोलकर दे-

(२) ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम। कहकर वेदी या कुण्डके मध्यभागमें आहुति दे। (सुवामें बचे घीको प्रोक्षणीपात्रमें छोड़े।)
(३) ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम। कहकर वेदी या कुण्डके उत्तरपूर्वार्धभागमें आहुति दे। (सुवामें बचे घीको प्रोक्षणीपात्रमें छोड़े।)
(४) ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम। कहकर वेदी या कुण्डके दक्षिणपूर्वार्धभागमें आहुति दे। (सुवामें बचे घीको प्रोक्षणीपात्रमें छोड़े।)
इसके बाद घृत मिलाकर स्थालीपाकका अर्थात् पहले जो तिलमुद्गमिश्रित चरु बनाया गया है, उससे खुवाद्वारा हवन करे। इन आहुतियोंमें भी शेष बचा हुआ घृतादि पूर्ववत् प्रोक्षणीपात्रमें डालते जाना चाहिये।

नवाहुति -
१-ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम।
२-ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम।
३-ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय न मम।
४-ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषासि प्र
मुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा, इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।
५-ॐ स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणश्रराणो वीहि मृडीकः सुहवो न एधि स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।
६-ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि।
अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजः स्वाहा। इदमग्नये अयसे न मम।
७-ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो ऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भयः स्वर्केभ्यश्च न मम।
८-ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमः श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायादित्यायादितये न मम।
तदनन्तर प्रजापति देवताका ध्यानकर मनमें निम्न मन्त्रका उच्चारणकर आहुति दे-
९-ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।
स्विष्टकृत् आहुति -
इसके बाद घृत और चरु-इन दोनोंसे ब्रह्माद्वारा कुशसे स्पर्श किये जानेकी स्थितिमें (ब्रह्मणान्वारब्ध) निम्न मन्त्रसे स्विष्टकृत् आहुति दे-
ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते न मम ।

संस्रवप्राशन -

हवन पूर्ण होनेपर प्रोक्षणीपात्रसे घृत दाहिने हाथमें लेकर यत्किंचित् पान करे। हाथ धो ले। फिर आचमन करे।

मार्जनविधि -

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्रद्वारा प्रणीतापात्रके जलसे कुशोंके द्वारा अपने सिरपर मार्जन करे-

ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु।

इसके बाद निम्न मन्त्रसे जल नीचे छोड़े-

ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।

पवित्रप्रतिपत्ति –

पवित्रकको अग्निमें छोड़ दे।

पूर्णपात्रदान -

पूर्वमें स्थापित पूर्णपात्रमें द्रव्य-दक्षिणा रखकर निम्न संकल्पकर दक्षिणासहित पूर्णपात्र ब्रह्माको प्रदान करे-

ॐ अद्य सीमन्तोन्नयनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्म-कर्मप्रतिष्ठार्थमिदं वृषनिष्क्रयद्रव्यसहितं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतं ...गोत्राय शर्मणे ब्रह्मणे भवते सम्प्रददे ।

ब्रह्मा 'स्वस्ति' कहकर उस पूर्णपात्रको ग्रहण कर ले।

प्रणीताविमोक -

प्रणीतापात्रको ईशानकोणमें उलटकर रख दे।

मार्जन -

पुनः उपयमन कुशाद्वारा निम्न मन्त्रसे उलटकर रखे गये प्रणीताके जलसे मार्जन करे-

ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्। उपयमन कुशोंको अग्निमें छोड़ दे।

बर्हिहोम -

का तदनन्तर पहले बिछाये हुए कुशाओंको जिस क्रमसे बिछाये गये थे, उसी क्रमसे उठाकर घृतमें भिगोये और निम्न मन्त्रसे स्वाहाका

उच्चारणकर अग्निमें डाल दे-

ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित मनसस्पत इमं देव यज्ञः स्वाहा वाते धाः स्वाहा।

कुशमें लगी ब्रह्मग्रन्थिको खोल दे।

सीमन्तके उन्नयनकी प्रक्रिया

इसके बाद नवीन वस्त्र धारण की हुई गर्भवती स्त्रीको हवन-वेदीके पश्चिमकी तरफ कोमल आसनपर बैठाये। फिर शल्लकी (सेई या वनसूकर)-का काँटा, पीपलकी कील (पतली डाली), पीले डोरेसे लिपटा हुआ तकुआ तथा तीन कुशाकी पिंजूलिका और गूलरकी दो फलयुक्त डाली-इन पाँचों पदार्थोंसे पति

अपनी स्त्रीके बालोंको ललाटसे ऊपर सिरके पिछले भागतक अलग करे अर्थात् सीमन्त (माँग)-में रेखा बनाये, बालोंको दो भागोंमें बाँटे। उस समय निम्न मन्त्र पढ़े-

ॐ भूर्विनयामि। ॐ भुवर्विनयामि। ॐ स्वर्विनयामि ।

तदनन्तर आगे लिखे मन्त्रसे गूलरके फलादिसहित डोरेको वधूकी चोटीमें बाँध दे-

ॐ अयमूर्जावतो वृक्ष उर्जीव फलिनी भव।

अर्थात् तुम इस ऊर्जस्वल उदुम्बर (गूलर) वृक्षके समान ऊर्जस्वला बनो।

तदनन्तर सुवासिनी वृद्धा ब्राह्मणियोंद्वारा आशीर्वाद दिलाना चाहिये।

वीणागायकोंद्वारा गाया जानेवाला मन्त्र -

उस समय वीणागायकोंको कहे कि आप किसी राजा अथवा वीर पुरुषके यशको गायें। यथा-

सोम एव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः अविमुक्तचक्ने आसीरंस्तीरे तुभ्यमसौ ।

नदियोंके नामका उच्चारण -

इसके बाद जिस नगर या ग्राममें यजमानका घर हो, उसके समीप बहनेवाली नदीका नाम पत्नीसे उच्चारण कराये। यथा-

गङ्गायै नमः, यमुनायै नमः, सरस्वत्यै नमः, नर्मदायै नमः, गोदावय्यै नमः, कावेर्यै नमः आदि।

भस्मधारण-विधि -

इसके बाद बैठकर सुवासे कुण्ड (वेदी) के ईशानकोणसे भस्म निकालकर दाहिने हाथकी अनामिका अंगुलीसे स्रुवेमें लगी हुई भस्म लेकर निम्न मन्त्रोंसे अपने अंगोंमें लगाये। यथा-

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः - यह कहकर ललाट में।

ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् - यह बोलकर गले में।

ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् - यह बोलकर दक्षिण बाहुमूलमें।

ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् - यह कहकर हृदयमें।

दक्षिणादानसंकल्प -

इसके बाद आचार्य एवं ब्रह्माको दक्षिणा दे और भोजन कराये।

इसके लिये निम्नलिखित संकल्प बोले-

ॐ अद्य गोत्रः शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहं सीमन्तोन्नयन-

कर्मनिमित्तकहोमकर्मणः साङ्गफलप्राप्तये साद्गुण्याय च अग्निदैवत्यं सुवर्णं सुवर्णनिष्क्रयभूतद्रव्यं * वा आचार्याय ब्रह्मणे अन्येभ्यः भूयसीं दक्षिणां च सम्प्रददे । यथासंख्याकान् ब्राह्मणांश्च भोजयिष्ये ।

अगर सुवर्ण-दक्षिणा देनी हो तो 'सुवर्णनिष्क्रयभूतद्रव्यम्' नहीं बोलना चाहिये। यदि सुवर्ण न देकर उसका निष्क्रय देना हो तो 'सुवर्णम्' न बोलकर 'सुवर्णनिष्क्रयभूतद्रव्यम्' बोलना चाहिये।

विसर्जन -

इसके बाद स्थापित अग्नि, देवताओं तथा मातृगणोंका निम्नलिखित मन्त्र बोलते हुए पुष्प-अक्षत

छोड़कर विसर्जन करे-

गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर।
यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन ।
यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् ।
इष्टकामसमृद्धयर्थं पुनरागमनाय च॥

भगवत्स्मरण -

इसके बाद पुष्प लेकर हाथ जोड़कर भगवान्का स्मरण करते हुएनिम्न मन्त्रोंका पाठ करे-

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद् विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ।।
यत्पादपङ्कजस्मरणाद् यस्य नामजपादपि ।
न्यूनं कर्म भवेत् पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम् ॥

ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः। ॐ साम्बसदाशिवाय नमः । ॐ साम्बसदाशिवाय नमः । ॐ साम्बसदाशिवाय नमः ।

बोध प्रश्न-

1. ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः इस मन्त्र से त्रायुख लगाई जाती है|
   क. ललाट में, ख. गले में, ग. नेत्रों में, घ. बहुओं में
2. ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् इस मन्त्र से त्रायुख लगाई जाती है|
   क. नेत्रों में, ख. बहुओं में, ग. ललाट में, घ. गले में,
3. ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् इस मन्त्र से त्रायुख लगाई जाती है|
   क. बाहुओं में, ख. ललाट में, ग. गले में, घ. ह्रदय में
4. 'राका' कहा जाता है|
   क. पूर्णिमा की रात्रि, ख. अमावस्या की रात्रि, ग. प्रतिपदा की रात्रि, घ. अष्टमी की रात्रि
5. गर्भिणी के बालों को कितने भागों में बांटा जाता है
   क. 3, ख. 4 ग. 2 घ. 5

4.5 सारांश

इस इकाई में आपने सीमन्तोन्नयन संस्कार के बारे में सरल रूप में जान पाए होंगे| सीमन्तोन्नयन-संस्कारके सम्बन्धमें आचार्योंके भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ आचार्यों के मतमें यह संस्कार प्रत्येक गर्भके समय करना चाहिये तथा कुछ आचार्योंके अनुसार केवल प्रथम गर्भमें ही होना चाहिये। एक बार संस्कार हो जानेसे वह प्रत्येक गर्भके लिये संस्कृत हो जाती है। पद्मपुराण में गभिणी स्त्री के कर्तव्यों के विषय में करयय और अदिति के मध्य एक सुदीर्घ संलाप का उल्लेख है। कश्यप अदिति से कहते हैं- 'उसे अधुचि स्थान, गंदा और चूने-बालू आदि पर नहीं बैठना चाहिए । उसे नदी में स्नान नहीं करना चाहिये और न ही किसी उजड़े घर में जाना चाहिए। उसे दीमक आदि के बनाये हुए (मिट्टी के ढेरों पर नहीं बैठना चाहिए। उसे मानसिक अशान्ति से सदा अपना बचाव करना चाहिए । उसे नखों, कोयलों तथा राख से भूमि पर चिह्न आदि नहीं बनाना चाहिए। उसे सदा निद्रालु व अलस नहीं रहना चाहिए। श्रम का उसे यथासम्भव वर्जन करना चाहिए। उसे रुक्ष पदार्थ, कोयला, राख तथा सिर की अस्थियों का स्पर्श नहीं करना चाहिए। उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके अङ्गों को किसी प्रकार की क्षति न हो।

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. घ
3. घ
4. क
5. ग

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

नित्यकर्म पूजाप्रकाश पं लालविहारी मिश्र गीताप्रेस गोरखपु
कर्मठ गुरुः पं मुकुन्द बल्लभ मोतीलाल वनारसीदास , वाराणसी
सर्व देव पूजा पद्धति शिव दत्त मिश्र चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
हिन्दू संस्कार

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सीमन्तोन्नयन संस्कार की विधि को लिखिये|
2. सीमन्तोन्नयन संस्कार के महत्व पर प्रकाश डालिये|
3. सीमन्तोन्नयन संस्कार का विस्तृत वर्णन कीजिये।

खण्ड - 2

जन्मोत्तर संस्कार

इकाई – 1 जातकर्म-नामकरण

इकाई की संरचना –

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 जातकर्म संस्कार परिचय
1.4 नामकरणर संस्कार परिचय
1.5 नामों की संरचना
1.6 सारांश
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई षोडश संस्कार परिचय नामक पुस्तक के जातकर्म एवं नामकरण नामक शीर्षक से है| इससे पहले की इकाई में आपने प्राक् जन्म संस्कारों के बारे में जाना व पढ़ा होगा इस इकाई के द्वारा आप जन्मोतर संस्कारों में से प्रथम जातकर्म संस्कार व द्वितीय संस्कार नामकरण संस्कार के बारे में सर्वप्रथम जातकर्म किस अवधि में किया जाता है, जन्म होनेके बाद जो सबसे पहले संस्कार होता है, उसीका नाम जातकर्म है। इस संस्कारके प्रधान उद्देश्यमें बताया गया है कि गर्भस्थशिशु, जो माताके रससे अपना पोषण करता है, व इसे करने से का क्या महत्व होता है| साथ ही इस इकाई में आप नामकरण संस्कार के महत्व व उसके प्रजोजन को जान पाएंगें| संसारमें जितने भी प्राणी तथा वस्तुएँ हैं, सबका कोई-न-कोई रूप है और कोई-न-कोई नाम है। बिना नाम के वस्तु की पहचान ही नहीं हो सकती। लोक-व्यवहार की सिद्धि बिना नामके सम्भव भी नहीं है। कोई भी अपरिचित व्यक्ति पहले मिलता है तो सर्वप्रथम नाम पूछनेपर ही उसे जाना जा सकता है कि कौन है इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तरों को सरल रूप में जानने में सफल हो सकेंगें|

1.2 उद्देश्य

- जातकर्म संस्कार क्या है, इसे समझ सकेंगें|
- जातकर्म संस्कार किन-किन मासों में किया जाता है, इसे जान पायेंगे|
- नामकरण संस्कार के महत्व को समझ सकेंगें|
- नाम किस प्रकार से रख्खा जाय इसे समझ सकेंगें|

1.3 जातकर्म संस्कार परिचय

जातकर्म संस्कार का परिचय एवं महत्त्व -

बालकके जन्म होनेसे पूर्व तीन संस्कार होते हैं- गर्भाधान, पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन। सीमन्तोन्नयन प्रायः आठवें मासतक हो जाता है, उसके बाद लगभग एक-डेढ मासके अनन्तर प्रसव होता है। जन्म होनेके बाद जो सबसे पहले संस्कार होता है, उसीका नाम जातकर्म है। इस संस्कारके प्रधान उद्देश्यमें बताया गया है कि गर्भस्थशिशु, जो माताके रससे अपना पोषण करता है, उस आहार आदिका दोष जो बालकमें आ जाता है, वह इस संस्कारके द्वारा दूर हो जाता है-

'गर्भाम्बुपानजो दोषो जातात् सर्वोऽपि नश्यति।'

यह संस्कार केवल पुत्रके उत्पन्न होने पर ही होता है, कन्याके नहीं। महर्षि पारस्करजीने अपने गृह्यसूत्रमें लिखा है- 'जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्यां मेधाजननायुष्ये करोति।' (पा० गृह्य० १।१६।३) अर्थात्

उत्पन्न हुए कुमार (बालक) के नालच्छेदनसे पूर्व ही मेधाजनन तथा आयुष्यकर्म पिता करता है। मनुस्मृतिमें भी यही बात बतायी गयी है कि नालच्छेदनके पूर्व ही यह संस्कार करना चाहिये-'प्राक् नाभिवर्द्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते।' ऐसा इसलिये कि नालच्छेदनके अनन्तर सूतक (जननाशौच) लग जाता है और सूतकमें जातकर्म करना निषिद्ध है। महर्षि जैमिनिका वचन है-

यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्।
छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ॥

(वीरमित्रोदय-संस्कारप्रकाश)

पुत्रोत्पत्तिके अनन्तर नालच्छेदन कितनी देरके बाद होना चाहिये,
इस सम्बन्धमें निर्णयात्मक व्यवस्थामें यह बताया गया है कि बारह घड़ी (चार घण्टे) अथवा सोलह घड़ी (लगभग साढ़े ६ घण्टे) के बाद नाल काटनी चाहिये। इतने समयमें जातकर्म-सम्बन्धी समस्त कर्म पूर्ण किये जा सकते हैं।

जातकर्म-संस्कारमें आशौच-प्रवृत्ति और प्रतिग्रहजन्य दोष नहीं होता -
चूँकि जातकर्मसम्बन्धी सभी कर्म जननाशौचकी प्रवृत्तिसे पहले होते हैं। अतः देवपूजन, दान, दानग्रहण आदि सभी कर्मोंमें कोई दोष नहीं होता, इन्हें करनेकी विधि प्राप्त है। वीरमित्रोदय-संस्कारप्रकाशमें ब्रह्मपुराणके वचनसे बताया गया है कि पुत्रका जन्म होनेपर पितृगण तथा देवता उस घरमें प्रसन्नतापूर्वक आते हैं, अतः वह दिन पुण्यशाली तथा पूज्य होता है, अतः उस दिन उनका पूजन करना चाहिये और ब्राह्मणोंको सुवर्ण, भूमि, गौ आदिका दान करना चाहिये। प्रतिग्रह लेनेके लिये वृद्धयाज्ञवल्क्यजीके वचनसे वहाँ बताया गया है कि 'कुमारजन्मदिवसे विप्रैः कार्यः प्रतिग्रहः ।' अर्थात् पुत्रजन्मके दिन (जातकर्म-संस्कारमें) ब्राह्मणोंको दान लेना चाहिये।

जातकर्म-संस्कारमें करणीय कृत्य -

गर्भस्थ बालकके नाभिमें एक नाल (नली) लगी रहती है, जिसका सम्बन्ध माताके हृदयसे होता है, इसी रसवाहिनी नालसे माताके द्वारा ग्रहण किये गये आहारके द्वारा शिशुका गर्भमें पोषण होता है। जन्मके अनन्तर बालक इस नालके साथ ही बाहर निकलता है, इस जातकर्म-संस्कारमें बालकके इसी नालका छेदन किया जाता है|और तब मातासे बालकका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है और बालकको मधु-दूध आदि बाहरका आहार देना प्रारम्भ किया जाता है। जातकर्म-सम्बन्धी सभी कर्म नालच्छेदनके पूर्व ही होते हैं।

शास्त्रोंमें बताया गया है कि बालकका पिता पुत्रोत्पत्तिका शुभसमाचार सुनते ही अपने

कुलदेवता तथा अपने मान्य वृद्ध पुरुषोंको प्रणाम करे और पुत्रका मुखावलोकन करके गंगा आदि किसी भी पवित्र नदीमें उत्तराभिमुख हो सचैल (वस्त्रोंसहित) स्नान करे। यदि पुत्र मूल, ज्येष्ठा अथवा व्यतीपात आदि अशुभ योगोंमें उत्पन्न हुआ हो तो उसका मुख देखे बिना ही स्नान करे। कदाचित् पुत्रोत्पत्ति रात्रिमें हो तो रात्रि-स्नान कैसे करे, इसकी व्यवस्थामें बताया गया है कि यद्यपि रात्रिमें स्नान निषिद्ध है, किंतु यह स्नान नैमित्तिक है। अतः रात्रिमें भी स्नान-दान किया जा सकता है। स्नान करनेके अनन्तर पिताकी स्पर्श आदिके लिये शुद्धि हो जाती है, किंतु माता तो दस दिनमें ही शुद्ध होती है।

जातकर्म संस्कारार्थ बालक का पिता अपनी पत्नी की गोद में बालक को बिठाकर पूर्वाभिमुख होकर स्वस्तिवाचनादि के अनन्तर प्रधान संकल्प करे और गणेशपूजनादि पंचांगकर्म करके सर्वप्रथम मेधाजनन संस्कार करे-

मेधाजनन -

यह कर्म बालकको मेधावी (धारणायुक्त बुद्धिसे सम्पन्न) बनाने के लिये किया जाता है। किसी सुवर्णादि तैजस पात्रमें मधु (शहद) और घृतको असमान मात्रामें मिलाकर अथवा केवल घृतको लेकर सुवर्णकी शलाकासे अथवा दाहिने हाथकी अनामिका अंगुलीके अग्रभागमें सुवर्ण रखकर सुवर्णसहित अंगुलीसे मधु और घृतको मिलाकर 'ॐ भूस्त्वयि दधामि' (पार० गृ० सू० १।१६।४) इत्यादि चार मन्त्रोंसे बालकको एक बार अथवा चार बार मधु-घृत असमान मात्रामें अथवा केवल घृत थोड़ा-थोड़ा चटा दे। इसको मेधाजनन-संस्कार कहते हैं।

घृत, मधु और सुवर्ण- ये तीनों ही अमृतस्वरूप हैं। इनके योगमें अद्भुत शक्ति है और इनका प्रभाव भी अमोघ है। ये तीनों मिलकर बच्चेकी आयु और मेधा बढ़ानेवाली रासायनिक औषध बन जाते हैं। जातकर्म में की जाती हुई उक्त क्रिया और मन्त्रोंके अभिमन्त्रणका प्रभाव इस समय अद्भुत काम करता है, शिशुका उपकार करता है, उसे जीवन प्रदान करता है।

आयुष्यकरण -

इस प्रकार मेधाजनन कर्मके अनन्तर पिताद्वारा आयुष्यकरण कर्म किया जाता है, जिससे बालक दीर्घजीवी होता है। आयुष्यकरणके मन्त्रोंमें बताया गया है कि जिस प्रकार अग्नि, सोम, ब्रह्मा, देवता, ऋषिगण, पितर, यज्ञ तथा समुद्र- ये आयुष्यमान् हैं, उसी प्रकार उनके अनुग्रहसे मैं तुम्हें दीर्घ आयुसे युक्त करता हूँ।

आयुष्यकरणका ही एक उपांग कर्म इसके अनन्तर और होता है, जिसका उद्देश्य यह रहता है कि बालक दीर्घ आयुतक स्वस्थतापूर्वक जीवित रहे और उसे कोई शारीरिक रोग अथवा मानसिक व्यथा न हो, इसके लिये 'दिवस्परि०' इत्यादि वात्सप्र अनुवाक (यजु०१२।१८-२८) की बारह ऋचाओंमेंसे

प्रारम्भकी ग्यारह ऋचाओं का उच्चारण करते हुए बालकके समस्त शरीरका स्पर्श किया जाता है। तदनन्तर प्राण, व्यान, अपान, उदान तथा समान- इन पाँचों वायुओंसे जो क्रमशः बालकके हृदय, सर्वांग, गुदादेश, कण्ठ तथा नाभिमें व्याप्त रहती हैं, इनसे बालकके दीर्घ आयुकी प्रार्थना की जाती है।

बालकके जन्मकी भूमिकी प्रार्थना -

जिस भूमि अथवा स्थानपर माताके गर्भसे सर्वप्रथम बालकका अभिमर्शन (स्पर्श) होता है, वह स्थान जन्मभूमि कहलाती है और यह समझा जाता है कि यह बालक इस भूमिद्वारा ही मुझे प्राप्त हुआ है, अतः इसका हमारे ऊपर महान् ऋण है, अपनी इस भावनाको व्यक्त करनेके लिये बालकका पिता मन्त्रका पाठ करते हुए उस भूमि (स्थान) का स्पर्श करता है और भूमिकी प्रार्थना करता है।

बालकका अभिमर्शन -

इसके अनन्तर पिताद्वारा मन्त्रपूर्वक बालकका स्पर्श किया जाता है। मन्त्रमें बताया गया है कि हे कुमार ! तुम वज्र एवं पाषाणकी भाँति दृढ़ होओ, कुठारके समान तीक्ष्ण और अपहतवीर्यवाले बनो, सुवर्णके समान निर्दोष एवं पवित्र बनो। चूँकि तुम पुत्र नामवाले आत्मस्वरूप ही हो, अतः निश्चित ही शतायु होओ।

माताके प्रति कल्याण-कामना -

तदनन्तर बालकका पिता मन्त्रका पाठ करते हुए पत्नीकी ओर देखता है। मन्त्रका भाव है कि हे वीरे! तुम इडा- मानवी (यज्ञपात्री) हो, तुम मित्रावरुणके अंशसे उत्पन्न हो, जिस प्रकार इडासे पुरूरवाकी उत्पत्ति हुई अथवा जैसे यज्ञपात्रीसे पुरोडाश उत्पन्न हुआ, जिस प्रकार मित्रावरुणसे अगस्त्य उत्पन्न हुए, वसिष्ठ उत्पन्न हुए, वैसे ही तुमसे यह पुत्र उत्पन्न हुआ है। तुमने वीर पुत्रको उत्पन्न किया है. अत: तुम वीरवती होओ, पति-पुत्रवाली होओ इत्यादि ।

माताके स्तनोंका प्रक्षालन तथा दुग्धपान

तदनन्तर माताके दोनों स्तनोंका प्रक्षालनकर बालकको स्तनपान (दुग्धपान) कराया जाता है। सर्वप्रथम दाहिने स्तनको प्रक्षालित किया जाता है।

जलपूर्ण कुम्भका स्थापन -

तदनन्तर सूतिका स्त्रीके शयनस्थानपर पलंगके नीचे भूमिपर सिरकी ओर एक जलपूर्ण कुम्भ रख देना चाहिये। यह कलश सूतिका स्त्रीके उठनेपर्यन्त दस दिनोंतक वहींपर स्थापित रहता है। मन्त्रमें कलशकी प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि हे जलकलश ! जैसे आप देवताओंके हितके लिये सदैव जाग्रत् रहते हैं, सावधान रहते हैं, वैसे ही इस सूतिकाके हितके लिये भी सदा सावधान रहिये। इसकी रक्षा कीजिये।

सूतिका-गृहके द्वारपर अग्निस्थापन -

सूतिका-गृहके द्वारदेशमें एक वेदी बनाकर उसपर प्रगल्भ नामक अग्निकी स्थापना करनी चाहिये। वह अग्नि निरन्तर दस दिनतक जलती रहे, बुझे नहीं। उस अग्निमें प्रतिदिन सायं प्रातः भूसी, चावलके कण और पीली सरसोंसे दो-दो आहुति दे। इन्हें बालकका पिता दे अथवा ब्राह्मण आचार्य दे। इस हवनकर्मसे सूतिका तथा सूतिकागृहके उपद्रवोंकी शान्ति तथा रक्षा होती है।

बालककी कुमारग्रह आदि बालग्रहोंसे रक्षाका उपाय -

जन्मके अनन्तर बालक यदि रोये न, हँसे न, हाथ-पैर न हिलाये, प्रसन्न न रहे, म्लान रहे, उसका मुखमण्डल भावशून्य रहे तो समझना चाहिये कि किसी स्कन्द, नैगमेष, पूतना, कुमार आदि बालग्रहने बालकको ग्रस लिया है, अतः उसकी शान्तिके लिये पिताको चाहिये कि बालकको अपनी गोदमें लेकर उसे मस्त्यजाल अथवा किसी वस्त्रसे आवृत कर ले और मन्त्रोंका पाठ करते हुए बालकके सर्वांगमें हाथ फेरे।

सम्पूर्ण कर्म करनेके अनन्तर ब्राह्मणोंको दक्षिणा प्रदान करे और उसी समय भोजन करानेका संकल्प कर लेनेके अनन्तर सूतकान्तमें उन्हें भोजन कराये।

नालच्छेदन -

तदनन्तर आठ अंगुल छोड़कर नालच्छेदन करे और अभिषेक, मन्त्र-पाठ, तिलक आदि करके जातकर्म-कृत्य सम्पन्न करे।

५. विधि-विधान तथा उनका महत्त्व

(१) मेधाजनन: अब वास्तविक जातकर्म संस्कार आरम्भ होता था।

प्रथम कृत्य था मेधा-जनन। यह निम्नलिखित प्रकार से सम्पन्न होता था। पिता अपनी चौथी अंगुली और एक सोने की शलाका से शिशु को मधु बौर घृत अथवा केवल घी चटाता था। अन्य लेखकों के अनुसार दही, भात, जो तथा काले बैल के श्वेत-कृष्ण और लाल बाल भी दिये जाते थे। साथ में इस

मन्त्र का उच्चारण किया जाता था। तुसमें भूः निहित करता है: भुवः निहित करता है स्वः निहित करता है: भूः भुवः स्वः सभी तुझमें निहित करता है।' मेधा जनन शिद्ध के बौद्धिक विकास में जिसे वे उसके प्रति अपना प्रथम कर्तव्य समझते थे. हिन्दुओं की प्रगाढ़ रुचि का सूचक है। इस अवसर पर उच्चरित व्याहतियाँ वृद्धि की प्रतीक है। इनका पाठ गायत्री मन्त्र के साथ किया जाता था, जिसमें बुद्धि को प्रेरित

करने की प्रार्थना की गई है। जो पदार्थ शिष्णु को खिलाये जाते थे, वे भी उसके मानसिक विकास में सहायक थे। सुश्रुत के अनुसार घी के गुण निम्नलिखित हैं। 'यह सौन्दर्य का जनक है, मेधा बढ़ानेवाला तथा मधुर है। यह योषापस्मार, शिरो-वेदना, मृगी, ज्वर, अपच तथा तिल्ली का निवारक है; यह पाचनशक्ति, स्मृति, बुद्धि, प्रज्ञा, तेज, मधुरध्वनि, वीर्य और आयु का वर्धक है।" मधु तथा स्वर्ण के गुण भी शिशु के मानसिक विकास में समानरूप से सहायक है। गोभिल गृह्यसूत्र के अनुसार शिशु के कान में 'तू वेद है' इस वाक्य का उच्चारण करते हुए शिशु का एक नाम रखा जाता था। यह गुह्य नाम था, जिसे केवल माता-पिता जानते थे । इस नाम को प्रकट नहीं किया जाता था, क्योंकि यह आशंका रहती थी कि उस नाम पर किसी अभिचार (जादू-टोना) का प्रयोग कर शत्रु शिशु को क्षति पहुँचा सकते हैं।

(२) आयुष्य : जातकर्म-संस्कार का द्वितीय कृत्य था आयुष्य । शिशु की नाभि अथवा दाहिने कान के निकट पिता गुनगुनाता हुआ कहता था, 'अग्नि दीर्घजीवी है; वह वृक्षों में दीर्घजीवी है। मैं इस दीर्घ आयु से तुझे दीर्घायु करता हूँ; सोम दीर्घजीवी है; वह वनस्पतियों द्वारा दीर्घजीवी है, आदि । ब्रह्मा दीर्घजीवी है; वह अमृतत्व के द्वारा दीर्घजीवी है, आदि । ऋषि दीर्घजीवी हैं; वे अपने ज्ञान के द्वारा दीर्घजीवी हैं; आदि । यज्ञ दीर्घजीवी है; वह यज्ञीय अग्नि के द्वारा दीर्घजीवी है, आदि। समुद्र दीर्घजीवी है; वह नदियों द्वारा दीर्घजीवी है; आदि ।' इस प्रकार शिशु के समक्ष दीर्घायुष्य के सभी सम्भव उदाहरण प्रस्तुत किये जाते थे तथा विचारों के संयोग से यह विश्वास किया जाता था कि उक्त उदाहरणों के कथन से शिशु भी दीर्घायुष्य प्राप्त कर लेगा । दीर्घायुष्य के लिए अन्य कृत्य भी किये जाते थे। यह सोचते हुए कि इससे शिशु की आयु बढ़कर तिगुनी हो जायेगी, पिता 'तिगुनी आयु' आदि मन्त्र का तीन बार उच्चारण करता था । यदि पिता यह चाहता कि पुत्र अपनी पूर्ण आयु पर्यन्त जीवित रहे, तो वह वातस्पर सूक्त के साथ उसका स्पर्श करता था। केवल अपनी एकाकी इच्छा से सन्तुष्ट न होकर पिता पाँच ब्राह्मणों को निमन्त्रित करता, उन्हें पाँच दिशाओं में आसीन कर उनसे शिशु पर श्वासप्रश्वास छोड़ने की प्रार्थना करता था। ब्राह्मण निम्न-लिखित प्रकार से शिणु में जीवन का सन्चार करने में सहायता पहुँचाते थे। एक ब्राह्मण दक्षिण में कहता था, 'प्रतिश्वास'; दूसरा पश्चिम की ओर कहता था 'निश्वास'; एक ब्राह्मण उत्तर की ओर देखता हुआ कहता था 'बहिःश्वास' तथा एक ब्राह्मण ऊपर की ओर देखता हुआ कहता था, 'उच्छवास", आदि। यदि पाँच ब्राह्मणों का सहयोग प्राप्त नहीं हो पाता था, तो पिता स्वयं शिशु के चारों ओर घुमकर उक्त शब्दों का उच्चारण करता था । श्वास जीवन का जनक समझा जाता था । अतः यह चकत्मकारपूर्ण कृत्य शिशु के श्वास को सबल करने तथा उसका जीवन दीर्घतर करने के उद्देश्य से सम्पन्न किया जाता था ।

उस भूमि की जहाँ शिशु का जन्म होता था, जन-साधारण शिशु के सुरक्षित प्रसव का कारण समझता था, अतः उसका आदर किया जाता था । पिता उसे कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद देता था: हे पृथ्वी मैं तेरा हृदय जानता हूँ, वह हृदय जो आकाश में, जो चन्द्रमा में रहता है। मैं उसे जानता हूँ, वह मुझे जाने ।'

वह उससे आगे प्रार्थना करता था। 'हम सौ शरदऋतु देखें; हम सौ शरऋतु पर्यन्त सुनें।' १२

(३) बल : इसके पश्चात् पिता शिशु के दृढ़, वीरतापूर्ण तथा शुद्ध जीवन के लिए प्रार्थना करता था। वह शिशु से कहता था, 'तू पत्थर (आश्मा) हो, तू परशु हो, तू खरा स्वर्ण बन। तू यथार्थ में पुत्र नाम से आत्मा है; तू सौ शरद्-ऋतु पर्यन्त जीवित रह।'

इसके पश्चात् कुल की आशाओं के कोभूत पुत्र को जन्म देने के लिए माता की स्तुति की जाती थी। उसके सम्मान में पति निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करता था। 'तू पडा है; तू मित्रावरुण की पुत्री है; तुझ वीर-माता ने वीरपुत्र को जन्म दिया। जिसने हमलोगों को वीर पुत्र प्रदान किया, वह तू वीरवती हो।"

इडाऽसि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथाः।
सा त्वं वीरवती भव याऽस्मान् वीरवतीऽकरदिति॥

तब नाभि की गुण्डी पृथक् की जाती, शिशु को स्नान तथा माता का स्तन्य-पान कराया जाता था। निम्नलिखित मन्त्र के साथ पिता एक जलपूर्ण पात्र माता के सिर के निकट रखता था 'हे जल (आपः), तुम देवताओं के साथ निरीक्षण करते हो। जिस प्रकार तुम देवों के साथ देखभाल करते हो, उसी प्रकार इस सूतिका-गृह में स्थित माता और उसके शिशु की देख-भाल करो।' जल भूत-प्रेतों का निवारक समझा जाता था। अतः माता को उसके संरक्षण में सौंप दिया जाता था। सूतिका-गृह के द्वार के निकट उस अग्नि की विधिवत् स्थापना करके, जो पत्नी के सूतिका-गृह के प्रवेश के समय से निरन्तर प्रदीप्त रखी जाती थी, पति उसमें प्रतिदिन प्रातः सायं भूत-प्रेतों के निवारण के लिए धान के छिलकों से मिश्रित सरसों के बीजों की आहुति देता रहता था, जब तक कि वह प्रसव-शय्या को त्याग न देती थी। निम्नलिखित अभिचारपूर्ण वचनों का विनियोग किया जाता था 'शुण्ड और मर्क, उपवीर और शौण्डिकेय, उलूखल और मलिम्लुच, द्रोणाश और च्यवन यहाँ से दूर हों, स्वाहा ! अलिखत, अनिमिष, किम्वदन्त, उपश्रुति, हह्यक्ष, कुम्भिनशत्रु, पात्र-पाणि, नृमणि, हन्तृमुख, सर्षपारुण और च्यवन यहाँ से दूर हों, स्वाहा !' उपर्युक्त नाम उन रोगों और विकारों के हैं, जो शिशु पर आक्रमण कर सकते हैं। आदिम मानव भूत-प्रेतों के रूप में उनकी धारणा कर उन्हें सम्बोधित करता था। यहाँ उनकी धारणा काल्पनिक किन्तु चित्रमय है, उसी प्रकार उनके प्रतीकार के उपाय भी आभिचारिक किन्तु उपयोगी थे।

यदि शिशु पर रोगवाही भूत-प्रेत कुमार आक्रमण करता था, तो पिता उसे एक जाल अथवा उत्तरीय से बैंककर अपने अङ्क में ले लेता ओर इस प्रकार गुनगुनाता था : 'शिशुओं पर आक्रमण करनेवाले सुकुर्कुर, कूर्कुर उसे मुक्त कर दो। हे सिसर, मैं तुम्हारे प्रति आदर व्यक्त करता हूँ, आदि।" इन वचनों का प्रयोजन सम्भावित भूत-प्रेतों का प्रतीकार करना था। संस्कार में पिता अपनी अन्तिम कामना इन

शब्दों के साथ प्रकट करता था : 'जब हम उससे बोलते हैं और जब हम उसका स्पर्श करते हैं तो वह न तो पीड़ित ही हो और न कराहे, न तो अनम्र अथवा कठोर ही हो और न रुग्ण ही हो।' यह शिशु के प्रति पिता की हार्दिक कामना थी।

ब्रह्म तथा आदित्य पुराण में कहा गया है: 'पुत्र के जन्म होने पर द्विजाति के घर पर संस्कार को देखने के लिए देव और पितर आते हैं। अतः यह दिन शुभ तथा महत्त्वपूर्ण है। उस दिन स्वर्ण, भूमि, गौ, अश्व, छत्र, अज, माला, शय्या, आसन आदि का दान करना चाहिए।' व्यास के अनुसार पुत्रजन्म की रात्रि में दिये हुए दान से अक्षय पुण्य होता है।'

1.4 नामकरण संस्कार परिचय

नामकरण संस्कार का महत्व -

यह समस्त चराचर जगत् नामरूपात्मक है। संसारमें जितने भी प्राणी तथा वस्तुएँ हैं, सबका कोई-न-कोई रूप है और कोई-न-कोई नाम है। बिना नाम के वस्तु की पहचान ही नहीं हो सकती। लोक-व्यवहार की सिद्धि बिना नामके सम्भव भी नहीं है। कोई भी अपरिचित व्यक्ति पहले मिलता है तो सर्वप्रथम नाम पूछनेपर ही उसे जाना जा सकता है कि कौन है, पिताका नाम, निवासस्थानका नाम - इस प्रकार नामसे ही व्यक्ति या वस्तुके बारेमें ज्ञान हो पाता है। कल्पना कीजिये कि जन्म लिये हुए बालक या बालिकाका नाम न रखा जाय तो कैसे उसे पुकारा जा सकता है, पशु-पक्षी भी अपना नाम सुनकर उल्लसित-उत्कण्ठित होते हैं। नामकी महिमासे अगुण-अगोचर भी सगुण-साकार हो जाता है। भगवान्के तो अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं। आचार्य बृहस्पति बताते हैं कि 'नाम अखिल व्यवहार एवं मंगलमय कार्योंका हेतु है। नामसे ही मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है, इसीसे नामकर्म अत्यन्त प्रशस्त है'-

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म ॥

भगवान् तथा सन्तोंके नामकी महिमा तो इतनी अधिक है कि नाम लेते ही पुण्यकी प्राप्ति हो जाती है। भगवन्नामकी तो महिमा अवर्णनीय है। नामीसे भी नामकी महिमा अधिक है। इसी कारण जातकका नामकरण संस्कार किया जाता है।

स्मृतिसंग्रहमें बताया गया है कि व्यवहारकी सिद्धि, आयु एवं ओजकी वृद्धिके लिये नामकरण संस्कार करना चाहिये-

आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च सिद्धिर्व्यवहतेस्तथा ।
नामकर्मफलं त्वेतत् समुद्दिष्टं मनीषिभिः ॥

नामकरण संस्कार का समय-

नामकरण-संस्कार कब करना चाहिये। इस सम्बन्धमें गृह्यसूत्रोंमें व्यवस्था दी गयी है। आचार्य पारस्करने बताया है कि **'दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा पिता नाम करोति'** (पा०गृ०सू० १।१७।१)

इसमें तीन बातें बतायी हैं-

१- यह संस्कार दसवें दिनकी रात्रिके व्यतीत हो जानेपर ग्यारहवें दिन होता है।

२-पहले तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये।

३-बालकका नामकरण पिता करता है। कदाचित् पिता उपस्थित न हो तो पितामह, चाचा आदि भी यह संस्कार कर सकते हैं।

दसवें दिनतक जननाशौच रहता है और अशौचमें नामकरण नहीं होता। अतः अशौचकी निवृत्ति हो जानेपर ग्यारहवें दिन नामकरण-संस्कार करना चाहिये। व्यासस्मृति (१।१८) में कहा गया है- **'एकादशेऽह्नि नाम'** यही बात शंखस्मृतिमें कही गयी है-**'अशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते**।' याज्ञवल्क्यस्मृति (आचार० १२) में बताया गया है- **'अहन्येकादशे नाम**।' सुश्रुतसंहितामें भी कहा गया है- **'ततो दशमेऽहनि मातापितरौ कृतमङ्गलकौतुकौ स्वस्तिवाचनं कृत्वा नाम कुर्यातां यदभिप्रेतं नक्षत्र नाम वा'** (शारीर० १०।२४)। यदि किसी कारण नामकरणका नियत समय बीत जाय तो अठारहवें, उन्नीसवें, सौवें दिन अथवा अयनके बीतनेपर बालकका नामकरण-संस्कार किया जा सकता है। अथवा अपने कुलाचार एवं देशाचारके अनुसार शुभ मुहूर्तमें बालकका नामकरण-संस्कार कर लेना चाहिये। कुलाचारके अनुसार नामकरणका नियत समय होनेपर भी भद्रा, वैधृति, व्यतीपात, ग्रहण, संक्रान्ति, अमावास्या और श्राद्धके दिन बालकका नामकरण करना निषिद्ध है, परंतु नियत समयमें नामकरण करनेमें गुरु तथा शुक्रके अस्तका एवं मलमासादिका निषेध नहीं है।

नाम कैसा हो -

नामकी संरचना कैसी हो, इस विषयमें भी गृह्यसूत्रों एवं स्मृतियोंमें विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। पारस्करगृह्यसूत्र (१।१७।२-३) में बताया गया है-

'द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तस्थम् ।
दीर्घाभिनिष्ठानं कृतं कुर्यान्न तद्धितम् ॥
अयुजाक्षरमाकारान्तः स्त्रियै तद्धितम् ॥'

इसका तात्पर्य यह है कि बालकका नाम दो या चार अक्षरयुक्त, पहला अक्षर घोषवर्णयुक्त (वर्गका तीसरा, चौथा, पाँचवाँ वर्ण), मध्यमें अन्तःस्थवर्ण (य, र, ल, व आदि) और नामका अन्तिम वर्ण दीर्घ

एवं कृदन्त हो, तद्धितान्त न हो। यथा देवशर्मा, शूरवर्मा आदि। कन्याका नाम विषमवर्णी तीन या पाँच अक्षरयुक्त, दीर्घवर्णान्त एवं तद्धितान्त होना चाहिये यथा श्रीदेवी आदि।

वीरमित्रोदय-संस्कारप्रकाशमें चार प्रकारके नामका विधान आया है-१-कुलदेवतासे सम्बद्ध, २-माससे सम्बद्ध, ३-नक्षत्रसे सम्बद्ध तथा ४-व्यावहारिक नाम- **'तच्च नाम चतुर्विधम् । कुलदेवतासम्बद्धं माससम्बद्धं नक्षत्रसम्बद्धं व्यावहारिकं चेति।'**

धर्मसिन्धुमें चार प्रकारके नाम बताये गये हैं-१-देवनाम, २-मासनाम, ३-नक्षत्रनाम तथा नक्षत्रके चार चरणोंके आधारपर नाम और ४- व्यावहारिक नाम (पुकारनेका नाम)।

देवनाम - रामदास, कृष्णानुज आदि।
चैत्रादि मासनाम - वैकुण्ठ, जनार्दन, उपेन्द्र आदि।
नक्षत्रनाम - नक्षत्रके नामसे अथवा नक्षत्रोंके स्वामियोंके नामसे। यथा-अश्वयुक्, कार्तिक आदि।
नक्षत्र चरणों के आधार पर-

अश्विनीसे लेकर रेवतीतक २७ नक्षत्र होते हैं। प्रत्येक नक्षत्रके चार चरण होते हैं। एक नक्षत्र प्रायः ६० घटी रहता है। इस प्रकार एक चरण १५ घटीका होता है। जिस समय पुत्र या पुत्रीका जन्म होता है, उस समय इष्टकालके अनुसार जिस नक्षत्रके जिस चरणमें जन्म होता है, उस चरणमें जो अक्षर अवकहडाचक्रके अनुसार आता है, उसी अक्षरके अनुसार नाम पड़ता है। प्रत्येक नक्षत्रके चारों चरणोंके अक्षर अवकहडाचक्रमें निश्चित रहते हैं। जैसे-चूचे चोला अश्विनी, ली लू ले लो भरणी इत्यादि। यदि अश्विनी नक्षत्रके पहले चरणमें जन्म हो तो 'चू' से नाम प्रारम्भ होगा, जैसे चूडामणि आदि, द्वितीय चरणमें जन्म हो तो 'चे' अक्षरसे नाम होगा, जैसे चेतनशर्मा आदि। तृतीय चरणमें जन्म हो तो 'चो' अक्षरसे नाम होगा, जैसे चोलदास आदि और यदि चतुर्थचरणमें जन्म हो तो 'ला' अक्षरसे नाम होगा, जैसे लालमणि आदि। इसी प्रकार अन्य नक्षत्रोंके चरणोंसे भी नामकी कल्पना करनी चाहिये।

व्यावहारिक नाम -

कुछ ऋषियोंने नाक्षत्रिक नामको केवल उपनयन-संस्कारतक ही उपयुक्त बताया है, जिसे माता-पिता ही जानें अन्य नहीं, इसीलिये माता-पिता पुकारनेका कोई सुन्दर-सा नाम रख लेते हैं, यही व्यावहारिक नाम कहलाता है। शास्त्रकारोंने कहा है कि माता-पिताको बालकके मूल नामको गुप्त रखना चाहिये ताकि शत्रु आदिके अभिचारादि कर्मोंसे बालककी रक्षा की जा सके। पिताद्वारा ज्येष्ठ पुत्रका नाम सम्बोधित नहीं होता, ऐसी परम्परा है, अतः कोई व्यवहारका नाम भी रखा जाता है।

नाक्षत्रिक (राशि)- नामका प्राधान्य -

ज्योतिषशास्त्रके अनुसार जो नाम रखा जाता है, उसे नक्षत्राश्रय या नाक्षत्रिक एवं राशिनाम भी कहते हैं। ज्योतिष ग्रन्थोंके अतिरिक्त आयुर्वेदशास्त्रमें भी नाक्षत्रिक नामका ही प्राधान्य बताया गया है। सुश्रुतसंहितामें भी कहा गया है कि **'यद् अभिप्रेतं नक्षत्र नाम वा'** (सुश्रुतसंहिता शारीर० १०।२४) अर्थात् माता-पिताको अभीष्ट हो वह अथवा जिस नक्षत्रमें जन्म हो उस नक्षत्रसे सम्बद्ध नाम रखना चाहिये। मानवगृह्यसूत्र (१।१८।२) में भी कहा गया है कि नाम ऐसा रखना चाहिये, जो यशोवर्धक या यशका सूचक हो अथवा देवता या नक्षत्रके आश्रित हो- **यशस्यं नामधेयं देवताश्रयं नक्षत्राश्रयं च।** आचार्य चरकने भी कहा है- **'कुमारस्य पिता द्वे नामनी कारयेत् नाक्षत्रिकं नामाभिप्रायिकम्'** (चरक० शारीर० ८।५०) अर्थात् बालकका पिता दो नाम निश्चित करे- एक नक्षत्रसम्बन्धी हो और दूसरा अपनी अभिरुचिके अनुसार हो। वर्तमानमें ज्योतिषके अनुसार नक्षत्रोंके चरणोंके नामपर नाम रखनेकी परम्परा प्रचलित है। नक्षत्रपर रखे गये नामसे ही पता चल जाता है कि यह बालक या बालिका अमुक वर्षके अमुक मास, अमुक तिथि, अमुक वार तथा अमुक समयमें उत्पन्न हुआ है। जन्म-लग्नकुण्डली उसमें सहायक होती है, केवल पुकारका नाम रखनेपर यह सप्रमाण सिद्ध नहीं होता कि यह पुरुष कब उत्पन्न हुआ है। नक्षत्र नामसे चिकित्साका विचार भी आयुर्वेदशास्त्रमें हुआ है। वैद्य जब नामके आधारपर रोगीका जन्मनक्षत्र जान जाता है, तब उसके सामने रोगका स्वरूप भी स्पष्ट हो जाता है। वह जानता है कि अमुक नक्षत्रमें उत्पन्न होनेसे सामान्यतया इस शिशुकी प्रकृति यह है, वह तदनुकूल ही चिकित्सा करता है। नक्षत्रों के आधारपर निर्धारित नामको राशिनाम भी कहा जाता है; क्योंकि नक्षत्रोंसे ही राशियाँ बनती हैं। २७ नक्षत्रोंमें बारह राशियाँ बनती हैं। सवा दो नक्षत्र (नौ चरणों) की एक राशि होती है, यथा अश्विनीके चार चरण, भरणीके चार चरण और कृत्तिकाका पहला चरण। इस प्रकार ९ चरणोंकी पहली राशि मेष होती है। इसी प्रकार कृत्तिकाके अवशिष्ट तीन चरण, रोहिणीके चार चरण और मृगशिराके पहले दो चरण कुल मिलाकर नौ चरणोंकी 'वृष राशि' होती है। इसी प्रकार आगे भी क्रमशः मिथुन आदि राशियाँ बनती हैं। जो शिशु अश्विनी, भरणी तथा कृत्तिकाके प्रथम चरणमें उत्पन्न होगा, उसकी मेष राशि होगी। आगे वृष आदि राशियाँ होंगी।

1.5 नामों की संरचना

वर्णानुसार नामकी व्यवस्था -

नामकरणसंस्कार चारों वर्णोंका होता है। स्त्री एवं शूद्रका अमन्त्रक एवं द्विजातियोंका समन्त्रक होता है। पारस्करगृह्यसूत्र एवं मनुस्मृतिके अनुसार ब्राह्मणका नाम मंगल और आनन्दसूचक तथा शर्मायुक्त,

क्षत्रियका नाम बल, रक्षा और शासनक्षमताका सूचक तथा वर्मायुक्त, वैश्यका नाम धन-ऐश्वर्यसूचक, पुष्टियुक्त तथा गुप्तयुक्त और शूद्रका नाम सेवा आदि गुणोंसे युक्त एवं दासान्त होना चाहिये -

शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य । (पा०गृ०सू० १।१७।४)
मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥
शर्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥ (मनुस्मृति २। ३१-३२)

यही बात विष्णुपुराणमें भी बतायी गयी है-

शर्मेति ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रसंश्रयम् ।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ॥ (विष्णुपुराण ३।१०।९)

जन्मराशिनाम और पुकार नाम की व्यवस्था -

शास्त्रोंमें किस कर्मको राशिनामसे करना चाहिये तथा किस कर्मको पुकारनामसे ग्रहण करना चाहिये, इसपर विचार करते हुए कहा गया है कि विवाहमें, सभी प्रकारके मांगलिक कृत्योंमें, यात्राके मुहूर्तादि विचारमें तथा ग्रहगोचरकी गणना करनेमें जन्मराशि (नक्षत्रनाम) का प्राधान्य है। इसी प्रकार देश, ग्राम, युद्ध, सेवा तथा व्यावहारिक कार्योंमें नामराशिकी प्रधानता है-

विवाहे सर्वमाङ्गल्ये यात्रायां ग्रहगोचरे।
जन्मराशिप्रधानत्वं नामराशिं न चिन्तयेत् ॥
नामराशिप्रधानत्वं जन्मराशिं न चिन्तयेत् ॥
देशे ग्रामे गृहे युद्धे सेवायां व्यवहारके।

नामकरण-संस्कारकी बहुत उपयोगिता है, मनुष्यका जैसा नाम होता है, वैसे ही गुण भी होते हैं, यद्यपि इसका अपवाद भी मिलता है, किंतु अपवादसे उत्सर्गका खण्डन नहीं हो सकता। बालकोंका नाम लेकर पुकारनेसे उनके मनपर उस नामका असर पड़ता है और प्रायः उसीके अनुरूप चलनेका प्रयास भी होने लगता है, इसलिये नाममें यदि उदात्त भावना होती है तो बालकोंमें यश एवं भाग्यका अवश्य ही उदय सम्भव है। अजामिल एक पापात्मा था, फिर भी वह अपनी मृत्युके समय अपने पुत्रके 'नारायण'

नामके उच्चारणके प्रभावसे सद्गतिको प्राप्त हो गया, इसी कारण अधिकांश लोग अपने पुत्र-पुत्रियोंका नाम भगवन्नामपर रखना शुभ समझते हैं, ताकि इसी बहाने भगवन्नामका उच्चारण हो जाय।

विडम्बना है कि आज पाश्चात्य सभ्यताके अन्धानुकरणमें नामकरण-संस्कारका मूल स्वरूप प्रायः समाप्त ही हो गया है।

(अ) नाम-रचना

प्रथम प्रश्न जिस पर गृह्यसूत्रों तथा अन्य परवर्ती ग्रन्थों में विचार किया गया है, नाम-विधान से सम्बन्धित है। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार नाम दो अथवा चार अक्षरों का होना चाहिए, वह व्यञ्जन से आरम्भ होना चाहिए, इसमें अर्धस्वर होना चाहिए तथा नाम का अन्त दीर्घ स्वर अथवा विसर्ग के साथ होना चाहिए । नाम में कृत् प्रत्यय का प्रयोग किया जा सकता था, तद्धित का नहीं। बैजवाप के मतानुसार अक्षरों का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। उनके अनुसार 'पिता को एकाक्षर, द्वधक्षर अथवा अपरिमिताक्षर नाम रखना बाहिए ।' किन्तु वसिष्ठ उक्त संख्या को दो अथवा चार अक्षरों तक सीमित कर देते हैं तथा लकारान्त और रेफान्त नामों का वर्जन करते हैं।

तद् द्वघक्षरं चतुरक्षरं वा विवर्जयेदन्त्यलकाररेफम् । व. घ. सू., ४ ।

आश्वलायन गृह्यसूत्र अक्षरों की विभिन्न संख्याओं के साथ विभिन्न प्रकार के गुणों का योग करता है: 'प्रतिष्ठा अथवा कीति के लिए इच्छुक व्यक्ति को द्वधक्षर तथा ब्रह्मवर्चसकाम व्यक्ति को चतुरक्षर नाम रखना चाहिए।

द्वचक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतु रक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः । १. १५. ५।

बालकों के लिए अक्षरों की सम संख्या विहित थी ।

(आ) बालिका का नाम

बालिका के नामकरण का आधार भिन्न ही था। बालिका का नाम अक्षरों की विषम संख्या वाला तथा आकारान्त होना चाहिए और उसमें तद्धित का प्रयोग करना चाहिए।

अयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियै तद्धितम् । पा. गृ. सू., १. १७. ३ ।

बैजवाप लिखता है 'स्त्री का नाम त्र्यक्षर यथा ईका-रान्त होना चाहिए।

त्र्यक्षरमौकारान्तं स्त्रियाः। वी. मि. सं. भा. १, पृ. २४३ पर उद्धृत ।

मनु स्त्री-नामों की अन्य विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार करते हैं: 'वह उच्चारण में सुखकर और सरल, सुनने में अक्रूर, विस्प-ष्टार्थ तथा मनोहर, मङ्गलसूचक, दीर्घवर्णान्त और आशीर्वाद-युक्त होना चाहिए।"

स्त्रीणां च सुखमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ।

माङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ।। म. स्मृ., २. ३३ ।

उसका 'नक्षत्र (ऋक्ष), वृक्ष, नदी, पर्वत, पक्षी, सर्प तथा सेवक के नाम पर और भीषण नाम नहीं रखना चाहिए।' मनु उक्त प्रकार के नाम-बाली कन्याओं से विवाह का निषेध करते हैं। इसका सर्वाधिक सम्भव कारण यह प्रतीत होता है कि इस प्रकार के नाम वन्य तथा पार्वत्य जनों में प्रचलित थे, जिनसे सभ्य लोग वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहते थे ।

(इ) सामाजिक स्थिति एक निर्णायक तत्त्व

व्यक्ति की सामाजिक स्थिति भी उसके नाम-विधान में एक निर्णायक तत्त्व थी। मनु के अनुसार 'बाह्मण का नाम मङ्गल सूचक क्षत्रिय कारक, वैश्य का धनसूचक तथा शूद्र का नाम जुगुप्सित अथवा कुत्सासूचक रखना चाहिए।"

मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ।। म. स्मृ., २. ३१ ।

उदाहरणार्थ, ब्राह्मण का नाम लक्ष्मीधर, क्षत्रिय का नाम युधिष्ठिर, वैश्य का महाधन तथा शूद्र का नाम नरदास होना चाहिए।' पुनश्च ब्राहाण का नाम सुख तथा आनन्द का सूचक होना चाहिए, क्षत्रिय का रक्षा तया शासन की क्षमता का सूचक, वैश्य का पुष्टि तथा ऐश्वर्य का सूचक तथा शूद्र का नाम दास्य अथवा आज्ञाकारिता का व्यञ्जक होना चाहिए। विभिन्न वर्षों के भिन्न-भिन्न उपनाम होने चाहिएँ 'ब्राह्मण के नाम के साथ शर्मा, क्षत्रिय के नाम के साथ वर्मा, वैश्य के नाम के साथ गुप्त तथा शूद्र के नाम के साथ दास शब्द का प्रयोग किया जाता था।'

शर्मेति ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रियस्य तु ।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ।। व्यास ।

वर्णभेद की भावना हिन्दू-मानस में बहुत गहरी जम चुकी थी तथा विशिष्ट कुल में जन्म बालक के भावी जीवन का निर्णायक था। व्यक्ति का संसार में क्या स्थान होगा, यह पहले से ही निश्चित हो जाता था तथा उसी के अनुरूप उसे सामाजिक महत्त्व के विशेषाधिकार उपलब्ध होते थे। किन्तु यह जातिगत जटिलता प्राचीन हिन्दुओं तक ही सीमित रही हो, यह बात नहीं है। यह अन्य भारोपीय जनों में प्रचलित प्रथा है।

(ई) चार प्रकार के नाम

उस नक्षत्र के अनुसार जिसमें शिशु का जन्म हुआ हो, उस मास के देवता, कुल-देवता तथा लोकप्रचलित सम्बोधन के अनुसार चार प्रकार के नाम प्रचलित थे। प्राक्सूत्र अथवा सूत्र-युग में यह पद्धति पूर्ण विकसित नहीं हो पाई थी। गृह्यसूत्र केवल नक्षत्र-नाम तथा लौकिक नाम से परिचित थे।

अन्य नाम उन्हें अज्ञात थे। इस पद्धति का पूर्ण विस्तार परवर्ती स्मृतियों तथा ज्योतिष-विषयक ग्रन्थों में हुआ। इस विकास का कारण धार्मिक मतों तथा ज्योतिष का उत्थान था। साम्प्रदायिक धर्मों ने कुल देवताओं को जन्म दिया। ज्योतिष जनसाधारण को नक्षत्रलोक के प्रभाव में ले आया तथा यह विश्वास प्रचलित हो गया कि प्रत्येक काल पर कोई-न-कोई अधिष्ठातृ-देवता शासन करता है। इस विश्वास से दिन तथा मास आदि के देवताओं का उदय हुआ।

१. नक्षत्र नाम

यह उस नक्षत्रके नाम से निष्पन्न होता था जिसमें शिशु का जन्म होता था अथवा उस नक्षत्र के अधिष्ठातृ देवता के नाम पर उनका नाम रखा जाता था। शङ्ख तथा लिखित विधान करते हैं कि 'पिता अथवा कुलवृद्ध को शिशु का नक्षत्र से सम्बद्ध नाम रखना चाहिए।
नक्षत्रनाम सम्बद्धं पिता वा कुर्यादन्यो कुलवृद्ध इति।

नक्षत्रों तथा उनके देवताओं के नाम इस प्रकार हैं अश्विनी अश्विन्, भरणी-यम, कृत्तिका-अग्नि, रोहिणी-प्रजापति, मृगशिरा सोम, आर्द्रा-रुद्र, पुनर्वसु अदिति, पुष्य-बृहस्पति, आश्लेषा-सर्प, मधा-पितृ, पूर्वाफाल्गुनी-भग, उत्तराफाल्गुनी-अर्यमन्, हस्त-सवितृ, चित्रा त्वष्टा, स्वाती वायु, विशाखा इग्द्राग्नि, अनु-राधा-मित्र, ज्येष्ठा-इन्द्र, मूल-निर्ऋति, पूर्वाषाढ़ आप्, उत्तराषाढ़ा-विश्वे-देव, श्रवण-विष्णु, धनिष्ठा-वसु, शतभिषक् वरुण, पूर्वभाद्रपदा-अजैकपाद, उत्तरभाद्रपद-अहिर्बुदध्न्य तथा रेवती-पूषन्। यदि बालक अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न होता तो उसका नाम अश्विनीकुमार रखा जाता और यदि रोहिणी नक्षत्र में तो रोहिणीकुमार आदि। नक्षत्र के आधार पर शिशु के नामकरण का एक अन्य प्रकार भी प्रचलित था। यह विश्वास प्रचलित है कि संस्कृत-वर्णमाला के विभिन्न अक्षरों के विभिन्न नक्षत्र अधिष्ठाता हैं। किन्तु क्योंकि अक्षर ५२ हैं और नक्षत्र केवल २७, अतः प्रत्येक नक्षत्र के प्रभाव में एक से अधिक अक्षर हैं। शिशु का नाम उस विशिष्ट नक्षत्र द्वारा अधिष्ठित किन्हीं अक्षरों से आरम्भ होना चाहिए। एक शिशु, जिसका जन्म अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो, जो चू-चे-चो-ल इन अक्षरों का अधिष्ठाता है, तो उसका नाम नक्षत्र की विभिन्न गतियों के अनुसार चूडामणि, चेदीश, चोलेश अथवा लक्ष्मण रखा जाता था।

बौधायन के अनुसार नक्षत्र पर आधारित नाम गुह्य रखा जाता था।'
नक्षत्रनामधेयेन द्वितीयं नामधेयं गुह्यम्।

यह वयोवृद्धों का सत्कार करने के लिए द्वितीय नाम था तथा उपनयन के काल तक यह केवल माता-पिता को विदित रहता था। कतिपय आचार्यों के भतानुसार यह गुह्यनाम जन्म के दिन रखा जाता था।

अभिवादनीय नाम के विषय में आश्वलायन भी कहते हैं कि यह नामकरण के दिन निश्चित किया जाना चाहिए तथा उपनयनपर्यन्त केवल माता-पिता को ही ज्ञात होना चाहिए।

अभिवादनीयं समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामुपनयात् ।

शौनक का भी यही विचार है कि 'वह नाम जिसके द्वारा बालक उपनीत होने के पश्चात् वयोवृद्धों का अभिवादन करता है, उसे दिया जाना चाहिए । इस पर विचार करने के पश्चात् पिता को धीमे स्वर से शिशु के कान में कहना चाहिए, जिससे कि अन्य व्यक्ति उसे न जान सकें। उपनयन के समय माता-पिता को यह स्मरण करना चाहिए।' नक्षत्र पर आधारित नाम व्यक्ति के जीवन से घनिष्ठतया सम्बद्ध था। अतः यह गुह्य रखा जाता था अन्यथा इसके द्वारा शत्रु उस व्यक्ति को कोई-न-कोई क्षति पहुँचा सकता था, ऐसा विश्वास था ।

२. मास के देवता पर आधारित नाम

नामकरण का एक अन्य प्रकार उस मास के देवता पर आधारित था जिसमें बालक का जन्म हुआ हो। गार्ग्य के अनुसार मार्गशीर्ष से क्रमशः बारह मासों के नाम हैं: कृष्ण, अनन्त, अच्युत, चक्री, वैकुण्ठ, जनार्दन, उपेन्द्र, यज्ञ-पुरुष, वासुदेव, हरि, योगीश तथा पुण्डरीकाक्ष।

कृष्णोऽनन्तोऽच्युतश्चक्री वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः ।
उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः ।
योगीशः पुण्डरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् ।।

मास के देवता के आधार पर बालक का द्वितीय नाम रखा जाता था। उपर्युक्त समस्त नाम वैष्णव मत से सम्बद्ध हैं तथा प्रादुर्भाव की दृष्टि से वे सूत्रकाल की अपेक्षा अत्यन्त परवर्ती हैं ।

३. कुल-बेवता पर आधारित नाम

कुलदेवतासम्बद्धं पिता नाम कुर्यादिति ।

तृतीय नाम कुलदेवता के अनुसार रखा जाता था। कुलदेवता वह देवी या देवता था जिसकी पूजा कुल अथवा जन में अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आती हो।

कुलदेवता कुलपूज्या देवता तया सम्बद्धं तत्प्रतिपादकमित्यर्थः ।
अस्मिश्च व्याख्याने अनादिरवच्छिन्नः शिष्टाचारो मूलम् ।

इस आधार पर शिशु का नाम रखते समय लोग यह सोचते थे कि शिशु को कुल-देवता का संरक्षण प्राप्त होगा। यह इन्द्र, सोम, वरुण, मित्र, प्रजापति आदि वैदिक अथवा कृष्ण, राम, शङ्कर, गणेश आदि पौराणिक देवता हो सकते थे। शिशु का नाम रखते समय, देवता के नाम के साथ 'दास' अथवा 'भक्त' शब्द का योग कर दिया जाता था ।

४. लौकिक नाम

नामकरण का अन्तिम प्रकार लौकिक था। लौकिक नाम समाज के साधारण व्यवहार के लिए रखा जाता था तथा व्यावहारिक दृष्टि से वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। नामकरण के समय नाम-रचना-विषयक उपर्युक्त नियमों का ध्यान रखा जाता था। इस नाम की रचना प्रधानतः कुल की संस्कृति तथा शिक्षा पर निर्भर करती थी। इस नाम का मङ्गलसूचक तथा अर्थपूर्ण होना वाञ्छनीय था।

नामकरण में जिन सिद्धांतों का अनुसरण किया जाता था, वे निम्नलिखित ये। सर्वप्रथम, नाम उच्चारण में सरल तथा श्रवण-सुखद होना चाहिये। इस प्रयोजन के लिए विशिष्ट अक्षर तथा स्वर चुने जाते थे। दूसरे, नाम लिङ्ग-भेद का द्योतक होना चाहिए। प्रकृति ने शारीरिक रचना द्वारा लिङ्गों में पार्थक्य स्थापित किया है। पुरुष प्रकृति से ही कठोर तथा सबल होते हैं और नारी कोमल तथा सुन्दर होती है। अतः पुरुषों और स्त्रियों के लिए इस प्रकार के नामों का चुनाव, जो उनकी प्राकृतिक रचना तथा स्वभाव के द्योतक हों, उपयुक्त ही था। इसी कारण स्त्री-नाम स्त्रीलिंग-आकारान्त अथवा ईका रान्त होते हैं। स्त्री-नाम में अक्षरों की विषम संख्या का भी यही प्रयोजन था। तृतीय सिद्धान्त यह था कि नाम यश, ऐश्वर्य, शक्ति आदि का द्योतक होना चाहिए। अन्ततः नाम व्यक्ति की अपनी जाति का भी सूचक होता था। यह किसी प्रकार की पूछ-ताछ के बिना ही व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को स्पष्ट कर देता था। नामकरण की उपर्युक्त पद्धति तर्कसङ्गत है तथा उसकी अवज्ञा किसी भी प्रकार लाभप्रद नहीं है, भले ही संस्कार के विश्वास-मूलक और धार्मिक पार्श्वों की उपेक्षा की जाए। शिशु के नामकरण के प्रति इस विलक्षण सावधानी का कारण यह था कि वह मनुष्य के जीवन-पर्यन्त उससे संयुक्त रहता था। यह उस आदर्श का अनवरत स्मारक था, जिसके प्रति व्यक्ति से निष्ठावान् तथा सच्चे रहने की अपेक्षा की जाती थी।

५. प्रतिकारात्मक तथा भर्त्सनासूचक नाम

यहाँ तक नामकरण के धर्मशास्त्रीय प्रकारों पर प्रकाश डाला गया। किन्तु जनसाधारण ने अन्य अनेक विषयों पर भी विचार किया होगा, जैसा कि वे आज भी करते हैं। वे भाग्यहीन माता-पिता, जिनकी पूर्वसन्तान मृत्यु को प्राप्त हो चुकती थी, भूत-प्रेतों, रोगों तथा मृत्यु को भयभीत करने के लिए अपने शिशु का कुरुचि पूर्ण प्रतीकारात्मक तथा निन्दा-सूचक नाम रख दिया करते थे, जैसे शुनःशेप आदि।

विधि-विधान तथा उनका महत्त्व

गृह्यसूत्रों के सामान्य नियम के अनुसार' नामकरण संस्कार शिशु के जन्म के पश्चात् दसवें अथवा बारहवें

दिन सम्पन्न किया जाता था। इसका एकमात्र अपवाद था गुह्यनाम, जो कतिपय आचार्यों के अनुसार जन्म के दिन रखा जाता था। किन्तु परवर्ती विकल्प के अनुसार नामकरण जन्म के पश्चात् दसवें दिन से लेकर द्वितीय वर्ष के प्रथम दिन तक सम्पन्न किया जा सकता था।

एक आचार्य के अनुसार 'नामकरण दसवें, बारहवें, सौवें दिन अथवा प्रथम वर्ष के समाप्त होने पर करना चाहिए। इस व्यापक विकल्प का कारण परिवार की सुविधा तथा माता और शिशु का स्वास्थ्य था। किन्तु दसवें से बत्तीसवें दिन पर्यन्त के विकल्प के कारण विभिन्न वर्षों के लिए विहित सांस्कारिक अशौच की विभिन्न अवधियाँ थीं। बृहस्पति के मतानुसार 'शिशु का नामकरण जन्म से दसवें, बारहवें, तेरहवं, सोलहवं, उन्नीसवें अथवा बत्ती-सर्वे दिन सम्पन्न करना चाहिए। '

द्वादशाहे दशाहे वा जन्मतोऽपि त्रयोदशे।
षोडशैकोर्नाविशे वा द्वात्रिंशे वर्णतः क्रमात्॥

किन्तु ज्योतिष-विषयक ग्रन्थों के अनुसार प्राकृतिक असाधारणता अथवा धार्मिक अनौचित्य होने पर उक्त दिनों में भी संस्कार स्थगित किया जा सकता था। 'संक्रान्ति, ग्रहण अथवा श्राद्ध के दिन सम्पन्न संस्कार मङ्गलमय नहीं माना जाता था।' इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य निषिद्ध दिन भी थे, जिनका वर्जन किया जाता था।

जननाशौच समाप्त होने पर घर प्रक्षालित तथा शुद्ध किया जाता था तथा शिशु और माता को स्नान कराया जाता था। वास्तविक संस्कार के पूर्व आरम्भिक कृत्य सम्पन्न किये जाते थे। तब माता शिशु को शुद्ध वस्त्र से ढंक कर तथा उसके सिर को जल से आर्द्र कर पिता को हस्तान्तरित कर देती थी। इसके पश्चात् प्रजापति, तिथि, नक्षत्र तथा उनके देवता, अग्नि और सोम को आहुतियाँ दी जाती थीं।" पिता शिशु के श्वास-प्रश्वासों को स्पर्श करता था, जिसका उद्देश्य सम्भवतः शिशु की चेतना का उद्बोधन तथा उसका ध्यान संस्कार की ओर आकृष्ट करना था। तब नाम रखा जाता था। इसकी विधि क्या थी इसका वर्णन गृह्यसूत्रों में नहीं किया गया है, किन्तु पद्धतियों में निम्नलिखित विधि प्राप्त होती है शिशु के दाहिने कान की ओर झुकता हुआ पिता उसे इस प्रकार सम्बोधित करता था हे शिशो, कुलदेवता का भक्त है, तेरा नाम है", तू इस मास में उत्पन्न हुआ है, अतः तेरा नाम है", तू इस नक्षत्र में जन्मा है, अतः तेरा नाम तेरा लौकिक नाम।' वहाँ पर एकत्र ब्राह्मण कहते थे प्रतिष्ठित हो।' इसके पश्चात् पिता औपचारिक रूप से शिशु से अभिवादन कराता था, देते थे। वे 'तू वेद है' उसका अभिवादनीय नाम देवताओं तथा पितरों को समाप्त होता था। है", तथा 'यह नाम ब्राह्मणों को जो उसे 'सुन्दर शिशु, दीर्घायु हो', आदि आशिष आदि ऋचा का भी उच्चारण करते थे। अन्त में रखा जाता था। ब्राह्मणभोजन - अपने स्थानों को प्रेषित करने-तथा आदरपूर्वक अपनेपर संस्कार समाप्त होता है|

बोध प्रश्न -

1. जातकर्म संस्कार जन्मोतर संस्कार में कौन सा संस्कार है|

क. द्वितीय ख. प्रथम ग. तृतीय घ. चतुर्थ

2. सोडश संस्कार में नामकरण संस्कार कौन से नंबर का संस्कार है |

क. पंचम ख. द्वितीय ग. तृतीय घ. चतुर्थ

3. मनु के अनुसार 'बाह्मण का नाम होना चाहिये|

क. कारक ख. धनसूचक ग. मङ्गल सूचक घ. जुगुप्सित

4. मनु के अनुसार वैश्य का नाम होना चाहिये|

क. मङ्गल सूचक ख. जुगुप्सित ग. कारक घ. धनसूचक

5. नक्षत्रों की संख्या है

क. 24 ख. 27 ग. 25 घ. 25

1.6 सारांश

इस इकाई में आपने जन्मोतर संस्कारों में से प्रथा व द्वितीय संस्कारों के बारे में जाना होगा| प्रथम जातकर्म संस्कार बालकके जन्म होनेसे पूर्व तीन संस्कार होते हैं- गर्भाधान, पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन। सीमन्तोन्नयन प्रायः आठवें मासतक हो जाता है, उसके बाद लगभग एक-डेढ मासके अनन्तर प्रसव होता है। जन्म होनेके बाद जो सबसे पहले संस्कार होता है, उसीका नाम जातकर्म है। नामकरण संस्कार लोक-व्यवहार की सिद्धि बिना नामके सम्भव भी नहीं है। कोई भी अपरिचित व्यक्ति पहले मिलता है तो सर्वप्रथम नाम पूछनेपर ही उसे जाना जा सकता है कि कौन है, पिताका नाम, निवासस्थानका नाम - इस प्रकार नामसे ही व्यक्ति या वस्तुके बारेमें ज्ञान हो पाता है। कल्पना कीजिये कि जन्म लिये हुए बालक या बालिकाका नाम न रखा जाय तो कैसे उसे पुकारा जा सकता है, पशु-पक्षी भी अपना नाम सुनकर उल्लसित-उत्कण्ठित होते हैं। नामकी महिमासे अगुण-अगोचर भी सगुण-साकार हो जाता है। भगवान के तो अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं। इस इस इकाई को पड़ने के बाद आप यह जान सके होंगे की जातकर्म व नामकरण संस्कार क्या है और इसे क्यों किया जाता है|

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. ग
4. घ
5. ख

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

नित्यकर्म पूजाप्रकाश पं लालविहारी मिश्र गीताप्रेस गोरखपुर
कर्मठ गुरुः पं मुकुन्द बल्लभ मोतीलाल वनारसीदास , वाराणसी
सर्व देव पूजा पद्धति शिव दत्त मिश्र चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
हिन्दू संस्कार
षोडश संस्कार पद्धति

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जातकर्म संस्कार का विस्तृत वर्णन कीजिए|
2. नामकरण संस्कार के महत्व को प्रतिपादित कीजिए|
3. नामकरण संस्कार में नामों के महत्व पर प्रकाश डालिये|

इकाई - 2 निष्क्रमण एवं अन्नप्राशन संस्कार

इकाई की संरचना –

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 निष्क्रमण संस्कार
2.4 अन्नप्राशन संस्कार
2.5 अन्नप्राशन संस्कार विधि
2.6 सारांश
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई षोडश संस्कार परिचय नामक पुस्तक के निष्क्रमण एवं अन्नप्राशन नामक शीर्षक से है| इससे पहले की इकाई में आपने जन्मोत्तर संस्कारों के बारे में जाना व पड़ा होगा| इस इकाई में आप निष्क्रमण व अन्नप्राशन संस्कारों के बारे में जान पायेंगें कि ये किस- किस अवधि में किया जाता है,तथा इन संस्कारों को किस प्रकार से सम्पन्न कराया जाता है| शिशु के उन्नतिशील जीवन में प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पग और परिवर्तन माता-पिता तथा परिवार के लिए हर्ष और आनन्द का अवसर था तथा वह अवसरोचित धार्मिक विधि-विधानों के साथ मनाया जाता था। प्रसूति-गृह में सीमित रहने की अवधि समाप्त हो जाने पर माता उस छोटे से कमरे से बाहर आती और पुनः पारिवारिक जीवन में भाग लेना आरम्भ कर देती थी। इसी प्रकार नामकरण संस्कार ठोस भोजन या अन्न खिलाना शिशु के जीवन में एक अन्य महत्त्वपूर्ण सोपान था। अब तक अपने भोजन के लिए वह केवल माता के स्तन्य (दूध) पर ही आश्रित था। किन्तु छह या सात मास के पश्चात् उसका शरीर विकसित हो जाता और उसके लिए अधिक मात्रा में भिन्न प्रकार का भोजन अपेक्षित होता, जब कि दूसरी ओर माता के दूध की मात्रा घट जाती थी। इस प्रकार से आप इन सब बातों को इस इकाई के माध्यम से आप साँझ पायेंगें|

2.2 उद्देश्य

- ❖ निष्क्रमण संस्कार क्या है ,इसे समझ पायेंगें|
- ❖ निष्क्रमण के महत्व को समझ सकेंगें|
- ❖ अन्नप्राशन के महत्व को समझ सकेंगें|
- ❖ अन्नप्राशन कि विधि को जान सकेंगें|

2.3 निष्क्रमण संस्कार

निष्क्रमण अथवा शिशु को विधि-विधानपूर्वक घर से प्रथम बार बाहर लाने की प्रथा भले ही अत्यन्त प्राचीन रही हो, किन्तु हम वैदिक साहित्य में इसका कोई भी उल्लेख नहीं पाते। इस संस्कार के अवसर पर उच्चारण किया जानेवाला 'तरुचक्षुर्देवहितम्" मन्त्र सामान्य प्रयोगवाला है और किसी भी स्थान पर सूर्य की ओर देखते समय इस मन्त्र का व्यवहार किया जाता है। अतः प्रस्तुत संस्कार की दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्व नहीं है। गृह्यसूत्रों में दी हुई विधि भी अत्यन्त साधारण है। इसके अनुसार पिता बालक को बाहर ले जाता और 'तच्चक्षुर्देवहितम्', आदि मन्त्र के साथ उसे सूर्य का दर्शन कराता था।

आचार्य पारस्करजीने निष्क्रमणकर्मके सम्बन्धमें दो सूत्र दिये हैं- **'चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका ।' 'सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति ' (पा०गृ०सू० १।१७।५-६)।** इन सूत्रोंमें यह बताया गया है कि

निष्क्रमण-संस्कार बालकके जन्मके बाद चौथे मासमें करना चाहिये, किंतु व्यवहारकी सुविधाके लिये शिष्टजन प्रायः नामकरण-संस्कारके अनन्तर ही अपकृष्ट करके इस कर्मको भी सम्पन्न कर लेते हैं- **'द्वादशेऽहनि राजेन्द्र शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्'** (भविष्योत्तरपुराण) ।

इस संस्कारमें मुख्य रूपसे शिशुको सूतिकागृहसे बाहर लाकर सूर्यका दर्शन कराया जाता है- **'अथ निष्क्रमणं नाम गृहात्प्रथम-निर्गमः'** (बृहस्पति)। इसका तात्पर्य यह है कि निष्क्रमणकर्मके पूर्व शिशुको घरके अन्दर ही रखना चाहिये। इसमें कारण यह है कि अभी शिशुकी आँखें कोमलतावश कच्ची रहती हैं, यदि शिशुको शीघ्र ही सूर्यके तीव्र प्रकाशमें लाया जायगा तो उसकी आँखोंपर दुष्प्रभाव पड़ेगा, भविष्यमें उसकी आँखोंकी शक्ति या तो मन्द रहेगी या उसका शीघ्र ही ह्रास होगा। इस कारण भारतीय नारियाँ बच्चेको शीशा भी नहीं देखने देतीं; क्योंकि शीशेकी चमक भी कच्ची आँखोंको चौंधिया देती हैं, सूतिकागृहमें तेज रोशनी भी इसी कारण नहीं रखी जाती। धीरे-धीरे शिशुमें शक्तिसंचय हो जानेसे क्रम-क्रमसे घरके दीपककी ज्योति देखनेमें अभ्यस्त होकर तब उसकी आँखें बाह्य प्रकाशमें गमनके योग्य होती हैं। यद्यपि बिना संस्कारके भी यह लाभ उसे प्राप्त होना सम्भव है, किंतु मन्त्रोंके साथ होनेपर इनका प्रभाव अमोघ और दीर्घकालीन होता है तथा शास्त्रकी मर्यादाका भी रक्षण होता है। अतः संस्कार विहित विधिके अनुसार ही करना चाहिये।

इस कर्ममें दिग्देवताओं, दिशाओं, चन्द्र, सूर्य, वासुदेव तथा गगन (आकाश) - इन देवताओंका किसी जलपूर्ण पात्रमें आवाहन करके उनके नाम-मन्त्रोंसे पूजन होता है और पूजनके अनन्तर उनकी प्रार्थना की जाती है।

तदनन्तर शंख-घण्टानादपूर्वक शान्तिपाठ करते हुए बालकको लेकर घरसे बाहर आँगनमें, जहाँसे सूर्यदर्शन हो सके, ऐसे स्थानमें आकर किसी ताम्रपात्रमें सूर्यकी स्थापना-प्रतिष्ठाकर उनका पूजन करना चाहिये और सूर्यार्घ्य प्रदानकर **'ॐ तच्चक्षुर्देवहितं०'** इस मन्त्रका पाठ करते हुए बालकको सूर्यका दर्शन कराना चाहिये और ब्राह्मणोंको दक्षिणा-भोजन आदि कराकर कर्म सम्पन्न करना चाहिये।

निष्क्रमण-संस्कार के उपांगकर्म

(क) भूमि-उपवेशन कर्म -

पारस्करगृह्यसूत्र (१।१७।६) के भाष्यमें आचार्य गदाधरने प्रयोगपारिजातका उद्धरण देते हुए बताया है कि जन्मके पाँचवें मासमें भूमि-उपवेशन कर्म होता है, जिसमें भूमिपूजन करके पहली बार बालकको भूमिका स्पर्श कराया जाता है। **'पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत्।'**

उपर्युक्त वचनसे भूम्युपवेशन कर्म पाँचवें मासमें विहित है, किंतु समाचारसे सुविधाकी दृष्टिसे नामकर्म-संस्कारके दिन निष्क्रमणकर्म करके यह संस्कार कर लेनेकी परम्परा भी है।

बालक के लिये भूम्युपवेशन-संस्कारका अत्यन्त महत्त्व है। इसे करनेसे पृथ्वीमाता जीवनपर्यन्त उसकी रक्षा करती हैं और मृत्युके अनन्तर भी अपनी गोदमें धारण करती हैं। शास्त्रोंमें मनुष्योंका पृथ्वीमाताकी गोदमें मरनेका विशेष महत्त्व है, इसीलिये मरणासन्न व्यक्तिको भूमिपर लिटा दिया जाता है। मृत्युके समय पलंग आदिपर मरनेसे सद्गति नहीं होती, ऐसा शास्त्रीय नियम है।

(ख) दोलारोहण - पर्यंकारोहण -

शिशु के लिये नया दोला (झूला, पर्यंक, हिंडोला) आदि बनवाया जाता है और प्रथम बार माताकी गोदसे उस दोलापर बैठानेका मांगलिक कर्म दोलारोहण कहा जाता है। इसे कब करना चाहिये, इसके विषयमें बताया गया है कि नामकरण-संस्कारके दिन, सोलहवें दिन अथवा २२वें दिन अथवा किसी शुभ दिन, शुभ मुहूर्तमें कुलदेवताका पूजन करके हरिद्रा, कुमकुम आदिसे सुसज्जित डोलेमें माता, सौभाग्यवती स्त्रियाँ योगशायी भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए मंगल गीत-वाद्योंकी ध्वनिके साथ भली प्रकारसे अलंकृत किये शिशुको नवीन वस्त्रसे आच्छादित पर्यंकपर पूर्वकी ओर सिर करके सुलाती हैं और मांगलिक कार्योंको सम्पन्न करती हैं।

(ग) गोदुग्धपान -

अभी तक बालक माताके दूधपर ही आश्रित था, अब उसे विशेष दूधकी भी आवश्यकता होने लगती है। अतः जन्मके ३१वें दिन अथवा किसी शुभ दिनमें शुभ मुहूर्तमें कुलदेवताका पूजन करनेके अनन्तर बालककी माता अथवा कोई सौभाग्यशालिनी स्त्री शंखमें गोदुग्ध भरकर धीरे-धीरे बच्चेको प्रथम बार पान कराती है। आयुर्वेदशास्त्रमें गोदुग्ध के गुणों तथा उसकी उपयोगिताको बताते हुए कहा गया है कि गायका दूध स्वादिष्ट, शीतल, मृदु, स्निग्ध, बहल (गाढ़ा), श्लक्ष्ण, पिच्छिल, गुरु, मन्द और प्रसन्न - इन दस गुणोंसे युक्त रहता है। यह जीवनीशक्ति प्रदान करनेवाले द्रव्योंमें सबसे श्रेष्ठ और रसायन है- **'प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम्'** (चरकसंहिता सूत्रस्थान २७।२१८)। माताके दूधके विषयमें बताया गया है कि यह शरीरमें जीवनी शक्तिको देनेवाला होता है, बृंहण होता है, जन्मसे ही प्रत्येक मनुष्यके लिये अनुकूल होता है तथा शरीरमें स्निग्धता लाता है- 'जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः।' (चरकसंहिता, सूत्रस्थान २७। २२४)

प्रादुर्भाव

शिशु के उन्नतिशील जीवन में प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पग और परिवर्तन माता-पिता तथा परिवार के लिए हर्ष और आनन्द का अवसर था तथा वह अवसरोचित धार्मिक विधि-विधानों के साथ मनाया जाता था। प्रसूति-गृह में सीमित रहने की अवधि समाप्त हो जाने पर माता उस छोटे से कमरे से बाहर आती और पुनः पारिवारिक जीवन में भाग लेना आरम्भ कर देती थी। इसके साथ ही शिशु का संसार

भी कुछ अधिक विस्तृत हो जाता था। अब वह घर के किसी भी भाग में ले जाया जा सकता था। माता-पिता तथा परिवार के प्रौढ़ तथा वयोवृद्ध सदस्य उसे खिलाते और बच्चे उसके साथ खेलते । बालक के छोटे-जिज्ञासु नेत्र घर के प्रत्येक सदस्य को एकाग्रतापूर्वक देखते और वह किसी भी वस्तु को अनदेखी न रहने देता। किन्तु एक या दो मास में ही शिशु का विश्व बहुत छोटा प्रतीत होने लगता । उसकी जिज्ञासा तथा उसके विभिन्न अङ्गों की गति-विधि की तुष्टि के लिए अपेक्षाकृत व्यापक क्षेत्र अपेक्षित होता । अतः यह उपयुक्तं समझा गया कि बाहरी संसार से शिशु को परिचित कराया जाए। वस्तुतः यह शिशु के जीवन में महत्त्वपूर्ण चरण था और माता-पिता ने इस अवसर पर अपने हर्ष सौर आनन्द के भाव को अभि-व्यक्ति प्रदान की। किन्तु जीवन घर से बाहर प्राकृत तथा अतिप्राकृत संकटों से सुरक्षित न था। अतः शिशु की रक्षा के लिए देवताओं का अर्चन और उनकी सहायता प्राप्त करने का यत्न किया जाता था ।

उपयुक्त समय

निष्क्रमण संस्कार करने का समय जन्म के पश्चात् बारहवें दिन से चतुर्थ मास तक भिन्न-भिन्न था। भविष्यपुराण तथा वृहस्पति-स्मृति इस संस्कार के लिए बारहवें दिन का विधान करते हैं। सम्भवतः यह तभी सम्भव या, जब कि यह नामकरण के साथ सम्पन्न किया जाता और शिशु सूतिका-गृह से बाहर लाया जाता था । किन्तु गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों के अनुसार सामान्य नियम जन्म के पश्चात् तीसरे या चौथे मास में संस्कार करने का था। यम में तृतीय और चतुर्थ मास में विकल्प का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है। तृतीय मास में शिशु को सूर्यदर्शन कराना चाहिए तथा चतुर्थ मास में चन्द्र-दर्शन ।

ततस्तृतीये कत्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम् ।
चतुर्थमासि कर्त्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम् ।।

शिशु को रात्रि में घर से बाहर लाने के लिए दीर्घतर काल अपेक्षित था। परवर्ती काल में जब कि यह संस्कार कुछ विलम्ब से भी किया जा सकता था, दोनों संस्कार परस्पर मिश्रित हो गये। यदि किसी प्रकार उपर्युक्त अवधि में संस्कार सम्पन्न नहीं हो पाता था, तो आश्वलायन के अनुसार वह अन्नप्राशन के साथ किया जाता था । ज्योतिष की दृष्टि से अनेक आपत्ति-जनक तिथियाँ हैं, जब कि संस्कार स्थगित कर देना चाहिए। उपर्युक्त विकल्प माता-पिता को सुविधा, बालक के स्वास्थ्य तथा परिस्थिति की अनुकूलता पर आधारित थे।

४. संस्कर्ता

गृह्यसूत्रों के अनुसार माता-पिता इस संस्कार को सम्पन्न करते थे। किन्तु पुराण और ज्योतिष-विषयक

ग्रन्थ इस विशेषाधिकारको अपेक्षाकृत ब्यापक कर देते हैं। मुहूर्तसंग्रह के मतानुसार इस संस्कार को सम्पन्न करने लिए मामा को आमन्त्रित करना वाञ्छनीय था।

उपनिष्क्रमणे शास्ता मातुलो वाहयेच्छिशुम् ।

इसका कारण अपनी बहन के शिशु के लिए उसके हृदय के स्नेहपूर्ण भाव ही थे। विष्णुधर्मोत्तर धात्री के द्वारा शिशु के बाहर जाने का विधान करता है।

ततस्त्वलङ्कृता घात्री बालमादाय पूजितम् ।
बहिनिष्कासयेद् गेहात् शङ्खपुण्याहनिःस्वनैः ।।

इस प्रथा का उदय सम्भवतः उस समय हुआ, जब पर्दा-प्रथा के कारण प्रतिष्ठित परिवार की स्त्रियाँ घर के बाहर नहीं निकल सकती थीं। किन्तु व्यवहार में यह प्रतिबन्ध केवल धनी परिवारों तक ही सीमित था। ये प्रथाएँ अ-वैदिक और लौकिक हैं। जब संस्कारों को एक गृह्ययज्ञ माना जाता था, उस समय केवल पिता ही इसे समुचित रूप से सम्पन्न कर सकता था। किन्तु स्थिति में परिवर्तन होने पर संस्कार को सम्पन्न करने का अधिकार उससे इतर व्यक्तियों को भी प्राप्त हो गया ।

५. विधि-विधान तथा उनका महत्त्व

संस्कार के लिए नियत दिन माता बरामदे या आँगन के ऐसे वर्गाकार भाग को, जहाँ से सूर्य दिखाई देता, गोबर और मिट्टी से लीपती, उस पर स्वस्तिक का चिह्न बनाती तथा धान्य-कणों को विकीर्ण करती थी। सूत्रकाल में पिता के द्वारा शिशु को सूर्यदर्शन कराने के साथ संस्कार समाप्त हो जाता था । किन्तु परवर्ती रचनाओं से अधिक विस्तृत विधि-विधानों का ज्ञान होता है।

आश्वलायनाचार्य तथा विष्णुधर्मोत्तर, वही ।

भली-भाँति अलंकृत कर बालक कुल-देवता के समक्ष लाया जाता था। वाद्य-सङ्गीत के साथ देवता की पूजा की जाती है आठ लोकपालों, सूर्य, चन्द्र, वासुदेव जाती थी। ब्राह्मणों को भोजन दिया उच्चारण किया जाता था। शंखध्वनि साथ देवता की पूजा की जाती थी। और आकाश, की भी स्तुति की जाता था और शुभसूचक श्लोकों का तथा वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ शिशु बाहर लाया जाता था। बाहर लाते समय पिता शकुन्त-सूक्त अथवा निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करता था : 'यह शिशु अप्रमत्त हो या प्रमत्त, दिन हो या रात्रि, इन्द्र के नेतृत्व में (शक्र-पुरोगमाः) सब देव इसकी रक्षा करें।"

अप्रमत्तं प्रमत्तं वा दिवा रात्रवथापि वा ।
रक्षन्तु सततं सर्वे देवाः शुक्रपुरोगमाः ।।

तब शिशु किसी देवालय में ले जाया जाता था, जहाँ धूप, पुष्प, माला आदि से देवार्चन होता था। शिशु देवता को प्रणाम करता और ब्राह्मण उसे आशीर्वाद देते थे। इसके पश्चात् शिशु को मन्दिर के बाहर लाकर मामा की गोद में दे दिया जाता था, जो उसे घर लाता था। अन्त में बालक को खिलौने

आदि उपहार और आशिष दिये जाते थे।

बृहस्पति इससे कुछ भिन्न विधि प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार यथा-वत् अलंकृत कर शिशु पिता के द्वारा किसी वाहन पर अथवा स्वयं मामा के द्वारा बाहर लाया जाना चाहिए। वाद्यध्वनि के बीच मित्र तथा सम्बन्धी भी शिशु के साथ रहते थे। तब शिशु को गोबर और मिट्टी से लीपे हुए पवित्र स्थान पर रखा जाता था, जिस पर धान के दाने बिखरे रहते थे। रक्षा-विधि संपन्न करने के पश्चात् पिता 'त्र्यम्बकं यजामहे' आदि मृत-संजीवन मन्त्र का जप करता था। अन्त में शिव और गणेश का पूजन किया जाता और बालक को फल तथा अन्य खाद्य पदार्थ दिये जाते थे।

सम्पूर्ण संस्कार का महत्त्व शिशु की दैहिक आवश्यकता और उसके मन पर सृष्टि की असीमित महत्ता के अङ्कन में निहित है। संस्कार का व्याव हारिक अर्थ केवल यही है कि एक निश्चित समय के पश्चात् बालक को घर से बाहर उन्मुक्त वायु में लाना चाहिए और यह अभ्यास निरन्तर प्रचलित रहना चाहिए। प्रस्तुत संस्कार शिशु के उदीयमान मन पर यह भी अंकित करता था कि यह विश्वेश्वर की अपरिमित सृष्टि है और उसका आदर विधिपूर्वक करना चाहिए।

2.4 अन्नप्राशन संस्कार

उत्पन्न हुए बालकको प्रथम बार सात्त्विक पवित्र मधुरान्न खिलाना (प्राशन कराना) अन्नप्राशन संस्कार कहलाता है। कब अन्न खिलाना चाहिये, इसकी जिज्ञासामें पारस्करगृह्यसूत्रमें बताया गया है कि बालकके जन्मके छठे मासमें अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिये - **'षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम्।'** (१।१९।१)। व्यासस्मृति (१।१८) में भी यही बात कही गयी है- **'षष्ठे मास्यन्नमश्नीयात्।'** आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें भी पहली बार अन्न-सेवन करनेका यही समय दिया गया है- **'षण्मासं चैनमन्नं प्राशयेल्लघु हितं च ॥'** (सुश्रुत० शारीर० १०।४९) बालिकाके लिये भी अन्नप्राशनका यही समय कहा गया है।

एक दूसरे आचार्यका कहना है कि बालकका अन्नप्राशन आठवें, दसवें और बारहवें सम मासोंमें अथवा संवत्सर पूर्ण होनेपर तथा बालिकाका पाँचवें, सातवें, नवें, ग्यारहवें विषम मासोंमें अथवा संवत्सर पूर्ण होनेपर करना चाहिये; किंतु महर्षि पारस्करजीका मत अधिक प्रचलित एवं मान्य है। यदि किसी कारणवश बालक-बालिकाका छठे मासमें अन्नप्राशन-संस्कार न हो सके तो द्वितीय मतके अनुसार करना चाहिये। यदि छठे मासमें ही अन्नप्राशन संस्कार करना हो तो गुरु तथा शुक्रके अस्त होने तथा मलमासादिका दोष नहीं होता।

इस संस्कारका उद्देश्य क्या है, इसके उत्तरमें बताया गया है कि इस संस्कारके करनेसे माताके आहारसे गर्भावस्थामें मलिनता-भक्षणजन्य जो दोष शिशुपर आ जाता है, वह दूर हो जाता है। अर्थात् गर्भके समय माताके द्वारा जैसा पवित्र अपवित्र, शीत-उष्ण, मन्दाग्नि गुणयुक्त आहार लिया जाता है, उसी आहारसे शिशुका पोषण होता है और उस कदन्नका दोष शिशुपर भी आ जाता है, उस दोषकी

निवृत्तिके लिये हवनपूर्वक पवित्र हविष्यान्न तथा मधु, घृतयुक्त पायस बालकको दिया जाता है, जिसके ग्रहण करनेसे बालकका शरीर एवं अन्तःकरण दोषरहित होकर पवित्र हो जाता है। इसी बातको स्मृति-संग्रहमें इस प्रकार कहा गया है-

'अन्नप्राशनान्मातृगर्भमलाशादपि शुद्ध्यति।'

अभी तक अर्थात् छठे मासतक शिशुकी शारीरिक संरचना ऐसी रहती है कि वह मातृदुग्ध अथवा गोदुग्धसे ही शरीर-पोषणके लिये सभी आवश्यक तत्त्व प्राप्त कर लेता है, किंतु अब शरीरकी तीव्रतासे वृद्धि होती है और इसके लिये दुग्ध पर्याप्त नहीं होता, अतः उसे अन्न आदि ठोस आहार ग्रहण करनेकी आवश्यकता होती है। दूसरी बात यह है कि प्रायः इसी समय बालकके दाँत भी इसीलिये निकलने लगते हैं ताकि वह ग्रहण किये जानेवाले अन्नको धीरे-धीरे चबानेमें समर्थ हो जाय। यह सब भगवान्‌की अद्भुत लीला है। अन्न ग्रहण प्रारम्भकरनेसे शिशु अब धीरे-धीरे माताके स्तन्यपर आश्रित न होकर स्वावलम्बी भी होने लगता है। अन्नप्राशनसे शिशुके मुखसे स्तन्यपानजन्य गन्ध भी धीरे-धीरे दूर हो जाती है। इस प्रकार अन्नप्राशन-संस्कारका बड़ा ही वैज्ञानिक रहस्य है। इस संस्कारसे जातक की दैहिक पुष्टि और उसके ओजकी वृद्धि होती है।

अन्नप्राशन का उपांग- जीविकानिर्धारण-विज्ञान

जीविका निर्धारण-विज्ञान अन्नप्राशन कर्म का ही अंग माना जाता है। महर्षियों ने बालक बड़ा होकर किस जीविका (वृत्ति) के द्वारा अपने जीवनका निर्वाह करेगा, इसकी परीक्षा की विधि भी बतायी है, जो मनोविज्ञान एवं ज्योतिष आदिके द्वारा भी पुष्ट है। बताया गया है कि अन्नप्राशन पूर्ण होनेके अनन्तर बालकके सामने पुस्तक, शस्त्र, लेखनी, वस्त्र, अन्न तथा शिल्पकी वस्तुएँ रखनी चाहिये। तदनन्तर माता को चाहिये कि अपनी गोद से बालक को उतारकर उन वस्तुओं को दिखाये और बालक जिस वस्तु को अपनी स्वेच्छा से सर्वप्रथम ग्रहण करे, उसी से उसकी जीविका चलेगी, यह समझना चाहिये।

तदनन्तर आवाहित देवताओं का विसर्जन कर ब्राह्मणों को यथोचित दक्षिणा देकर उन्हें भोजन कराकर बन्धु-बान्धवों सहित स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार के मांगलिक कृत्यों द्वारा अन्नप्राशन-कर्म सम्पन्न करना चाहिये।

१. प्रादुर्भाव

ठोस भोजन या अन्न खिलाना शिशु के जीवन में एक अन्य महत्त्वपूर्ण सोपान था। अब तक अपने भोजन के लिए वह केवल माता के स्तन्य (दूध) पर ही आश्रित था। किन्तु छह या सात मास के पश्चात्

उसका शरीर विकसित हो जाता और उसके लिए अधिक मात्रा में भिन्न प्रकार का भोजन अपेक्षित होता, जब कि दूसरी ओर माता के दूध की मात्रा घट जाती थी। अतः शिशु और माता दोनों के हित की दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया कि शिशु को माता के स्तन से पृथक् कर दिया जाय और माता के दूध के स्थान पर शिशु के लिए किसी अन्य खाद्य की व्यवस्था की जाय। इस प्रकार यह संस्कार शिशु की शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति से सम्बद्ध था। सुश्रुत भी षष्ठ मास से बालक को माता के स्तन्य से पृथक् करने का विधान तथा उसके लिए पथ्य भोजन के प्रकारों का वर्णन किया है।'

षण्मासञ्चैनमन्नं प्राशयेल्लघु-हितच्च ।

परवर्ती काल में आकर ही शिशु को पहली बार भोजन कराने की प्रथा को धार्मिक रूप प्राप्त हुआ। भोजन एक जीवनप्रद तत्त्व था। लोगों ने यह सोचा कि इसमें कोई-न-कोई रहस्यमयी शक्ति अवश्य है, जो मनुष्य को जीवन प्रदान करती है। अतः देवताओं की सहायता से शिशु के उस स्रोत को प्रविष्ट कराना अनिवार्य था ।

२. इतिहास

विधिपूर्वक शिशु को प्रथम भोजन कराने की इससे मिलती-जुलती प्रथा का पारसियों में प्रचलित होना यह सूचित करता है कि यह एक सामान्य भारत-ईरानी संस्कार था और इसका प्रादुर्भाव उस युग में हुआ जब वे एक साथ रहते थे। भोजन की स्तुतियाँ वेदों' और उपनिषदों में प्राप्त होती हैं, किन्तु वे साधारण भोजन के समय गायी जाती थीं अथवा प्रथम भोजन के अवसर पर, यह सन्दिग्ध है। प्रतीत होता है कि अन्नप्राशन संस्कार को उसका कर्मकाण्डीय आवरण सूत्र-काल में प्राप्त हुआ। सूत्रों में संस्कार के काल, भोजन के प्रकार तथा उच्चारण किये जानेवाले मन्त्रों का विधान किया गया है। उत्तरकालीन स्मृतियाँ और पुराण तथा निबन्ध उक्त नियमों में कति-पय परिवर्तन कर देते हैं, जब कि पद्धतियाँ उसी कर्मकाण्ड का अनुसरण करती हैं।

३. संस्कार का समय

गृह्यसूत्रों के अनुसार यह संस्कार शिशु के जन्म के पश्चात् छठे मास में किया जाता था । मनु और याज्ञवल्क्य" आदि प्राचीन स्मृतियों का भी यही मत है। किन्तु लौगाक्षि संस्कार की गणितीय गणना के आधार पर निश्चित काल से सहमत नहीं हैं तथा यह व्यक्तिगत परीक्षा निर्धारित करते हैं। उनके अनुसार पाचन शक्ति के विकसित हो जाने पर अथवा दाँतों के निकलने पर अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिए।

षष्ठे अन्नप्राशनं जातेषु दन्तेषु वा ।

दाँत शिशु में ठोस अन्न ग्रहण करने की क्षमता के विकसित होने के प्रत्यक्ष चिह्न थे। चार मास के पूर्व अन्न देना कठोरता पूर्वक निषिद्ध था। दुर्बल शिशु के लिए यह अवधि बढ़ायी जा सकती थी ।

'अन्नप्राशन संस्कार जन्म से छठे सौर मास में अथवा स्थगित होने पर आठवें, नवें अथवा दसवें मास में करना चाहिए; किन्तु कतिपय पण्डितों के मतानुसार यह बारहवें मास में अथवा एक वर्ष सम्पूर्ण होने पर भी किया जा सकता था।'

जन्मतो मासि षष्ठे वा सौरेणोत्तममन्नदन्नम्।
तदभावेऽष्टमे मासे नवमे दशमेऽपि वा ॥

स्थगित नहीं हो सकता था, क्योंकि इसका और भी अधिक स्थगन माता के स्वास्थ्य और शिशु की पाचनशक्ति के विकास के लिए हानिकर होता। बालकों के लिए सम तथा बालिकाओं के लिए विषम मास विहित थे। लिङ्ग पर आधारित यह भेद इस भाव का सूचक है कि संस्कारों में विभिन्न लिङ्गों के लिए किसी-न-किसी प्रकार का अन्तर अवश्य होना चाहिए।

४. भोजन के विभिन्न प्रकार

भोजन के प्रकार भी धर्मशास्त्रों द्वारा नियत थे। साधारण नियम यह था कि शिणु को समस्त प्रकार का भोजन और विभिन्न स्वादों का मिश्रण कर खाने के लिए देना चाहिए।

द्वादशे वाऽपि कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परम्।
संवत्सरे वा सम्पूर्ण केचिदिच्छन्ति पण्डिताः ॥

कतिपय धर्मशास्त्री दही, मधु और थी के मिश्रण का विधान करते हैं। विभिन्न प्रकार के भोजन, जिनमें मांस का भी समावेश था, विविध उद्देश्यों से दिये जाते थे। यदि पिता शिशु की वाणी में प्रवाह चाहता तो उसे भारद्वाज पक्षी का मांस खिलाता, भोजन व पालन-पोषण की प्रचुरता के लिए कपिञ्जल पक्षी का मांस और घी, कोमलता के लिए मत्स्य, दीर्घजीवन के लिए कृकशा पक्षी का मांस अथवा मधु में मिला हुआ भात, तेज के लिए अटि पक्षी और तित्तिर का मांस, ओज व तीक्ष्ण बुद्धि के लिए घी-भात, दृढ़ इन्द्रियों के लिए दही-भात और यदि वह शिशु में उक्त सभी गुणों को चाहता तो सभी पदार्थों से उसे भोजन कराता था। २ उपर्युक्त सूची से यह स्पष्ट है कि गृह्यसूत्रों के काल में हिन्दू घोर अहिंसावादी नहीं थे। उन्हें मांस ग्रहण करने में कोई भी संकोच न होता, यदि वह उन्हें शारीरिक व मानसिक शक्ति प्रदान करता। गृह्यसूत्र अभी भी पशु-बलि तथा पशु-भोजन की वैदिक भावना से अनुप्राणित थे, अतः मांस आदि के भोजन का विधान करने में उनको किसी प्रकार की हिचकिचाहट का अनुभव नहीं हुआ। किन्तु परवर्ती काल का सुझाव शाकाहार की ओर था। इसका कारण था हिंसावादी मतों का प्रसार जिसने हिन्दुओं के भोजन को बहुत दूर तक प्रभावित किया। किन्तु दही, घी और दूध आदि पशुओं से उत्पन्न पदार्थ अभी भी समाज में प्रचलित रहे और शिशु के भोजन के लिए श्रेष्ठतम पदार्थ माने जाते रहे। मार्कण्डेय-पुराण शिशु को मधु और घी के साथ खीर खिलाने का विधान करता है।'

मध्वाज्यकनकोपेतं प्राशयेत् पायसन्तु तम्।

अन्त में शिशु को दूध और भात खिलाने का चलन अत्यन्त लोकप्रिय और प्रचलित हो गया। किन्तु कर्मकाण्ड-साहित्य अभी भी मांस-भोजन का आग्रह करता है। अनेक पद्धतियों में गृह्यसूत्रों में दिये हुए विधानों का समावेश है। इसका कारण यह है कि यद्यपि हिन्दुओं के उच्चतर धर्म में पशुभोजन निषिद्ध है और पशु-जीवन के लिए उनमें साधारण आदरभाव है, किन्तु निम्नतर प्रथाएँ इस पर विशेष ध्यान नहीं देतीं।

भोजन किसी भी प्रकार का क्यों न हो, यह बात सदा ध्यान में रखी जाती थी कि भोजन लघु तथा शिशु के लिए स्वास्थ्य वर्धक हो। सुश्रुत कहता है, षष्ठ मास में शिशु को लघु और हितकर अन्न खिलाना चाहिए।'

षण्मासञ्चैतमन्नं प्राशयेल्लघु हितञ्च।

५. कर्मकाण्ड तथा उसका महत्त्व

अन्नप्राशन संस्कार के दिन सर्वप्रथम यज्ञीय भोजन के पदार्थ अवसरोचित वैदिक मन्त्रों के साथ स्वच्छ किये और पकाये जाते थे। भोजन तैयार हो जाने पर वाग्देवता को इन शब्दों के साथ एक आहुति दी जाती थी : देव-ताओं ने वाग्-देवी को उत्पन्न किया है, उसे बहुसंख्यक पशु बोलते हैं। यह मधुर ध्वनिवाली, अति प्रशंसित वाणी हमारे पास आवे, स्वाहा।' द्वितीय आहुति ऊर्जा को दी जाती थी: 'आज हम ऊर्जा प्राप्त करें।' उपर्युक्त यज्ञों की समाप्ति पर पिता निम्नलिखित शब्दों के साथ चार आहुतियाँ और देता था : 'मैं उत्प्राण द्वारा भोजन का उपभोग कर सकूं, स्वाहा ! निम्न वायु द्वारा भी भोजन का उपभोग कर सकूं, स्वाहा ! अपने नेत्रों द्वारा मैं दृश्य पदार्थों का आनन्द से सकू, स्वाहा। अपने श्रवणों के द्वारा मैं यश का उपभोग करूँ, स्वाहा।'१ यहाँ भोजन शब्द का प्रयोग ब्यापक अर्थ में हुआ है। शिशु की समस्त इन्द्रियों की सन्तुष्टि के लिए प्रार्थना की जाती थी, जिससे वह सुखी व सन्तुष्ट जीवन व्यतीतकर सके। किन्तु एक बात ध्यान में रखी जाती थी। सन्तुष्टि व तृप्ति की खोज में स्वास्थ्य और नैतिकता के नियमों का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे मनुष्य के यश का क्षय हो जाता है। अन्त में पिता बालक को खिलाने के लिए सभी प्रकार के भोजन तथा स्वाद को पृथक् पृथक् रखता था और मौनपूर्वक अथवा 'हन्त' इस शब्द के साथ शिशु को भोजन कराता था। ब्राह्मण-भोजन के साथ संस्कार समाप्त होता था।

अन्नप्राशन संस्कार का महत्त्व यह था कि शिशु उचित समय पर अपनी माता के स्तन से पृथक् कर दिये जाते थे। वे माता-पिता की स्वेच्छारिता पर नहीं छोड़ दिये गये थे, जो प्रायः उनकी पाचन की क्षमता पर बिना ध्यान दिये अति-भोजन द्वारा उनके शारीरिक विकास में बाधा पहुँचाती है। अन्नप्राशन संस्कार माता को भी यह चेतावनी देता था कि एक निश्चित समय पर उसे शिशु को दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिए। अनाड़ी शिशु के प्रति स्नेह के कारण उसे एक वर्ष या उससे भी अधिक समय तक

यह अपना स्तन पिलाती ही रहती है। किन्तु वह इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देती कि इससे वह शिशु का यथार्थ कल्याण न कर अपनी शक्ति का निरर्थक क्षय करती है। शिशु और माता दोनों के हित के लिए इस संस्कार द्वारा सामयिक चेतावनी दे दी जाती थी।

2.5 अन्नप्राशन संस्कार विधि

पंचांगपूजनके अनन्तर हवन-कार्यके लिये बालू अथवा शुद्ध मिट्टीसे एक हाथ लम्बी-चौड़ी एक वेदी बनाये तथा निम्न विधिसे उसका संस्कार करे-
वेदीनिर्माण -

सर्वप्रथम वेदीके पाँच संस्कार करे-तीन कुशोंके द्वारा दक्षिणसे उत्तरकी ओर वेदीको साफ करे और उन कुशोंको ईशानकोणमें फेंक दे। गायके गोबर तथा जलसे वेदीको लीप दे। सुवाके मूलसे वेदीके मध्यभाग में प्रादेशमात्र (अँगूठेसे तर्जनीके बीचकी दूरी) लम्बी तीन रेखाएँ पश्चिमसे पूर्वकी ओर खींचे। रेखा खींचनेका क्रम दक्षिणसे प्रारम्भकर उत्तरकी ओर होना चाहिये। उन खींची गयी तीनों रेखाओंसे उल्लेखन-क्रमसे अनामिका तथा अंगुष्ठके द्वारा थोड़ी-थोड़ी मिट्टी निकालकर बायें हाथमें रखता जाय। बादमें सब मिट्टी दाहिने हाथपर रखकर ईशानकोणकी ओर फेंक दे। जलके छींटोंसे वेदीको सींच दे।

अग्निस्थापन -

किसी कांस्य अथवा ताम्रपात्रमें या नये मिट्टीके पात्र (कसोरे) -में स्थित पवित्र अग्निको वेदीके अग्निकोणमें रखे और इस अग्निमेंसे क्रव्यादांश निकालकर नैऋत्यकोणमें डाल दे। तदनन्तर अग्निपात्रको स्वाभिमुख करते हुए वेदीमें स्थापित करे और उस समय बोले-
ॐ शुचिनामाग्नये सुप्रतिष्ठितो वरदो भव।
तदनन्तर 'ॐ शुचिनामाग्नये नमः' इस मन्त्रसे गन्धाक्षत-पुष्पसे अग्निकी पूजा करे।
चरुपाक-
धुले हुए चावलोंमें दूध डालकर हवनके लिये पायस (चरु) बना ले।
कुशकण्डिका
ब्रह्माका वरण करनेके अनन्तर प्रणीतापात्रको जलसे भर दे और उसे कुशोंसे ढककर ब्रह्माका मुख देखते हुए अग्निके उत्तरकी तरफ कुशोंके ऊपर रख दे। कुशपरिस्तरण कर ले। तदनन्तर निम्न रीतिसे पात्रासादन करे।
पात्रासादन -

हवनकार्यमें प्रयोगमें आनेवाली सभी वस्तुओं तथा पात्रोंको पश्चिमसे पूर्वतक उत्तराग्र अथवा अग्निके उत्तरकी ओर पूर्वाग्र रख ले।

अन्नप्राशनकर्ममें प्रयुक्त होनेवाली विशिष्ट वस्तुओं यथा-बालकको प्राशन करानेके लिये मधुर रसोंसे युक्त विविध व्यंजन, मधु, घृत, उद्धरणपात्र, गीता, रामायण आदि पुस्तक, लेखनी, शस्त्र, सुवर्ण, बर्तन आदिको भी यथास्थान रख ले।

पवित्रकका निर्माण तथा प्रोक्षणीपात्रका संस्कार कर ले और घृतको आज्यस्थालीमें निकालकर वेदीके दक्षिणभागमें अग्निपर रख दे। स्रुवाका सम्मार्जन कर ले। घृतपात्र तथा चरुपात्रको यथास्थान रख ले। घृतमें कोई वस्तु आदि पड़ गयी हो तो उसे निकाल दे। ब्रह्माका स्पर्श करते हुए बायें हाथमें उपयमन (सात) कुशोंको लेकर हृदयमें बायाँ हाथ लगाकर तीन समिधाओंको घीमें डुबोकर मनसे प्रजापति-देवताका ध्यान करते हुए खड़े हो मौन होकर अग्निमें डाल दे, तदनन्तर
बैठ जाय।

अग्निके ईशानकोणसे ईशानकोणतक प्रदक्षिणक्रमसे जलधारा गिरा दे। तदनन्तर हवन करे।

आघार-आज्यभागसंज्ञक हवन -

इसके बाद निम्न मन्त्र बोलते हुए स्वाहाका उच्चारणकर घृतकी आहुति अग्निमें दे, पुनः स्रुवामें बचे हुए घृतको 'न मम' कहकर प्रोक्षणीपात्रमें छोड़े-

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।
ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम।
ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम।
ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम।

घृताहुति -

निम्नलिखित दो मन्त्रोंसे अनन्वारब्धपूर्वक घृतकी आहुति पूर्वके अनुसार डाले-

१. ॐ देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु स्वाहा। इदं वाचे न मम।

२. (क) ॐ देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु।

(ख) ॐ वाजो नो अद्य प्र सुवाति दानं वाजो देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति। वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयः स्वाहा। इदं वाचे वाजाय न मम।

चरु-होम -

इसके बाद बने हुए पायस (चरु) में थोड़ा घृत डाल दे और उस चरुके द्वारा निम्नलिखित मन्त्रोंसे एक-एक आहुतियाँ दे-

१. ॐ प्राणेनान्नमशीय स्वाहा। इदं प्राणाय न मम।
२. ॐ अपानेन गन्धानशीय स्वाहा। इदमपानाय न मम।
३. ॐ चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा। इदं चक्षुषे न मम।
४. ॐ श्रोत्रेण यशोऽयशीय स्वाहा। इदं श्रोत्राय न मम।

भूरादि नौ आहुति -
तदनन्तर घृतसे नौ आहुतियाँ दे। प्रत्येक आहुतिके अनन्तर खुवामें बचे घृतको प्रोक्षणीपात्रमें डाले-
१-ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम।
२-ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम।
३-ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्याय न मम।
४-ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषासि प्र मुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा, इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।
५-ॐ स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणश्रराणो वीहि मृडीकः सुहवो न एधि स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।
६-ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि।
अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजः स्वाहा। इदमग्नये ऽयसे न मम।
७-ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो ऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम।
८-ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमः श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं
वरुणायादित्यायादितये न मम।
तदनन्तर प्रजापति देवताका ध्यानकर मनमें निम्न मन्त्रका उच्चारणकर आहुति दे-
९-(मौन होकर) ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।
स्विष्टकृत् आहुति -
इसके बाद घृत और चरु-इन दोनोंसे निम्न मन्त्रसे ब्रह्माद्वारा कुशसे स्पर्श किये जानेकी स्थितिमें स्विष्टकृत् आहुति दे-
ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते न मम।
संस्रवप्राशन -
हवन पूर्ण होनेपर प्रोक्षणीपात्रसे घृत दाहिने हाथमें लेकर यत्किंचित् पान करे। हाथ धो ले। फिर आचमन करे।
मार्जनविधि -

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्रद्वारा प्रणीतापात्रके जलसे कुशोंके द्वारा अपने सिरपर मार्जन करे -

ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु ।

इसके बाद निम्न मन्त्रसे जल नीचे छोड़े-

ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।

पवित्रप्रतिपत्ति -

पवित्रकको अग्निमें छोड़ दे।

पूर्णपात्रदान -

पूर्वमें स्थापित पूर्णपात्रमें द्रव्य-दक्षिणा रखकर निम्न संकल्पकर दक्षिणासहित पूर्णपात्र ब्रह्माको प्रदान करे -

ॐ अद्य अन्नप्राशनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं वृषनिष्क्रयद्रव्यसहितं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतं "गोत्राय शर्मणे ब्रह्मणे भवते सम्प्रददे ।

ब्रह्मा 'स्वस्ति' कहकर उस पूर्णपात्रको ग्रहण कर ले।

प्रणीताविमोक—

प्रणीतापात्रको ईशानकोणमें उलटकर रख दे।

मार्जन -

पुनः कुशाद्वारा निम्न मन्त्रसे उलटकर रखे गये प्रणीताके जलसे मार्जन करे-

ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्। उपयमन कुशोंको अग्निमें छोड़ दे।

बर्हिहोम -

तदनन्तर पहले बिछाये हुए कुशाओंको जिस क्रमसे बिछाये गये थे, उसी क्रमसे उठाकर घृतमें भिगोये और निम्न मन्त्रसे स्वाहाका उच्चारणकर अग्निमें डाल दे -

ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देव यज्ञः स्वाहा वाते धाः स्वाहा।

कुशमें लगी ब्रह्मग्रन्थिको खोल दे।

अन्नप्राशनकी विधि

हवन-कार्य सम्पन्न हो जानेके अनन्तर सभी रसों (भोज्य, लेह्य, चोष्य तथा पेय) तथा सभी प्रकारके अन्नोंको जो घरमें बनाये गये हों, उन सबमेंसे थोड़ा-थोड़ा एक उत्तम पात्रमें परोसकर मधु तथा घृतसे संयुक्तकर भगवान्का भोग लगाकर स्नानपूर्वक शुद्ध नवीन वस्त्र पहनाये हुए शिशुको खिलाना चाहिये। माताकी गोदमें अथवा अपनी गोदमें स्थित वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत पूर्वाभिमुखस्थित शिशुको मंगलघोषपूर्वक सोनेके चम्मच या चाँदीके चम्मचसे एक बार पहले 'हन्त' इस मन्त्रसे खिलाना चाहिये। तदनन्तर थोड़ा-थोड़ा पाँच बार मौन होकर अमन्त्रक ही खिलाना चाहिये। इसके बाद स्वच्छ जलसे

शिशु का मुख तीन बार धोना चाहिये।

कन्याका अन्नप्राशन-

कन्याके अन्नप्राशनमें भी उपर्युक्त सभी विधि बिना मन्त्रके करनी चाहिये।

शिशुकी जीविकाका परीक्षण -

इसके बाद शिशुको भूमिपर बैठाकर उसके सामने अस्त्र-शस्त्र, पुस्तक, कलम आदि तथा कलाकी सामग्री रखे। अपनी इच्छासे बालक जिसे स्पर्श करे, वही उसकी जीविकाका साधन होगा, यह समझना चाहिये।*

दक्षिणादान -

अन्नप्राशन हो जानेपर आचार्यको दक्षिणा प्रदानकर हाथमें जल और अक्षत तथा द्रव्य-दक्षिणा लेकर भूयसी दक्षिणाका निम्न संकल्प बोले-

ॐ अद्य कृतस्यान्नप्राशनकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थञ्च नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो भूयसीदक्षिणां विभज्य दातुमहमुत्सृज्ये ।

विसर्जन -

इसके बाद मातृकाओं, अग्नि तथा आवाहित देवोंपर अक्षत-पुष्प छोड़ते हुए निम्नमन्त्र बोलकर विसर्जन करे-

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् ।
इष्टकामसमृद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च॥

भगवत्स्मरण-

हाथमें अक्षत-पुष्प लेकर भगवान्का ध्यान करते हुए समस्त कर्म उन्हें समर्पित करे-

ॐ प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥
यत्पादपङ्कजस्मरणात् यस्य नामजपादपि ।
न्यूनं कर्म भवेत् पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम् ॥

ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः । ॐ साम्बसदाशिवाय नमः । ॐ साम्बसदाशिवाय नमः । ॐ साम्बसदाशिवाय नमः ।

बोध प्रश्न -

1. षोडश संस्कारों में निष्क्रमण संस्कार किसके बाद किया जाता है|

क. नामकरण ख. सीमन्तोन्नयन ग. पुंसवन घ. जातकर्म

2. शिशु का मुख अन्नप्राशन के समय कितनी बार धोना चाहिये।

क. दो बार ख. पांच बार ग. तीन बार घ. सात बार

3. षोडश संस्कारों में अन्नप्राशन संस्कार किसके बाद किया जाता है|

क. जातकर्म ख. निष्क्रमण ग. नामकरण घ. गर्भाधान

4. 'चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका' ये किस आचार्य ने कहा है|

क. बृहस्पति ख. पारस्कर ग. सुश्रुत घ. इनमे से कोई नही

5. 'षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम्|' किस आचार्य ने कहा है|

क. पारस्कर ख. बृहस्पति ग. सुश्रुत घ. व्यास

2.6 सारांश

इस इकाई में आप यह जान पाए होंगे कि निष्क्रमण संस्कार का क्या महत्व है और इसे किस प्रकार से कराया जाता है| निष्क्रमण अथवा शिशु को विधि-विधानपूर्वक घर से प्रथम बार बाहर लाने की प्रथा भले ही अत्यन्त प्राचीन रही हो, किन्तु हम वैदिक साहित्य में इसका कोई भी उल्लेख नहीं पाते। इस संस्कार के अवसर पर उच्चारण किया जानेवाला 'तरुचक्षुर्देवहितम्" मन्त्र सामान्य प्रयोगवाला है और किसी भी स्थान पर सूर्य की ओर देखते समय इस मन्त्र का व्यवहार किया जाता है। अतः प्रस्तुत संस्कार की दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्व नहीं है। गृह्यसूत्रों में दी हुई विधि भी अत्यन्त साधारण है। इसके अनुसार पिता बालक को बाहर ले जाता और 'तच्चक्षुर्देवहितम्', आदि मन्त्र के साथ उसे सूर्य का दर्शन कराता था। इसी प्रकार से अन्नप्राशन ठोस भोजन या अन्न खिलाना शिशु के जीवन में एक अन्य महत्त्वपूर्ण सोपान था। अब तक अपने भोजन के लिए वह केवल माता के स्तन्य (दूध) पर ही आश्रित था। किन्तु छह या सात मास के पश्चात् उसका शरीर विकसित हो जाता और उसके लिए अधिक मात्रा में भिन्न प्रकार का भोजन अपेक्षित होता, जब कि दूसरी ओर माता के दूध की मात्रा घट जाती थी। अतः शिशु और माता दोनों के हित की दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया कि शिशु को माता के स्तन से पृथक् कर दिया जाय और माता के दूध के स्थान पर शिशु के लिए किसी अन्य खाद्य की व्यवस्था की जाय। इस प्रकार यह संस्कार शिशु की शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति से सम्बद्ध था। इस प्रकार से आप यह जान पाए होंगे कि ये संस्कारों का क्या महत्व समझ पाए होंगे|

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ग

3. ख
4. ख
5. घ

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

नित्यकर्म पूजाप्रकाश पं लालविहारी मिश्र गीताप्रेस गोरखपुर
कर्मठ गुरुः पं मुकुन्द बल्लभ मोतीलाल वनारसीदास , वाराणसी
सर्व देव पूजा पद्धति शिव दत्त मिश्र चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
हिन्दू संस्कार
षोडश संस्कार पद्धति
कर्मकाण्ड भास्कर

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निष्क्रमण संस्कार का विस्तृत वर्णन कीजिए|
2. अन्नप्राशन संस्कार का वर्णन कीजिए|
3. अन्नप्राशन संस्कार के विधि का वर्णन कीजिए|

इकाई - 3 चूड़ाकरण संस्कार

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 संस्कार परिचय एवं स्वरुप

3.4 चूडाकरण संस्कार विचार

3.5 चूडाकरण मुहूर्त विचार

3.6 संस्कार एवं मुहूर्त विचार

3.7 षोडश संस्कार परिचय

3.8 मुहूर्त और संस्कार का मानव जीवन में प्रभाव

3.9 चूडाकरण संस्कार में षोडशोपचार पूजन

3.10 सारांश

3.11 पारिभाषिक शब्दावली

3.12 अभ्यास प्रश्न

3.13 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

3.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

3.15 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-330 में हम सभी चूडाकरण संस्कार के विषय में जानकारी प्राप्त करते है। षोडश संस्कार के अंतर्गत सर्वप्रथम गर्भाधान किया जाता हैं। इस संस्कार को लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्यंत संस्कारों को मुहुर्त के नियमानुसार किया जाता है। भारतीय संस्कृति में 16 सोलह संस्कारों का विशिष्ट स्थान है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत इन संस्कारों की आवश्यकता होती है। जब हिरण्यगर्भ प्रभु ने इस जगत की रचना की उस समय संस्कारों को करने का आदेश दिया। प्रत्येक संस्कार में कोन कोन सा कर्म करना चाहिए तथा संस्कारों का क्या विधान है। जन्मोत्तर संस्कारों में प्रथम संस्कार गर्भाधान संस्कार होता है। यह संस्कार जातक के उत्पन्न होने के बाद विधि विधान से संपन किया जाने वाला संस्कार कहलाता हैं । उसके बाद के संस्कारों में से नामकरण, अन्नप्राशनादि आदि संस्कार क्रमशः आते हैं। इस इकाई में आप सभी षोडश संस्कारों का परिचय, चूडाकरण संस्कार मुहूर्त, इत्यादि विषयों के बारे में अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन करनेके पश्चात् आप-

- संस्कार का क्या स्वरुप हैं, इस विषय को जान सकेंगे।
- संस्कारों का मानव जीवन में क्या महत्व हैं? समझ सकेंगे।
- षोडश संस्कारों से अवगत हो सकेंगे।
- चूडाकरण संस्कार मुहूर्त को जान सकेंगे।
- चूडाकरण संस्कार में षोडशोपचार पूजन से अवगत हो सकेंगे।

3.3 संस्कार परिचय एवं स्वरुप

प्राय देखने में आता है की व्याकरण की दृष्टी से संस्कार शब्द का निर्माण 'सम्' उपसर्ग में 'कृ' धातु के 'धत्र' प्रत्यय लगाने से संपन्न होता हैं। जिसका भावार्थ है परिष्कार, शुद्धता अथवा पवित्रता। इस प्रकार सनातन संस्कृति में इन 16 संस्कारों का विधान व्यक्ति के शरीर को पवित्र बनाने के उद्देश्य से किया गया ताकि वह व्यक्तिगत व सामाजिक विकास के लिए योग्य बन सके। यह वह क्रिया है जिसके सम्पन्न होने पर कोई वस्तु किसी उद्देश्य के योग्य बनती है। इसकी प्रमुख विशेषताओं शुद्धता,

पवित्रता, धार्मिकता एवं आस्तिकता, आध्यात्मिकता की स्थितियां देखने को मिलती हैं। समाज कुछ में ऐसी धारणा दिखाई देती है कि मनुष्य जन्म से असंस्कारित होता है किन्तु वह इन संस्कारों के अनुसरण से संस्कार युक्त हो जाता हैं। अर्थात् इनसे उसमें अन्तर्निहित शक्तियों का पूर्ण विकास हो जाता है तथा वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है। ये व्यक्ति के जीवन में आने वाली बाधाओं का भी निवारण करते तथा उसकी प्रगति के मार्ग को निष्कंटक बनाते हैं। जिसके द्वारा से मनुष्य अपना आध्यात्मिक विकास के साथ साथ भोतिक विकास करते रहता हैं। हमारे धर्मग्रंथो में आचार्य मनु के कहते हैं की , यह शरीर को विशुद्ध करके उसे आत्मा का उपयुक्त स्थल बनाया जाता हैं। इस प्रकार के व्यक्तित्व की सर्वांगीण उन्नति हेतु भारतीय संस्कृति में इसके विधान का वर्णन प्राप्त होता हैं। । संस्कार शब्द का उल्लेख वैदिक तथा ब्राह्मण साहित्य मे देखने में नहीं मिलता,परन्तु मीमांसक इसका प्रयोग यज्ञीय सामग्रियों को शुद्ध करने के अर्थ में करते हैं। वास्तविक रूप से इसका विधान सूत्र-साहित्य तथा गृहयसूत्र इत्यादि में वर्णित हैं। ये जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक सम्पन्न किये जाते था अधिकांश गृहयसूत्रों में अंत्येष्टि का उल्लेख नहीं मिलता है। स्मृति ग्रन्थों में इनका विवरण प्राप्त होता है। इनकी संख्या 40 है। गौतम धर्मसूत्र में इनकी संख्या 48 बतायी गयी है। मनु ने गर्भाधान से मृत्यु पर्यन्त तक तेरह संस्कारों का वर्णन किया गया हैं। अन्य स्मृतियों में सोलह संस्कार स्वीकार गई हैं। इस उक्ति के अनुसार संस्करणं सम्यकरणं वा संस्कारः' अर्थात् दोषों का निवारण, कमी या त्रुटि की पूर्ति करते हुए शरीर और आत्मा में अतिशय गुणों का आधान करने वाले शास्त्र-विहित क्रिया-कलापों या कर्मकाण्ड के माध्यम से जो गुण विशेष प्राप्त हो वह 'संस्कार' कहलाता हैं। इस प्रकार मैल, दोष, दुर्गुण एवं त्रुटि या कमी का निवारण कर शारीरिक एवं आत्मिक अपूर्णता की पूर्ति करते हुए गुणातिशयों या सगुणों का आधान या उत्पादन ही संस्कार हैं। संस्कारों से मनुष्य के जीवन में होने वाली समस्या तथा दुर्गुणों से सुरक्षित करती हैं।संस्कारों का महत्त्व बताते हुए 'मनुस्मृति' में कहा गया हैं-अर्थात् द्विजो के गर्भाधान, जातकर्म, चौल और उपनयनादि संस्कारों के द्वारा बीज-गर्भादिजन्य सभी प्रकार के दोषों और पापों का अपमार्जन होता हैं। आत्मिक व भौतिक विकास का मार्ग प्रशस्त कर मानव को मानव बनाने वाले, उसके जीवन को अकलुष एवं तेजोदीप्त बनाकर उसे धर्मार्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए अग्रसारित करता है। सतत प्रेरित करने वाले यज्ञोपवीत व विवाहादि षोडश संस्कारों का भारतीय जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं। ।

3.4 चूडाकरण संस्कार विचार

चूडाकर्म संस्कार वह संस्कार है, जिस संस्कार के माध्यम से बालक को चूडा अर्थात शिखा (चोटी) धारण करायी जाती है। इस संस्कार को मुंडन संस्कार के नाम से भी जाना जाता हैं। इस संस्कार में

जातक का विधि पूर्वक शुभ मुहूर्त में कर्मकांड के द्वारा मुंडन किया जाता हैं। जिसे चूडाकरण संस्कार या मुंडन संस्कार कहते हैं। हमारे प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथो में संस्कारो के विषय में वर्णन प्राप्त होता हैं। महर्षि पराशर जी के मत में या अनुसार बालक के जन्म होने के पश्चात प्रथम या तीसरे वर्ष में चूडाकर्म संस्कार करने का विधान हैं। महर्षि आश्वलायन, बृहस्पति एवं नारद आदि आचार्यो के मतानुसार यह संस्कार तीसरे, पांचवें, सातवें, दसवें, और ग्यारहवें वर्ष में भी किया जा सकता हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य जी के अनुसार जिसके यहाँ जैसी कुल प्रथा हो, तदनुसार यह संस्कार करें 'चूडा कार्या यथाकुलम्' । कुल प्रथा के अनुसार कहीं पाँचवें वर्ष में या यज्ञोपवीत संस्कारके साथ भी चुडाकर्म संस्कार करने की परंपरा भी दिखाई देती हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र के इस वचन के अनुसार बालक के दीर्घायु, सौन्दर्य तथा कल्याण प्राप्ति की कामना के लिये इस संस्कार को कराना चाहिये। सुश्रुत ने कहा है केशों एवं नखों के अपमार्जन एवं छेदन से उत्साह , सौभाग्य एवं अनेक प्रकार के जो कष्ट की निवृति होती हैं।

पापीपशमन केशनखरोमापमार्जनम्।

हर्षलाधवसौभाग्यकरमुत्साहवर्द्धनम्।।

चूड़ाकरण संस्कार के बारे में नियमों का वर्णन करते हुये कहा गया है कि यदि शिशु की माता को पाँच वर्ष से अधिक का गर्भ हो तो शिशु का मुण्डन नही करना चाहिए यह अशुभ होता है। यह और दूसरा विधान कहा गया हैं ,यदि शिशु पांच वर्ष से अधिक का हो तो माता के गर्भिणी होने पर भी चूडाकरण संस्कार करना शुभ माना जाता हैं। चूडाकरण संस्कार में तारा अशुभ होने पर यदि चन्द्रमा अपने मूल त्रिकोण में हो अथवा उच्च में हो अथवा शुभ ग्रह या अपने मित्र के षड्वर्ग में हो तो चूडाकरण संस्कार शुभ होता हुआ फल की प्राप्ति करता हैं।

ऋतुमत्याः सूतिकायाः सूनोश्चौलादि नाचरेत्।

ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेपि नेष्यते ।।

आचार्य मनु भी मुंडन संस्कार के बारे में वर्णन करते हैं।

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।

प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ।।

मनुस्मृति के अनुसार बालक का चूडाकर्म संस्कार जन्म से प्रथम या तृतीय वर्ष में करना चाहिये। चूडाकर्म संस्कार में शिशु के गर्भकालीन केशों का कर्तन किया जाता है और शिशु को शिखा धारण

करायी जाती है। शिखा धारण करने से जातक में तेज की वृद्धि निरंतर बढती रहतीं हैं। तथा वह जातक दीर्घ आयु तथा बलवान होता हैं। 'दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे शिखायै वषट' ।शिखा हमारी ज्ञान शक्ति में वृद्धि करती हैं। चूडाकरण संस्कार को करने का विधान अलग से दिखाई देता हैं। इस संस्कार में सर्व प्रथम बालक के केशों का अधिवासन सम्पन्न करना चाहिये। स्नान आदि सम्पन्न कर बालक के सिर के बालों को संकल्पित जल से विधिपूर्वक मंत्रो के द्वारा भिगोकर तथा जूड़ा बनाकर कपड़े से बांधना ही अधिवासन कर्म कहलाता है। अधिवासन कर्म मुंडन संस्कार के पूर्व दिन रात्री के शुभ पप्रहर में किया जाता है, यदि पहले दिन यह कर्म किसी अशुभ मुहूर्त में न हो सके तो चूड़ाकरण के दिन प्रारम्भ में ही केशो का पंचामृत से स्नान कर जूडा बनाना चाहिये। चूड़ाकरण क दिन बालक के माता-पिता तथा बालक सहित स्नानादि कर नवीन वस्त्रों को धारण कर एवं पूर्व दिशा की ओर मुख कर आसन पर विराजमान होकर दीप प्रज्वलित कर आचमन, प्रणायम करने के पश्चात हाथ में जलादि गृहण कर संकल्प करें इसके बाद पञ्चाङ्ग पूजन, गणेश पूजन कर यज्ञ करने से पूर्व विद्वान पुरूष द्वारा जिसके कर्म शुभ हो के द्वारा उत्तराभिमुख बैठकर पूर्वाभिमुख बालक के सिर का पूर्व भाग से केश बनाना चाहिए।

3.5 चूडाकरण मुहूर्त विचार

किसी भी जातक के जन्म के प्रारम्भ के संस्कारो को करने के बाद 5.3,7 वर्षों में चूडाकर्म संस्कार करना शुभ माना जाता हैं, जिसका वर्णन शास्त्रीय ग्रंथो में किया गया हैं। मुहूर्त चिंतामणि ग्रन्थ के अनुसार यह उक्ति कही गयी हैं।

चूडावर्षात्तृतीयात् प्रभवति विषमे अष्टार्करिक्त्याद्यषष्ठी।

पर्वोनाहे विचैत्रोदगयनसमये ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानाम्।

शुभ दिन मुहूर्त के अनुसारषोडशोपचार पूजन विधि के द्वारा यह संस्कार सम्पन्न किया जाता हैं। चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती नक्षत्रों में करना श्रेष्ठ है। अष्टम भाव शुद्ध होना चाहिये। ज्येष्ठ, चैत्र मास मे न करें। बालक की माता को रने पांच मास की गर्भ स्थिति होने पर 5 वर्ष से न्यून अवस्था के शिशु का मुण्डन करना अशुभ माना जाता है।

सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत्।

पञ्चाब्दात्प्रागथेर्ध्व तु गर्भिण्यामपि कारयेत्॥

वारे लग्नांशयोश्चास्वभनिधनतनी नैधने शुद्धियुक्त।

शाक्रोपेतैविमैत्रैमृदुलघुचरभैरायषत्रिस्थपापैः ।।

चूडाकरण संस्कार जन्म समय से अथवा गर्भाधान से तीसरे आदि विषम वर्ष में करने का विधान हैं। अर्थात् अष्टमी, अर्क , द्वादशी, रिक्ता ,चतुर्थी, नवमी व चतुर्दशी, आद्य प्रतिपदा, तिथियों और पर्वो को त्यागकर अन्य द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी एवं त्रयोदशी तिथियों में चैत्रमास को त्यागकर , उदगयन समय यानी उत्तरायन माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ मासों में, बुध, इन्दु यानी सोम, शुक्र एवं गुरु आदि शुभ दिनों में यह संस्कार किया जाता हैं। राशियों के अनुसार वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धनु व मीन तथा इन राशियों के के नवांश में , जिस बालक का चूडाकरण संस्कार करना हो उसकी जन्म राशि ओर जन्म लग्न से आठवीं राशि के लग्न को त्यागकर अन्य लग्नों में, लग्न से आंठवे सभाव में कोई शुभ या पापग्रह स्थित न हो , ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त अनुराधा सहित मृदुसंज्ञक मृगशिरा, रेवती, चित्रा नक्षत्रों में, चर संज्ञक स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा, लघु संज्ञक हस्त, अश्विनी, पुष्य इन बारह नक्षत्रों में, लग्न से तीन, छ, ग्यारह स्थानों में पापग्रह सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु के स्थित रहने पर चूड़ाकर्म संस्कार उत्तम माना जाता हैं।आचार्य पराशर मुनि के अनुसार अष्टम भाव में शुक्र ग्रह की स्थिति अशुभ नही मानी जाती हैं। यदि जातक के लग्न से केन्द्र में क्षीण चन्द्रमा बेठा हो तो बालक की मृत्यु का संकेत करता हैं। यदि केन्द्र मे मंगल हो तो शस्त्र से मृत्यु का भय, शनि हो तो पंगुता, सूर्य हो तो ज्वर रोग होत हैं । यदि बुध, गुरु, शुक्र केन्द्र में हो तथा दो, चार, छ, सात, नव तारा हो तो मुंडन संस्कार शुभ होता हैं ।

क्षीणचन्द्रकुजसौरिभास्करैर्मत्युशस्त्रमृतिपंगुता ज्वराः ।

स्यु क्रमेण बुधजीवभार्गवैः केन्द्रगैश्चशुभमिष्टतारया।।

ज्योतिष ग्रंथो यह भी विचार किया गया है की चूडाकरण संस्कार करने से पूर्व में ताराबल का विचार करना और भी शुभ माना जाता हैं। मुहुर्चिन्तामणि ग्रन्थ में आचार्य राम देवज्ञ ने उल्लेख किया हैं ।

तारादौष्ट्ये अब्जे त्रिकोणोच्चगे वा क्षौरं सत्स्यात्सौम्यमित्रस्ववर्गे।

सौम्ये भेब्जे शोभने दुष्टतारा शस्ता ज्ञेया क्षौरयात्रादिकृत्ये ।।

यदि तारा का विचार करने के बाद एक, तीन, पांच, सात संख्या आने पर भी यदि चन्द्रमा लग्न से त्रिकोण में हो, अपनी उच्च राशि में बेठा हो, या शुभग्रह के घर में स्थित हो, या अपने मित्र के वर्ग में

हो या अपने ही वर्ग में स्थित हो तो इस प्रकार के लग्न चूडाकरण संस्कार के लिये अति शुभ माना जाता हैं। जो शुभफल की प्राप्ति करता हैं ।

शुभ वर्षादि – विषम वर्ष या उत्तरायण

शुभ तिथि -2,3,5,7,10,11,13

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु, शुक्र

शुभ नक्षत्र -अश्विनी, मृगशिरा, पुनवर्स, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण,शतभिषा, रेवती।

अशुभ समय - लग्न से अष्टम ग्रह, ज्येष्ठ, चैत्र मास, समवर्ष, दक्षिणाय

3.6 संस्कार एवं मुहूर्त विचार

जब किसी जातक का जन्म होता है तो जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त षोडश संस्कार के द्वारा ही जन्म और मृत्यु का यह विधान सम्पन्न होता हैं जिससे की वह जातक संस्कारों के माध्यम से कर्तव्य निष्ठ बन सके संस्कारों का हमारे जीवन मैं बहुत ही प्रभाव पडता है जैसा हमारा परिवेष होगा वैसे हमारे संस्कार होते हैं संस्कार के द्वारा ही जीवन का मार्ग एक सही तरह आगे बढ़ सकता हैं संस्कार हमारे पूर्वजों से लेकर चले आते हैं जिससे की हमारी कोई भी समस्या हो वह एक सही संस्कारों से ही दूर हो सकती हैं। अब हम जानेंगे की षोडश संस्कार के लिए मुहूर्त की आवश्यकता क्यों होती हैं। वस्तुतः मुहुर्त शास्त्र काल पर ही आधारित हैं बिना कालशास्त्र के मुहूर्त की गणना भी नहीं जा सकती है मुहुर्त का सामान्य अर्थ हैं शुभ समय निश्चित करना, इस शुभ क्षण को मुहूर्त कहते है षोडश संस्कार मैं मुहूर्त की बहुत ही भूमिका रहती हैं।, गर्भाधान संस्कार से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्यन्त मुहूर्त की आवश्यकता होती हैं, जैसे गर्भाधान संस्कार के समय कैसा मुहूर्त था क्या शुभ समय मैं यह संस्कार हो पाया या नहीं यदि शुभ मुहूर्त मैं यह संस्कार हो जाता है तो उस संस्कार की पूर्णता हो जाती है यदि मुहूर्त के अनुसार नहीं हो पाया तो वह अशुभता प्रतीक माना जाता हैं। इसलिए षोडश संस्कारों मैं प्रत्येक संस्कार को पूर्ण करने के लिए मुहूर्त की आवश्यकता होती हैं। बिना मुहूर्त के संस्कारों की शुभता नही होती हैं। संस्कार और मुहूर्त का हमेशा से अन्तर्सम्बन्ध रहा हैं, ये एक दूसरे के पूरक कहे जाते हैं इन दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

3.7 षोडश संस्कार परिचय

भारतीय परम्परा में गर्भाधान संस्कार को प्रथम संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। जातक के जन्म से पहले के तीन संस्कार है- गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयना इन तीनों संस्कारो को शुभ मुहूर्त में ही किया जाता है। तीनों संस्कारों को सम्पन्न करने का दायित्व पिता का ही होता है। रजोदर्शन के प्रारम्भ की सोलह रात्रियों में गर्भाधान करना चाहिये। (चार रात्रि को गर्भाधान से सम रात्रियों के विषम रात्रियों में गर्भाधान से कन्या का जन्म होता है। चौथी रात्रि में निषेध हो तो दुःखी पुत्र का जन्म होता है। पाँचवीं रात्रि से सामान्य फल की प्राप्ति होती है. पुत्र या पुत्री कुछ भी प्राप्त हो सकती है। सातवीं रात्रि के गर्भाधान से अल्पायु कन्या होती है। आठवी रात्रि में सुन्दर कन्या उत्पन्न होती है। 10 वी रात्री में उत्कृष्ट पुत्र उत्पन्न होता है। नवमी में दीर्घायु पुत्र तथा ग्यारहवीं रात्रि में श्रेष्ठ कन्या की प्राप्ति होती है। बारहवीं रात्रि में धर्म के साथ चलने वाला पुत्र होता है तथा तेरहवीं रात्रि में सती कन्या उत्पन्न होती है। चौदहवीं रात्रि में सात्त्विक तथा शुभ पुत्र उत्पन्न होता है। पन्द्रहीं रात्रि में लक्ष्मी एवं सौभाग्य से कन्या का जन्म होता है। सोलहवीं रात्रि में दीर्घायु तथा राजा के समान पुत्र होता है ॥

पुंसवन संस्कार

गर्भः सुस्थापिते चास्य वक्ष्ये पुंसवनस्य च

काले यस्मिन् कृतो गर्भः पुमान्भवति निश्चितम्।।

पुत्र की प्राप्ति के लिए पुंसवन संस्कार को किया जाता है। जिस भी व्यक्ति को पुत्र का अभाव हो उसे इस संस्कार के साथ साथ प्रजापत्य यज्ञ करना चाहिए।गर्भ के अभिव्यक्त होने पर यह संस्कार करना चाहिए। गर्भधारण के द्वितीय या तृतीय मास में इस संस्कार को करने का विधान है। कतिपय ग्रन्थों में इसे षष्ठ या अष्टम मास में भी करने को कहा गया है।

पूर्वोदितैः पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा।

मासेऽष्टमे विष्णुविधातृजीवैर्लग्ने शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे।। मु.चि.सं.प्र श्लोक 10

गुरु, रवि और भौमवासरों, मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु तथा हस्त नक्षत्रों में रिक्ता ४,९,१४

अमावस्या, द्वादशी, षष्ठी और अष्टमी तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में गर्भमासपति के बलवान रहने पर आठवें अथवा छठें मास में शुभग्रहों के केन्द्र १,४,७,१० एवं त्रिकोण ५,९ भावों में स्थित रहने पर तथा पापग्रहों के ३,६,११ भावों में जाने पर पुंसवन संस्कार तीसरे मास में करना चाहिये। इसके अनन्तर आठवें मास में श्रवण, रोहिणी और पुष्य नक्षत्रों में शुभलग्न में अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर गर्भिणी को भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिये। गोभिल ऋषि के अनुसार पुंसवन संस्कार को तृतीय मास के तृतीय भाग में करना शुभ कारक होता है। पुत्र की कामना होने पर इस संस्कार को अवश्य करना चाहिए।

सीमन्तोनयन संस्कार-

भारतीय परम्परा में 16 संस्कारो को करना आवश्यक होता है इन संस्कारो में से एक सीमन्तोन्नयन संस्कार भी होता है जिसके करने से पत्नी की समस्यों को निवारण किया जाता है जिससे की यश की वृद्धि होती है। इस संस्कार को करने से गर्भ का अष्टम मांस का अधिपति बली हो तथा पत्ती पत्नी दोनों का चन्द्रमा बली हो तो उस समय सीमन्तोनयन संस्कार किया जाता हैं।

स्त्रीणां तु प्रथमे गर्ने सीमन्तोन्नयनं शुभम् ॥

पापेषु सत्सु चन्द्रेन्त्य निधनाद्यारिवर्जिते

क्रूरग्रहाणामेकोऽपि लग्ना दन्त्यात्मजाष्टगाः ।

नामकरण संस्कार

षोडश संस्कारों में नामकरण संस्कार को बहुत ही महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है जातकर्म संस्कार के बाद ही नामकरण संस्कार किया जाता है इसका विधान क्या हैं शास्त्रों में इसका सम्पूर्ण वर्णन प्राप्त होता हैं मुहूर्त चिंतामणिमणि ग्रंथ में आचार्य रामदैवज्ञ जी कहते हैं नामकरण संस्कार वर्षो के अनुसार की जाती है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन सभी वर्षो के लिए अलग अलग दिनों मैं ही करना चाहिए जन्म से 11 दिन मैं नामकरण संस्कार करना शुभ माना जाता है इस संस्कार को 10 दिन के सूतक की समाप्ति पर ग्यारह दिन सूतक को दूर करने तथा बालक का नवीन नाम रखकर विधि विधानपूर्वक षोडशोपचार से पूजन कर नामकरण संस्कार करना शास्त्र सम्मत कहा गया है।

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावह कर्मसु भाग्यहेतुः ।

नाम्नैव कीर्ति लभते मनुष्यः ततः प्रशस्तं खलु नाम कर्म।

निष्क्रमण संस्कार

जातक के जन्म के बाद नामकरणादि होने के पश्चात् जब प्रथम बार बालक को घर से बाहर निकाला जाता है उसे निष्क्रमण संस्कार कहते हैं। सही मुहुर्त अनुसार बालक को घर से बाहर ले जाना ही निष्क्रमण संस्कार कहलाता है। जन्म से बारहवें दिन बिना मुहूर्त विचार के बालक का निष्क्रमण कर, सूर्य नक्षत्र का पूजन कर सूर्य नक्षत्र व देवताओं का दर्शन करावें। यदि बारहवें दिन यह न हो पाये तब 3 मास में मंगल शनि वर्जित वारों व रिक्ता, विष्टि, अमावस्य आदि अशुभ योग से भिन्न शुभ दिन में, अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, स्वाति, मूल श्रवणा, धनिष्ठा नक्षत्रों में प्रथम निष्क्रमण शुभ है।

जातकर्म संस्कार

जतक के जन्म लेने पर किया जाने वाला संस्कार जातकर्म संस्कार कहलाता है। इसे नाभि वर्धन भी कहते हैं।नाभि को काटने से पूर्व इस संस्कार का विधि विधान के द्वारा पित्रों को साक्षी कर नांन्दी श्राद्ध के द्वारा पित्रों का पूजन करना चाहिए। जब किसी जातक का जन्म होते ही उसी समय उस जातक का नालछेदन से पूर्व इस संस्कार को करना चाहिये l

तस्मिञ्जन्ममुहूर्तेऽपि सूतकान्तेऽपि वा शिशुः।

जातकर्म प्रकर्त्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम्। नारद, ज्यो. संहिता अ.19, श्लोक

अन्नप्राशन संस्कार

जातक के जन्म के 6वें या आठवे महीने में अन्नप्राशन संस्कार किया जाता है इस संस्कार में जातक को अन्नके द्वारा जातक का मुंह जूठा किया जाता है उस दिन से उसका अन्न लेना प्रारंभ हो जाता है इसी संस्कार को अन्नप्राशन संस्कार कहते हैं। बालक के नामकरण, निष्क्रमण, भूमि उपवेशन के बाद 6,8,10,12वें महीने में पुत्र को और 5,7,9 वें मास में कन्या को अन्नप्राशन कराने का विधान है। विशेष उक्त मासों में भद्रा व्यतिपात दोष रहित 1,3,5,7,10,13,15 तिथियों में शुभवार अश्विनी,

रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त चित्रां स्वाति, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनों उत्तरा, रेवती नक्षत्रों में 1,3,4,5,7,9 स्थानों में शुभ ग्रह हो जन्म लग्न या जन्मराशि से अष्टम लग्न या नवांश तथा 12,1,8 लग्न को त्यागकर पाप-शुद्ध दशम भाव इन

कर्णभेद संस्कार

कर्ण-कान, वेध छेदन, कान का छेदन ही कर्णवेध कहलाता हैं जिससे की इस संस्कार का विधान पूर्ण हो सके। कर्ण वेध के महत्व के सन्दर्भ में आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि कर्णवेध संस्कार करने से पान से अन्त्रवृद्धि, अण्डकोष वृद्धि आदि का निरोध होता है।

शंखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन् सेवनीयम्।

व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येद् अन्त्रवृद्धि निवृत्तये ।।

समवर्ष, चैत्र, पौष, जन्ममास, देवशयन, जन्म नक्षत्र व तिथि, क्षयतिथि व रिक्ता को छोड़कर जन्म से 12वें या 16वें दिन अथवा 6, 7, 8वें मास में या विषम वर्षो में शुभवार, अश्विनि, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती नक्षत्रों में लग्न से अष्टम शुद्ध समय में वृष, तुला, धनु, मीन लग्न में तथा गुरु की लग्न में स्थिति होने पर कर्ण-वेध संस्कार शुभ होता है।

विद्यारंभ संस्कार

विद्यारंभ संस्कार के द्वारा बालक को विद्वान बनानें के लिए गुरुके द्वारा ज्ञान दिया जाता है इस दिन से शिक्षा प्रारंभ करते हैं लेखनी पुस्तिका इन सब का पूजन कर यह संस्कार कशुभ दिनों में प्रारम्भ किया जाता है। शब्दों का ज्ञान अक्षरों के ज्ञान को करने के लिए विद्यारंभसंस्कार किया जाता है। अक्षरारम्भ के उपरान्त विशेष ज्ञान को बढाने वाली किसी भी भाषास्थ विद्या (विशेषतः संस्कृत भाषस्थ विद्या) का प्रारम्भ फाल्गुन मास छोड़कर उत्तरायण 23,5,6,10,11,12 तिथियों में, रवि, बुध, गुरु शुक्र वारों में और अश्विनी आश्लेषा, अ मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनों पूर्वा, रेवती इन नक्षत्रों में श्रेष्ठ हैं। अंग्रेजी, फारसी, उर्दू के हो विद्यारम्भ के लिये रवि, मंगल, शनिवार, रिक्ता तिथि, ज्येष्ठा, आश्लेषा, मघा, अपूर्वा, भरणी, कृतिका,, विशाखा, आर्द्रा, उत्तराषाढ़ा, शतभिषा, इन नक्षत्रों में शुभ है।

चूडाकर्म संस्कार

किसी जातक के जन्म के बाद 5.3,7 वर्षों में चूडाकर्म संस्कार करना शुभ माना जाता है शुभ दिन मुहूर्त के अनुसारषोडशोपचार पूजन विधि के द्वारा यह संस्कार सम्पन्न किया जाता हैं। चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती नक्षत्रों में करना श्रेष्ठ है। अष्टम भाव शुद्ध होना चाहिये। ज्येष्ठ, चैत्र मास मे न करें। बालक की माता को रने पांच मास की गर्भ स्थिति होने पर 5 वर्ष से न्यून अवस्था के शिशु का मुण्डन करना अशुभ माना जाता है। सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत्। पञ्चाब्दात्प्रागथेर्ध्व तु गर्भिण्यामपि कारयेत्॥

उपनयन संस्कार

उपनयन संस्कार मैं बालक को यज्ञोपवीत धारण किया जाता है कुलपुरोहित के द्वारा विधिवत वैदिक मंत्रोंके द्वारा इस विधान को किया जाता है। इस संस्कार में कुलपुरोहित बालक को मंत्र देकर यह संस्कार पूर्णकराते हैं। जन्म से 5,8,16, वर्षों में वर्णानुसार इस संस्कार को कराया जाता है। उपनयन का अर्थ है समीप यानि गुरु के समीप जाकर के यह संस्कार किया जाता है। उपनयनसंस्कार बालक के जन्म से या गर्भ से ब्राह्मण का 8 वें, क्षत्रिय का ।। वें, वैश्य का 12 वें वर्ष में करना श्रेयस्करमाना जाता है। इस समय के व्यतीत हो जाने पर ब्राह्मण 16 वें वर्ष, क्षत्रिय 22 वें वर्ष वैश्य 24 वें वर्ष तक उपनयन संस्कार कर सकते हैं।

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाष्टमे।

वर्षे वाप्यथ पञ्चमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे।

वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद् द्वादशे वत्सरे।

कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहुर्बुधाः ॥

वेदारंभ संस्कार

वेदारभ के अंतर्गत बालक को वेदों का ज्ञान कराया जाता है।जिससे की वह बालक वेदों को समझ सके प्राय देखा जाय तो वेदारंभ संस्कार को विद्यारंभ संस्कार ही कहा जाता है। क्योंकि विद्या प्राप्ति के पश्चात ही व्यक्ति वेदों तथा अन्य धर्मग्रंथों का अध्ययन करने में सक्षम होता था। तब शिक्षा का महत्त्व वेदाध्ययन की दृष्टि से अधिक था। इस कारण इस संस्कार को विद्यारंभ संस्कार अथवा वेदारंभ संस्कार के रूप में जाना जाता hai।

केशांत संस्कार

वेदारंभ संस्कार के पूर्ण होने पर केशांत संस्कार किया जाता है, इस संस्कार को करने से बालक को बताया जाता है कि अब उसे सामजिक जिम्मेदारियों का पालन करना है. आइए जानते है केशांत संस्कार का महत्व, क्या है इसे कब करना चाहिए।

केशांत संस्कार का महत्व केशांत दो शब्दों से मिलकर बनता है केश और अर्थ (केश-बाल, अंत पूर्ण) अर्थात किसी व्यक्ति के बालों को पूरी तरह से काटना ही केशांत कहलाता है। पहली बार बालक अपने दाढ़ी और मूंछ को काटता है. यहीं से उसका किशोरावस्था पूर्ण होता है और वो गृहस्थ जीवन की ज़िम्मेदारी उठाने योग्य बन जाता है. केशांत संस्कार एक युवा के वेदारंभ संस्कार की समाप्ति के पश्चात किया जाता है क्योंकि उसके बाद वह गुरुकुल से अपने घर और समाज में दोबारा लौटता हैकेशांत संस्कार 16 साल की उम्र से पहले नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे पहले वह वेदारंभ संस्कार के नियमों का पालन कर रहा होता है। जिसमें उसे गुरुकुल में रहकर सिर तथा दाढ़ी के बाल कटवाने के लिए निषेध होता है। इस संस्कार को करते समय मुख्य-तौर पर कुछ मंत्रो का जप करना लाभदायक होता है।

समावर्तन संस्कार मुहूर्त-

षोडश संस्कार में समावर्तन संस्कार का महत्व भी अधिक माना जाता है। जब शिशु धीरे धीरे बड़ा होकर गुरुकुल में जाकर के गुरु के आश्रम में रहकर वेद शास्त्रों का अध्ययन करता है तो अध्ययन पूर्ण होने के पश्चात् वह शास्त्री, आचार्य की शिक्षा प्राप्त यानि स्नातक की शिक्षा प्राप्त कर ब्रह्मचर्य का पालन कर वह घशुभ दिन में सूर्य उत्तरायण में हो ऐसे समय पर वह विद्यार्थी घर लौटता है उसे समावर्तन संस्कार कहते हैं। इस संस्कार के बाद विद्यार्थी स्नातक कहलाता है गुरुकुल से लोटने पर उस बालक का संस्कार स्नान होता हैं। इसे धर्म शास्त्रों में समावर्तन कहते हैं। (सम्यक रुप से घर लौटना) ही समावर्तन संस्कार कहलाता हैं।

विवाह संस्कार

षोडश संस्कार मैं विवाह संस्कार 15 वां संस्कार हैं। जब जातक सभी संस्कारों का विधिवत पालन करते करते आगे बढ़ता हैं तो फिर उसे विव संस्कार को भी करना पड़ता है। क्योंकि सभी चारों आश्रम गृहस्थ पर ही आधारित हैं जिससे की सृष्टि प्रक्रिया भी चलती रहे ओर सभी जीवों का पालन

गृहस्थियों के द्वारा होती रहें सभी आश्रमों में यह श्रेष्ठ आश्रम कहां गया हैं। विवाह संस्कार होने पर धर्म का पालन भी होता हैं। हमारे शास्त्रों में इन संस्कारों के विषय में कहां गया हैं। शुभ मास, दिन, लग्न में विवाह संस्कार करना चाहिए।

सर्वाश्रमाणामाश्रेयो गृहस्थाश्रम उत्तमः ।

यतः सोऽपि च योषायां शीलवत्यौ स्थितस्ततः ।

तस्यास्तच्छीललब्धिस्तु सुलग्नवशतः खलु।

पितामहोक्तां सम्वीक्ष्य लग्नशुद्धिं प्रवच्यहम्।

3.8 मुहूर्त और संस्कार का मानव जीवन में प्रभाव

मानव जीवन की सफलता किसी न किसी पर आधारित हैं मानव जीवन को पूर्णता की ओर ले जाने के लिए मुहूर्त ओर संस्कार की आवश्यकता होती हैं। मनुष्य किसी भी धर्म से हों उसका जन्म भी षोडश संस्कारों के अन्तर्गत होता हैं। जन्म से लेकर जो भी संस्कार प्रारंभ होते हैं, उस समय सही मुहूर्त के अनुसार ही उस संस्कार को विधि विधान के द्वारा पूरा किया जाता है जिसका प्रभाव उस मनुष्य पर शत प्रतिशत पड़ता है। और उसी के अनुसार उसका जीवन आगे बढता रहता हैं सही दिशा की ओर बढ़ने के लिए जीवन को सफल करने के लिए इन सभी संस्कारों तथा मुहूर्तो का मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता रहता हैं जिससे की उस मनुष्य का मार्ग सही दिशा की ओर बढ़ सके तथा वह अपने जीवन मैं प्रसन्न रह सके यही संस्कार तथा मुहूर्त का प्रभाव होता है।

3.9 चूडाकरण संस्कार में षोडशोपचार पूजन

पाद्यं

गङ्गोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम् ।

पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं मे प्रतिगृह्यताम् ॥

पादयोः पाद्यं समर्पयामि।

आचमन जल छोड़े

भगवान का पूजन अनेकानेक वैदिक तथा पोराणिक मंत्रो के द्वारा किया जाता है। इन सभी वैदिक मंत्रो में भगवान की प्रार्थना की गयी है। पंचोपचार पूजन में पाच वस्तुओ के द्वारा परमात्मा का विधि विधान से पूजन अर्चन किया जाता है। जिससे की मनुष्य सुख प्राप्त कर सके । पंचोपचार में यह वैदिक मंत्र शुक्लयजुर्वेद से लिया गया है। जिसमे कहा गया है कि - सृष्टिसाधन-योग्य या देवताओं और सनक आदि ऋषियों ने मानस याग की सम्पन्नता के लिये सृष्टि के पूर्व उत्पन्न उस यज्ञ साधन भूत विराट् पुरुष का प्रोक्षण किया और उसी विराट् पुरुषसे ही इस यज्ञ को सम्पादित कि |

अर्घ्यं

गङ्गोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम् ।

गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसन्नो वरदो भव ॥

हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि अर्घ्य का जल छोड़े ।

आचमनं

कर्पूरेण सुगन्धेन वासितं स्वादु शीतलम् ।

तोयमाचमनीयार्थं गृहाण परमेश्वर ॥

मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी आचमनके लिये जल समर्पित करे ।)

स्नानीय जलं

मन्दाकिन्यास्तु यद् वारि सर्वपापहरं शुभम् ।

तदिदं कल्पितं देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

स्नानीयं जलं समर्पयामि

वस्त्र-

शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया रक्षणं परम् ।

देहालङ्करणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।

आभूषणं -

वज्रमाणिक्यवैदूर्यमुक्ताविद्रुममण्डितम् ।

पुष्परागसमायुक्तं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥

अलङ्करणार्थं आभूषणानि समर्पयामि

गन्धं

श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।

विलेपनं सुरश्रेष्ठ! चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥

पुष्पं

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।

मयाहतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

धूपं

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।

आत्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

दीपं

साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।

दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥

नैवेद्यं

शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च।

आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।।

आचमनं

कर्पूरेण सुगन्धेन वासितं स्वादु शीतलम् ।

तोयमाचमनीयार्थं गृहाण परमेश्वर ।।

मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी आचमनके लिये जल समर्पित करे ।

ताम्बूलं

पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्।

एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।।

स्तवपाठ-

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय

लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।

नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय

गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते।।

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या

विश्वस्य बीजं परमासि माया ।

सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्

त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ।।

तर्पण

स्तुति पाठ के बाद जल के द्वारा तर्पण देने का विधान है ।

नमस्कारं

नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे ।

साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ॥

नमस्कारान् समर्पयामि ।

3.10 सारांश

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ गये होंगे कि संस्कार किसे कहते हैं संस्कार की प्रारंभिक अवस्था क्या हैं। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मनुष्य के अन्त करण में संस्कार व्याप्त रहता हैं जिससे कि उस मनुष्य की वृद्धि होती रहती हैं वह स्वयं के परिवेष के साथ साथ

अन्य परिवेश को भी संस्कारित करता हैं। जिससे वह एक नये परिवेश का निर्माण कर सकें। वस्तुत सनातन संस्कृति में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त षोडश संस्कार होते हैं। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त षोडश संस्कार होते हैं। इन सभी षोडश संस्कारमै मुहूर्त का विचार करना आवश्यक होता हैं जिससे की षोडश संस्कार का मुहूर्त शुभ हो तथा उस संस्कारको करने के लिए मुहूर्त के द्वारा शुभ दिन निश्चित कर इन सभी संस्कारों को किया जा सकता है। यह सारासंसार काल के वश में होने के कारण यहां पर जितने भी प्राणी हैं उन सभी को इन षोडशो संस्कार से होकर आगे जाना होता हैं जिसमें की मुहूर्त की आवश्यकता होती हैं। शुभ मुहूर्त के द्वारा ही संस्कार को करना शुभमाना जाता है। अतः प्राग्जन्म के तीन संस्कार होते हैं गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, इन तीनों संस्कार कोकरने का अधिकार पिता को होता है मां इस संस्कार मैं संवाहिका होती हैं। वह अपने स्वामी द्वारा सम्पन्नकराया जा रहा संस्कार पवित्र होकर धारण करती हैं। आगे के जो भी संस्कार होते हैं उसमें मां निमित्त बनकर नामकरण संस्कार, उपनयन संस्कार, चूडाकरण संस्कार, इत्यादि संस्कारों को करने के लिए दायित्व लेती हैं। पूर्व में हमारे ऋषियों के द्वारा कहे गये इन संस्कारों का हम सभी को पालन करना चाहिए। जिससे आने वाली पीढ़ियों पर सही प्रभाव पड़ सके। इसलिए षोडश संस्कारों में मुहूर्त की आवश्यकता विशेष रुप से होती हैं।

3.11 पारिभाषिक शब्दावली

1. निष्क्रमण- बालक को घर से बाहर ले जाना ही निष्क्रमण संस्कार हैं

2. जातकर्म- जन्म के समय किया जाने वाला संस्कार जातकर्म कहलाता है।
3. संस्कार - संस्कृत करना अर्थात् विशुद्ध होना
4. मुहूर्त- शुभ समय को निश्चित करना
5. पुंसवन- पुत्र की प्राप्ति के लिए जिस संस्कार को किया जाता हैं उसे पुंसवन संस्कार कहते हैं।
6. कर्णवेध- कान पर छिद्र करना
7. सीमन्तोनयन - जिसमें गर्भिणी के केशों को ऊपर की और उठाया जाता है उस समय शास्त्र विधि से सीमन्तोनयन संस्कार किया जाता है।

3.12 अभ्यास प्रश्न

1. संस्कार किसे कहते हैं।

2. संस्कार कितने होते हैं।

3. प्राग्जन्म के कोन कोन संस्कार होते हैं।

4. गर्भाधान की उतम आयु क्या हैं।

5. चूडाकर्म के लिए शुभ नक्षत्र कोन से हैं।

7. ब्राह्मणों का उपनयन संस्कार कितने वर्ष में किया जाता है।

6. वर्ष की आयु में कोन सा संस्कार किया जाता हैं।

8. उपनयन संस्कार करने के लिए शुभ तिथि क्या हैं।

9. श्रत्रियों का जनेऊ कब किया जाता हैं।

3.13 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. संस्कृत करना अर्थात् विशुद्ध रहना ही संस्कार कहलाता हैं।

2. षोडश 16

3. गर्भाधान संस्कार, पुंसवन संस्कार, सीमन्तोनयन संस्कार

4. 20 से 40 वर्ष

5. अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती

6. चूडाकर्म संस्कार

7. आठ वर्ष में

8. 3,5,10,11,12,2, तिथियों में

9. जन्म काल से 11 वें वर्ष मैं

3.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मुहूर्त चिंतामणि, श्रीरामाचार्य विरचित

2. नारदज्योतिषसंहिता, नारद मुनि

3. मुहूर्त मार्तण्ड, नारायण दैवज्ञ

4. वृहद्देवज्ञरंजन

5. संस्कार एवं शान्ति रहस्य

6. शांति विधानं

3.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. संस्कार के स्वरुप एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।

2. चूडाकरण संस्कार का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

3. षोडश संस्कारो का सविस्तार उल्लेख कीजिये।

4. चूडाकरण के महत्व एवं मुहूर्त को लिखिए।

इकाई - 4 कर्णवेध

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 संस्कार का अर्थ एवं परिभाषा

4.4 कर्णवेध संस्कार परिचय एवं विधि

4.5 कर्णवेध संस्कार मुहूर्त विचार

4.6 कर्णवेध संस्कार का धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्व

4.7 बोधायन गृह्यसूत्र के अनुसार संस्कार विचार

4.8 व्यक्तित्व निर्माण में संस्कार की भूमिका

4.9 कर्णवेध संस्कार में कर्मकांड की भूमिका एवं पूजन विधान

4.10 सारांश

4.11 पारिभाषिक शब्दावली

4.12 अभ्यास प्रश्न

4.13 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

4.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

4.15 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-330 में हम सभी कर्णवेध संस्कार के विषय में जानकारी प्राप्त करते है। संस्कार शब्द का अर्थ है, दोषोंका परिमार्जन करना समस्याओं का समाधान करना अवमार्ग से सतमार्ग की और बढ़ना ,जीव के दोषों और कमियों को दूरकर उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन चारों पुरुषार्थ के योग्य बनाना ही संस्कार का यह प्रमुख उद्देश्य है, जो संस्कार कहलाता हैं। षोडश संस्कार के अंतर्गत सर्वप्रथम गर्भाधान किया जाता हैं। इस संस्कार को लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्यंत संस्कारों को मुहुर्त के नियमानुसार किया जाता है। भारतीय संस्कृति में 16 सोलह संस्कारों का विशिष्ट स्थान है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत इन संस्कारों की आवश्यकता होती है। जब हिरण्यगर्भ प्रभु ने इस जगत की रचना की उस समय संस्कारों को करने का आदेश दिया। प्रत्येक संस्कार में कोन कोन सा कर्म करना चाहिए तथा संस्कारों का क्या विधान है। जन्मोत्तर संस्कारों में प्रथम संस्कार गर्भाधान संस्कार होता है। यह संस्कार जातक के उत्पन्न होने के बाद विधि विधान से संपन किया जाने वाला संस्कार कहलाता हैं। उसके बाद के संस्कारों में से नामकरण, अन्नप्राशनादि आदि संस्कार क्रमशः आते हैं। इस इकाई में आप सभी षोडश संस्कारों का परिचय, कर्णवेध मुहूर्त, इत्यादि विषयों के बारे में अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन करनेके पश्चात् आप-

- कर्णवेध संस्कार क्या हैं ?इस विषय को जान सकेंगे।
- संस्कार का धार्मिक एवं आध्यत्मिक महत्व को समझ सकेंगे।
- संस्कारों के बारे में जानने का प्रयास करेंगे l
- कर्णवेध संस्कार मुहूर्त को जानने का प्रयास करेंगे।
- कर्णवेध संस्कार में कर्मकांड तथा षोडशोपचार पूजन से अवगत हो सकेंगे l

4.3 संस्कार का अर्थ एवं परिभाषा

संस्कार शब्द का अर्थ है, दोषोंका परिमार्जन करना समस्याओं का समाधान करना अवमार्ग से सतमार्ग की और बढ़ना ,जीव के दोषों और कमियों को दूरकर उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन

चारों पुरुषार्थ के योग्य बनाना ही संस्कार का यह प्रमुख उद्देश्य है, जो संस्कार कहलाता हैं। आचार्य शबरस्वामीने संस्कार शब्द का की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है 'संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कश्चिदर्थस्य।' अर्थात् संस्कार वह है, जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिये योग्य हो जाता है। तन्त्रवार्तिक ग्रन्थ के अनुसार 'योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्काराः इत्युच्यन्ते।' अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं। यह योग्यता दो प्रकारकी होती है- पापमोचन से उत्पन्न योग्यता तथा नवीन गुणों से उत्पन्न योग्यता संस्कारों से नवीन गुणों की प्राप्ति तथा पापों या दोषों का निवारण किया जाता हैं l यहाँ पर प्रश्न उठता हैं कि संस्कार किस प्रकार दोषों का शमन करता है, कैसे तथा किस रूप में उनकी प्रक्रिया होती है इसका विश्लेषण करना कठिन है, परंतु प्रक्रिया का विश्लेषण न भी किया जा सके, तो भी उसके परिणाम को अस्वीकार नहीं किया जा सकता हैंl संस्कारों के प्रभाव के कारण ही व्यक्ति शक्ति शाली बन सकता है। आचार्य मनु वर्णन करते हैं l

वैदिकैःकर्मभिःपुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यःशरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥

'वेदोक्त गर्भाधानादि पुण्य कर्मोंद्वा रा द्विजगणों का शरीर-संस्कार करना चाहिये। यह इस लोक और परलोक दोनों में पवित्र तथा कल्याण करनेवाला हैं ।' संस्करणं सम्यकरणं वा संस्कारः अर्थात् दोषों का निवारण, कमी या त्रुटि की पूर्ति करते हुए शरीर और आत्मा में अतिशय गुणों का आधान करने वाले शाख-विहित क्रिया-कलापों या कर्मकाण्ड के द्वारा उद्भूत अतिषय-विशेष ही 'संस्कार' कहलाता हैं। इस प्रकार मैल, दोष, दुर्गुण एवं त्रुटि या कमी का निवारण कर शारीरिक एवं आत्मिक अपूर्णता की पूर्ति करते हुए गुणातिशयों या सगुणों का आधान या उत्पादन ही संस्कार हैं। संस्कारों का महत्त्व बताते हुए 'मनुस्मृति' आचार्य मनु ने कहा हैं-अर्थात द्विजो के गर्भाधान, जातकर्म, चौल और उपनयनादि संस्कारों के द्वारा बीज-गर्भादिजन्य सभी प्रकार के दोषों और पापों का अपमार्जन होता हैं। तथा आत्मिक व भौतिक विकास का मार्ग प्रशस्त कर मनुष्य को मनुष्य बनाने वाले, उसके जीवन को अकलुष एवं तेजोदीप्त बनाकर उसे धर्मार्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए अग्रसारित करता रहता हैं। सतत प्रेरित करने वाले यज्ञोपवीत व विवाहादि षोडश संस्कारों का भारतीय-जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं। लोहा हो या सोना सभी धातुओं एवं मणि-माणिक्य आदि रत्नें को घिस-मांजकर, शाण पर चढ़ाकर, कूट-पीटकर या गल रता कर चमका दिया जाता है, उन्हें व्यवहार के योग्य

बना दिया जाता है तथा गुग्गुल आदि अनेक प्रकार की औषधियों को पंचगव्य आदि से संशोधित कर एवं संस्कारित कर उनकी गुणवता को शत-सहस्र गुना उसमे वृद्धि किय दिया जाता हैं, ठीक उसी प्रकार मानव-जीवन को भी पंचगव्य के द्वारा अभिमंत्रित सुसंस्कारित कर अनेक गुणों गुणयुक्त बनाया जाता हैं l आचार्य माघ ने कहा हैं,'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारों नान्यथा भवेत्। जीवन के आरम्भिक वर्षो में संस्कार का निर्माण व्यक्ति के अन्दर हो जाते हैं।

4.4 कर्णवेध संस्कार परिचय एवं विधि

प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथो में संस्कारों का विशेष उल्लेख मिलता हैं l जिस संस्कारमें विशेष विधिपूर्वक बालक एवं बालिका के दाहिने एवं बायें कान का छेदन किया जाता है, उसे कर्णवेधसंस्कार कहा जाता हैं। कर्णबेध शब्द के शब्दिक अर्थ को समझने का जब हम प्रयास करते हैं तो उसे दो भागों में रखते हैं। पहला कर्ण एवं दूसरा बेध कर्ण का अर्थ होता है कान, बेध शब्द का शाब्दिक अर्थ है बेधन करना यानि कान पर छिद्र करना बेधन कर्म को सम्पन्न करने वाला संस्कार कर्णबेध संस्कार कहलाता हैं । अब यहाँ प्रश्न खड़ा होता है कि कान का छेदन या बेधन क्यों करना चाहिये? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य सुश्रुत कहते हैं। सुश्ररक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णों बिध्येते अर्थात् रक्षा एवं आभूषण के निमित्त शिशु का कर्णवेध करना उचित माना जाता हैं । कर्ण वेध के कारणों में प्रथम कारण रक्षा एवं द्वितीय कारण आभूषण कहा गया हैं।

शंखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीयम्।

व्यत्यासात् वा शिरो विध्येत् आन्त्रवृद्धिनिवृत्तये।।

व्यासस्मृति में आचार्यो ने इस संस्कार की षोडश संस्कारोंमें गणना है और वहाँ बताया गया है कि 'कृतचूडे च बाले च कर्णवेधो विधीयते ।।' अर्थात् जिसका चूडाकरण संपन हो गया हो, उस बालक का कर्णवेध संस्कार करने का विधान शास्त्रों में बताया गया हैं। बालक के जन्म होने के तीसरे अथवा पाँचवें वर्ष में कर्णवेध करने का विधान हैं । दीर्घायु और श्री की वृद्धि के लिये कर्णवेध संस्कार की शास्त्रों में विशेष प्रशंसा की गयी है- 'कर्णवेधं प्रशंसन्ति पुष्ट्यायुः श्रीविवृद्धये' इसमें दोनों कानों में वेध करके उनकी नस को ठीक करनेके लिये सुवर्णका कुण्डल धारण कराया जाता है। जिससे उस जातक की शारीरिक रक्षा के साथ साथ आत्मिक वृद्धि भी होती हैं। आचार्य सुश्रुत वर्णन करते हैं कि रक्षा और आभूषण के लिये बालक के दोनों कानों का छेदन किया जाता हैं। शुभ मुहूर्त और नक्षत्र में मांगलिक कृत्य करके बालक को माता के गोद में बिठाकर जातक के दोनों कानों का छेदन किया

जाता हैं। य पुत्र हो तो पहले दाहिना कान छेदे और कन्या का पहले बायाँ कान का छेदन करना चाहिये। कन्याकी नाक भी छेदी जाती है और बींधने के पश्चात् छेद में पिचुवर्ति कपड़ेकी नरम बत्ती पहना देनी चाहिये-

'रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येते । पूर्वं दक्षिणं कुमारस्य, वामं कुमार्याः,

ततः पिचुवर्ति प्रवेशयेत्।' जब जातक का छिद्र पुष्ट हो जाय तो सुवर्ण का कुण्डल आदि पहनाना चाहिये। सुवर्ण के स्पर्श से बालक स्वस्थ और दीर्घायु होता है। बालकके कान में सूर्यकी किरण के प्रवेशके योग्य और कन्याके कान में आभूषण पहननेके योग्य छिद्र कराना चाहिये। कुमारतन्त्र नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि कर्णवेधनसंस्कार से बालारिष्ट उत्पन्न करनेवाले बालग्रहों से बालक की रक्षा होती है और इसमें कुण्डल आदि धारण करनेसे मुख की शोभा भी बढती हैं।

कर्णव्यधे कृतो बालो न ग्रहैरभिभूयते ।

भूष्यतेऽस्य मुखं तस्मात् कार्यस्तत् कर्णयोर्व्यधः

कर्णवेध संस्कार तीसरे अथवा पाँचवें वर्ष में किया जाता है। इसमें यथाविधि बालक अथवा बालिका के दाहिने और बायें कान का छेदन होता है। इसीलिये यह कर्णवेधसंस्कार कहलाता है। कर्णवेध संस्कार को किसी शुभ मुहूर्त में किसी शुभ दिन में कर्णवेध के लिये शुभ नक्षत्रों में प्रातः काल जागरण कर नित्यकर्मों को सम्पन्न कर पूजास्थल पर आकर अपने आसन पर पूर्वाभिमुख बैठ जाय। बालकको गोद में लेकर माता भी दाहिनी ओर आसन पर बैठ जाये। सभी सामग्रियोंको यथास्थान रख ले। दीपक प्रज्वलित कर ले। आचमन, प्राणायाम, पवित्रीधारण आदि कर्म करके कर्णवेधसंस्कारके लिये संकल्प किया जाता हैं। कर्णवेध के विधान का वर्णन करते हुये रत्नमाला नामक प्रन्थ में लिखा गया है कि-

शिशोरजातदन्तस्य मातुरुत्संगसर्पिणः।

सुताया वेधयेत् कर्णौ सूख्या द्विगुणसूत्रया।।

विशेषकर कन्या का सूई से दो सूत्र के बराबर छिद्र करना चाहिये। परन्तु गृह्य सूत्रों में इसका भेद नहीं किया गया है। कर्णरन्ध्र के विषय में आचार्य देवल का कथन है कि कर्ण रन्ध्र इतना होना चाहिये कि भगवान सूर्य की छाया उसके छिद्र में प्रवेश न कर सके ।

कर्णरन्थे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः ।

तं दृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्चपुरातनाः ।।

आचार्य शाकायन ने भी कर्णवेध के विषय में वर्णन किया हैं।

अविद्धकर्णैर्यदुक्तं लम्बकर्णैस्तथैव च।

दग्धकर्णैश्चयदुक्तं तद्वै रक्षांसि गच्छति।।

4.5 कर्णवेध संस्कार मुहूर्त विचार

कर्ण-कान, वेध-छेदन, कान का छेदन ही कर्णवेध कहलाता हैं। जिससे की यह संस्कार विधान पूर्ण हो सके। कर्ण वेध के महत्व के सन्दर्भ में आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि कर्णवेध संस्कार करने से अन्त्रवृद्धि, अण्डकोष वृद्धि आदि का निरोध होता है। (शंखोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीयम्। व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येद् अन्त्रवृद्धि निवृत्तये) कर्णवेध संस्कार को समवर्ष, चैत्र, पौष, जन्ममास, देवशयन, जन्म नक्षत्र व तिथि, क्षयतिथि व रिक्ता को छोड़कर जन्म से 12वें या 16वें दिन अथवा 6, 7, 8वें मास में या विषम वर्षों में शुभवार, अश्विनि, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती नक्षत्रों में लग्न से अष्टम शुद्ध समय में वृष, तुला, धनु, मीन लग्न में तथा गुरु की लग्न में स्थिति होने पर कर्ण-वेध संस्कार किया जाता हैं।

हित्वैतांश्चैत्रपीषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां

युग्माब्दं जन्मतारामृतमुनिवसुभिः सम्मिते मास्यथो वा।।

शुभ वर्षादि विषम वर्ष,	6,7,8 वें मास, जन्म से 12वें या 16वें दिन
शुभ तिथि	12,3,5,6,7,8,10,11,12,13,15
शुभ वार	सोम, बुध, गुरु, शुक्र
शुभ नक्षत्र	अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा,

शुभ लग्न 2,7,9,12

मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार कर्णवेध संस्कार मुहूर्त विचार

जन्माहात् सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारे -

ऽथोजाब्दे विष्णुयुग्मादितिमृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः।

चैत्र और पौष मास, तिथि क्षय, हरिशयन ,जन्म मास, रिक्ता तिथि, सम वर्ष, जन्मतारा इन सब को छोड़कर छठे, सातवें और आठवे महीने में अथवा जन्म दिन से 12/16 वें दिन में, बुध, शुक्र, सोमवार में, विषम वर्ष में, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक और लघुसंज्ञक नक्षत्र में कर्णवेध संस्कार को शुभ माना जाता हैं। मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार आचार्य राम देवज्ञ ने कर्णवेध संस्कार में शुभ लग्न का वर्णन किया हैं।

संशुद्धे मृतिभवने त्रिकोणकेन्द्र त्र्यास्थैः शुभखचरैः कवीज्यलग्ने।

पापाख्यैररिसहजायगेहसंस्थै लग्नस्थे त्रिदशगुरौ शुभावहः स्यात्॥

जातक लग्न से अष्टम स्थान शुद्ध हो, केंद्र में, त्रिकोण में और 3/11 में शुभ ग्रहे हो, लग्न में गुरु, शुक्र की राशि हो, 6/3/11 में पाप ग्रह हो, लग्न में गुरु हो तो कर्णवेध संस्कार शुभ होता है। कर्णवेध संस्कार के लिये किसी शुभ दिन शुभ नक्षत्र में पिता प्रातः काल उठकर नित्य कर्मों को सम्पन्न कर शुद्ध आसन पर पूर्व मुख होकर जातक का कर्णवेध संस्कार करना चाहिए।

4.6 कर्णवेध संस्कार का धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्व

कर्ण वेध संस्कार को हिंदू धर्म के सोलह संस्कारों में से एक महत्वपूर्ण संस्कार माना गया हैं। जो जातक के के जीवन को सुखी रखने के लिए किया जाता हैं। यह संस्कार विशेष रूप से जातकों के जीवन में एक विशिष्ट समय पर किया जाने वाला संस्कार कहा जाता हैं। कर्णवेध संस्कार का धार्मिक, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक तीनों प्रकार का लाभ देने वाला संस्कार कहलाता हैं।

धार्मिक दृष्टि से देखा जाय तो वेदों में कर्ण वेध संस्कार का उल्लेख, विशेष रूप से गृह्यसूत्रों में प्राप्त होता हैं। यह संस्कार वैदिक परंपरा का एक अंग है और जातक को धार्मिक जीवन की ओर आगे बढ़ाता हैं। कर्णवेध संस्कार से जातक के कर्ण को पवित्र बनाकर उसे धर्म, वेद, पुराण एवं सत्संग सुनने

योग्य बनाया जाता हैं। कर्णवेध संस्कार एक शारारिक प्रक्रिया न होकर धार्मिक, आध्यात्मिक और चिकित्सीय कार्य भी हैं। यह जातक को आध्यात्मिक जीवन, धार्मिक अनुशासन और स्वस्थ जीवन की ओर बढ़ाता हैं। वेदों में भी कर्णवेध संस्कार का धार्मिक महत्व **अल्प मात्रा में प्राप्त होता हैं। वैदिक साहित्य में देखने पर एवं** गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों तथा संहिता में स्पष्ट रूप से कर्णवेध संस्कार का उल्लेख प्राप्त होता हैं। यह संस्कार वैदिक संस्कृति में बालक को धार्मिक और आध्यात्मिक श्रवणशक्ति का पवित्रीकरण और जागरण वेदों में श्रवण (सुनना) को ज्ञानार्जन का प्रथम साधन माना गया है।

"श्रवणम्, मननम्, निदिध्यासनम्

उपनिषदों में यह ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया बताई गई है। इसलिए, कर्ण वेध को धार्मिक शास्त्रों, वेदों, उपनिषदों, और मंत्रों के श्रवण के लिए इंद्रिय की शुद्धि और तैयारी का प्रतीकात्मक संस्कार माना जाता हैं। शास्त्रों के अवलोकन के बाद कर्णवेध संस्कार का उल्लेख स्मृति ग्रंथों और गृह्यसूत्रों में भी प्राप्त होता हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र में वर्णन किया गया हैं। "षष्ठे मासे कर्ण वेधः" अर्थात् छठे महीने में बालक के कर्ण वेध का विधान शास्त्रों में किया गया हैं।

4.7 बोधायन गृह्यसूत्र के अनुसार संस्कार विचार

यह गृह्यसूत्र कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध है। इस गृह्यसूत्र में 13 संस्कारों का वर्णन प्राप्त होता हैं। आगे हम सभी बोधायन के मत में इन संस्कारों को समझते हैं।

1. **विवाह,**
2. **गर्भाधान,**
3. **पुंसवन,**
4. **सीमन्तोन्नयन,**
5. **जातकर्म,**
6. **नामकरण,**
7. **उपनिष्क्रमण**
8. **अन्नप्राशन,**
9. **चूडाकर्म,**
10. **कर्णवेध,**

11. **उपनयन,**
12. **समावर्तन,**
13. **पितृमेघ।**

इन 13 संस्कारों का प्रयोग दक्षिण भारत में किया जाता हैं जो बहुत ही प्रसिद्ध माने जाते हैं। कृष्णयजुर्वेदी जातकों के लिए ये संस्कार महत्वपूर्ण माना जाता हैं। उसी प्रकार आश्वलायन गृह्यसूत्र में वर्णित संस्कार ऋग्वेदीय शाखा वालों के लिए है, परन्तु उत्तरभारत में शुक्लयजुर्वेद की ही प्रधानता का महत्व हैं। पारस्करगृह्यसूत्र के अनुसार इन सभी संस्कारो का विधान सभी स्थानों पर होता है,परन्तु दक्षिण भारत में इन सभी त्रयोदश संस्कारो को महत्वपूर्ण मना जाता हैं l इन संस्कारों का वर्णन विभिन्न गृह्यसूत्रों में बताया गया हैंl वे सब सूत्रषैली में निबद्ध हैं। इनके विशेष नियम धर्मसूत्रों में भी प्राप्त होता हैंl

4.8 व्यक्तित्व निर्माण में संस्कार की भूमिका

अब हम यहां पर यह अध्ययन करेगें की क्या संस्कारों का व्यक्तित्व निर्माण मैं भूमिका होती हैं, इस प्रश्न का विस्तृत विवरण हमारे प्राचीन ग्रंथों मैं प्राप्त होता हैं जो कि संस्कार से संबंधित हैं। व्यक्तित्व निर्माण के लिए वातावरण की आवश्यकता होती हैं वह वातावरण हमें अपनें घर से ही प्राप्त होता हैं। मां, पिता के द्वारा दिया जाने वाला संस्कार ही संस्कृति का ज्ञान कराते हैं। संस्कार और संस्कृति में दोनों एक दूसरे के प्रति समान भाव रखते हैं। हमारी संस्कृति मैं संस्कारों का विशेष महत्व हैं, संस्कृति को बनाये रखनें के लिए नैतिक शिक्षा को संस्कार के माध्यम से प्राप्त किया जाता हैं। जिससे की व्यक्तित्व निर्माण मैं पूर्ण रुप से हो सके। व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्माण षोडश संस्कार के द्वारा संभव हो सकता हैं। इसलिए व्यक्तित्व निर्माण मैं संस्कार की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती हैं, जो शिक्षा से लेकर उच्च स्थानों तक पहुंचानें का कार्य संस्कारों के द्वारा किया जाता हैं।

4.9 कर्णवेध संस्कार में कर्मकांड की भूमिका एवं पूजन विधान

कर्णवेध संस्कार के बारे में आपने विधि पूर्वक अध्ययन किया होगा की विना किसी भी कर्मकांड के द्वारा या मंत्रो के द्वारा कर्णवेध संस्कार को संपन नही किया जा सकता हैंl क्युकी कर्णवेध संस्कार में कर्मकांड की अति महत्वपूर्ण भूमिका रहती हैं जिसके द्वारा कोई भी संस्कार सम्पन्न नही क्या जाता हैंl जो भी जातक इस भूमि में जन्म लेता है उस जातक को इन सभी षोडश संस्कार से होकर आगे बढ़ना होता हैंl क्योंकि इन सभी संस्कारों को करने के लिए कर्मकांड का सहयोग लेना ही पड़ता हैं

जिससे यह संस्कार विधि पूर्वक सम्पन्न किया जाता हैं। संस्कारों को सम्पन्न करने के लिए षोडशोपचार के द्वारा पूजन विधान दिया जा रहा हैं।

नित्य स्नान के बाद ,गणेश जी का षोडशो पचार के द्वारा पूजन करना चाहिए जो आगे दिया जा रहा है l

पाद्यं

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि . ॥

आचमन लेकर भगवान के पेरो में जल अर्पण करे

अर्घ्यं –

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥

हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि अर्घ्य का जल छोड़े।)

आचमनं

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥

मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी आचमनके लिये जल समर्पित करे ।)

स्नानीय जलं

ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।

पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥

स्नानीयं जलं समर्पयामि

वस्त्र

ॐ युवा सुवासा परिवीत आगात् स उश्रेयान् भवति जायमानः ।

तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो 3 मनसा देवयन्तः ।।

आभूषण

वज्रमाणिक्यवैदूर्यमुक्ताविद्रुममण्डितम् ।

पुष्परागसमायुक्तं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥

अलङ्करणार्थ आभूषणानि समर्पयामि

चन्दन-

त्वां गन्धर्वा अखनस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः ।

त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ।।

पुष्प-

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।

मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ।

ॐ ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवती: प्रसूवरी: ।

अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ।।

पुष्पं पुष्पमालां च समर्पयामि

धूपम्

ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयन्धूर्वामः ।

देवानामसि वह्नितम : सस्नितमं पप्रितम जुष्टतमं देवहूतमम् ॥

दीपम्

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वच ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।। ज्योतिःसूर्य: सूर्यो ज्योति: स्वाहा ।।

नैवेद्यम्-

नैवेद्य को प्रोक्षित कर गन्ध पुष्प से आच्छादित करें। तदन्तर जल चतुष्कोण घेरा लगाकर भगवान को नेवेद्य का भोग लगाये

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष गुं शीष्णोर्द्यो: समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ2 अकल्पयन्।।

ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा। ॐ प्राणाय स्वाहा । ॐ अपानाय स्वाहा । ॐ समानाय स्वाहा । ॐ उदानाय स्वाहा । ॐ व्यानाय स्वाहा । ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा।

आचमनं –

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥

मुखे आचमनीयं जलं समर्पयामी1

ताम्बूल –

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तो ऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शब्द्धविः ॥ .

एलालवङ्गपूगीफलयुतं ताम्बूलं समर्पयामि। (इलायची, लवंग तथा पूगीफलयुक्त ताम्बूल अर्पित करे।

स्तवपाठ-

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।

नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते॥

तर्पणं – भगवान की स्तुति के बाद जल के द्वारा तर्पण करना चाहिये।

नमस्कार: –

नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे।

साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः॥

नमस्कारान् समर्पयामि।

4.10 सारांश

आप सभी ने बी.ए कर्मकांड के अंतर्गत कर्णवेध संस्कार के बारे मैं अध्ययन किया होगा। भारतीय सनातन संस्कृति मैं शास्त्रीय ग्रंथों तथा वेदों से लेकर पुराणों मैं षोडश संस्कारों को ही विशेष रूप से महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हैं। उन षोडश संस्कारों मैं से एक कर्णवेध संस्कार भी है जिसका उल्लेख इस ईकाई के अंतर्गत किया गया हैं। शास्त्रों मैं अध्ययन करनें के पश्चात् अन्य आचार्यों के मत मैं अलग अलगअलग संस्कारों की संख्या बताई गयी हैं। आचार्य बोद्धायन ने 13-, प्रकार, स्मृति शास्त्रों मैं प्रकार48,पाराशर गृह्यसूत्र मैं 13, आश्वालायन गृह्य सूत्र मैं 10, वैखानस गृह्यसूत्र मैं 18, व्यास स्मृति मैं संस्कारों का उल्लेख प्राप्त होता हैं। इन सभी आचार्यों के अनुसार विभिन्न विभिन्न संस्कारों के 16 । कर्णवेध संस्कार को वैज्ञानिक विधि से देखें तो इसका महत्त्व को विस्तार पूर्वक समझाया गया हैं वैज्ञानिक कारण भी हैं। संस्कारों तथा संस्कृतियों को मनुष्य जीवन मैं बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं और आज भी दिखाई पड़ता हैं। सम् उपसर्ग पूर्वक व्याकरण की दृष्टि से भी संस्कारों को और भी पवित्र तथा शुद्ध यानि जिसमें कोई भी त्रुटि न हो उसके लिए व्याकरण के माध्यम से संस्कारों को ज्ञात किया जाता हैं। जो जी वन को पवित्र एवं शुद्ध बनाता हैं।हम सभी षोडश संस्कार के अंतर्गत कर्णवेध संस्कार से पूरी तरह परिचित हो गये होंगे।

4.11 पारिभाषिक शब्दावली

1. **संस्कार** दोष का परिमार्जन करना
2. **मोक्ष** कैवल्य की प्राप्ति

3. वेध कान का छेदन
4. इषु पंचमी तिथि
5. त्रिलवक त्रि नवांश
6. त्रिकोण पांच,नो, स्थान
7. जीव वृहस्पति
8. ज्ञ बुध
9. यश ख्याति
10. मन्द ग्रह शनि
11. त्री तिथि तृतीया
12. आद्य प्रतिपदा

4.12 अभ्यास प्रश्न

1. कर्णवेध क्या हैं। यह षोडश संस्कार मैं एक संस्कार हैं
2. सप्तम स्थान कोन सा स्थान कहां जाता हैं। केन्द्र स्थान
3. त्रित्रिकोण किसे कहा जाता हैं। प्रथम,पंचम,नवम,भाव को
4. अष्टम स्थान कब शुद्ध माना जाता हैं। जब अष्टम भाव मैं कोई भी ग्रह न हो।
5. जन्म महीने मैं कोन सा कर्म नहीं करना चाहिए। क्षौर कर्म
6. कर्ण वेध मैं किसकी शुद्धि होती हैं। लग्न की शुद्धि
7. कर्णवेध किस माह मैं करना चाहिए। मार्गशीर्ष,माघ, इत्यादि मासों मैं करना शुभ हैं।
8. संस्कारों की संख्या हैं। 16
9. गर्भाधान संस्कार किसे कहते हैं।
   जब बालक गर्भ मैं ही रहता हैं।
10. उपनयन क्या हैं। उपनयन एक संस्कार हैं। जिसे धारण करने से दूसरा जन्म प्राप्त होता हैं।
11. बौधायन कितने संस्कारों का वर्णन करते हैं। तेरह
12. संस्कार किसके द्वारा संपन्न किया जाता हैं। कर्मकांड के द्वारा
13. कर्णवेध संस्कार का पूजन किन मंत्रों से शुभ माना जाता हैं। वैदिक मंत्रों से

4.13 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. यह षोडश संस्कार मैं एक संस्कार हैं।

2. केन्द्र स्थान
3. प्रथम,पंचम,नवम,भाव को
4. जब अष्टम भाव मैं कोई भी ग्रह न हो।
5. क्षौर कर्म।
6. लग्न की शुद्धि ।
7. मार्गशीर्ष,माघ, इत्यादि मासों मैं करना शुभ हैं।
8. 16
9. जब बालक गर्भ मैं ही रहता हैं।
10. उपनयन एक संस्कार हैं। जिसे धारण करने से दूसरा जन्म प्राप्त होता हैं।
11. तेरह
12. कर्मकांड के द्वारा
13. वैदिक मंत्रों से

4.14 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मुहूर्त चिंतामणि, श्रीरामाचार्य विरचित
2. नारदज्योतिषसंहिता, नारद मुनि
3. मुहूर्त मार्तण्ड, नारायण दैवज्ञ
4. वृहद्दैवज्ञरंजन
5. संस्कार एवं शान्ति रहस्य
6. शांति विधानं

4.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. कर्णवेध संस्कार का सविस्तार पूर्वक उल्लेख कीजिए।
2. संस्कार का अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट कीजिए।
3. बोधायन गृह्य सूत्र के अनुसार संस्कार का वर्णन कीजिए।
4. कर्णवेध संस्कार मैं कर्मकांड की भूमिका का वर्णन कीजिए।
5. व्यक्तित्व निर्माण में संस्कार की भूमिका पर प्रकाश डालिए ।

खण्ड – 3

अन्य संस्कार

इकाई – 1 अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 विद्यारम्भ संस्कार का परिचय

1.4 उपनयन संस्कार का परिचय

बोध प्रश्न

1.5 सारांश

1.6 बोधप्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई BAKA(N) – 330, खण्ड 3 के इकाई प्रथम के **अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन** से सम्बन्धित है। भारतीय संस्कृति में जीवन को शैशव से लेकर वृद्धावस्था तक संस्कारों की श्रृंखला से संयोजित किया गया है। इन संस्कारों का उद्देश्य केवल धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न करना नहीं है, बल्कि मानव जीवन को शुद्ध, अनुशासित, और संस्कारित बनाना है। सोलह संस्कारों की इस परंपरा में शिक्षा-संस्कार विशेष महत्त्व रखते हैं क्योंकि शिक्षा को ही जीवन का आलोक और ज्ञान को ही मोक्ष का साधन माना गया है। विद्यारम्भ संस्कार और उपनयन संस्कार इसी शिक्षा-परंपरा के दो महत्वपूर्ण सोपान हैं, जिनके माध्यम से व्यक्ति न केवल अध्ययन की औपचारिक यात्रा प्रारंभ करता है, बल्कि समाज में अपने कर्तव्यों, आचार और उत्तरदायित्वों की ओर भी अग्रसर होता है।

विद्यारम्भ संस्कार बालक के जीवन में प्रथम बार अक्षरज्ञान की प्रक्रिया का शुभारम्भ करता है। इसे शिक्षा के द्वार का उद्घाटन कहा गया है, जहाँ बालक लेखन-पठन की विधिवत शुरुआत करता है और माता-पिता तथा आचार्य की उपस्थिति में ज्ञान को देवत्व के रूप में ग्रहण करता है। अथर्ववेद और स्मृतियों में वर्णित है कि शिक्षा के प्रारम्भ के समय विशेष देवताओं की स्तुति, मंत्रोच्चारण और आचार्य के आशीर्वाद द्वारा शिशु के भीतर ज्ञान की शक्ति का बीज रोपा जाता है। इस प्रकार विद्यारम्भ संस्कार शिक्षा-जीवन का आरंभिक आधार है।

दूसरी ओर, उपनयन संस्कार को शिक्षा का वास्तविक और औपचारिक प्रवेश-द्वार कहा गया है। इसे "द्विजत्व" की संज्ञा दी जाती है, जिसके माध्यम से बालक को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त होता है। उपनयन संस्कार केवल शिक्षा की शुरुआत नहीं है, बल्कि यह अनुशासन, संयम और ब्रह्मचर्य के पालन का भी संस्कार है। याज्ञवल्क्य स्मृति और मनुस्मृति में स्पष्ट उल्लेख है कि उपनयन से बालक आचार्य के संरक्षण में रहकर वेद-विज्ञान का अध्ययन करता है और समाज के प्रति उत्तरदायी बनता है। यह संस्कार शिक्षा को केवल लौकिक न रखकर अलौकिक दृष्टि भी प्रदान करता है, जिससे ज्ञान को आत्मिक और नैतिक उन्नति का साधन माना जाता है।

इस प्रकार विद्यारम्भ और उपनयन संस्कार शिक्षा-यात्रा के दो क्रमिक चरण हैं। एक ओर जहाँ विद्यारम्भ संस्कार बालक को अक्षरज्ञान से जोड़ता है, वहीं उपनयन संस्कार उसे विधिवत् अध्ययन और अनुशासन की दीक्षा प्रदान करता है। दोनों संस्कार मिलकर शिक्षा के सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक आयामों को प्रकट करते हैं और भारतीय जीवन-दर्शन में ज्ञान के महत्व को रेखांकित करते हैं। अतः इस इकाई में इन दोनों संस्कारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, शास्त्रीय प्रमाण, विधि-विधान और

सामाजिक महत्व का अध्ययन करना आवश्यक है ताकि यह समझा जा सके कि भारतीय शिक्षा-दर्शन केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन-परिष्कार और समाज-निर्माण का भी साधन है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि

- ❖ विद्यारम्भ किसे कहते हैं।
- ❖ उपनयन किसे कहते हैं।
- ❖ संस्कारों का मानव जीवन में क्या योगदान हैं।
- ❖ विद्यारम्भ , उपयनन संस्कार की उपयोगिता क्या हैं।
- ❖ संस्कारों के आधार पर क्या- क्या प्राप्त किया जा सकता है।

1.3 विद्यारम्भ संस्कार

भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कारों की परंपरा जीवन को शुद्ध, अनुशासित और आध्यात्मिक रूप से उन्नत बनाने के लिए स्थापित की गई है। इन संस्कारों में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्कार है विद्यारम्भ संस्कार, जिसे शिक्षा का प्रथम द्वार कहा जाता है। इस संस्कार के माध्यम से बालक औपचारिक रूप से शिक्षा से जुड़ता है और ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। "विद्या" का अर्थ है ज्ञान और "आरम्भ" का अर्थ है प्रारंभ, अतः विद्यारम्भ संस्कार का तात्पर्य हुआ – बालक का शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश। यह संस्कार केवल पठन-पाठन का आरंभ ही नहीं, बल्कि व्यक्ति को ज्ञान, आचार और संस्कृति से जोड़ने का एक आध्यात्मिक और सामाजिक संकल्प है।

धर्मशास्त्रकारों ने विद्यारम्भ संस्कार को ब्रह्मचर्य जीवन की भूमिका के रूप में माना है। याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णन है कि बालक को पाँचवें वर्ष में अक्षर-ज्ञान कराया जाना चाहिए। वहीं पराशर स्मृति में भी इसे अनिवार्य संस्कारों में गिना गया है। विद्यारम्भ के समय बालक को अक्षर लिखने के लिए चावल की थाली, कलम अथवा धातु-पट्टिका दी जाती है और सबसे पहले उसे "ॐ" लिखवाया जाता है। यह प्रतीकात्मक अक्षर केवल लेखन का प्रारंभ नहीं है, बल्कि यह ब्रह्मज्ञान और ईश्वर के प्रति समर्पण का भी सूचक है।

विद्यारम्भ संस्कार में प्रायः आचार्य या विद्वान पंडित की उपस्थिति आवश्यक होती है।

संस्कार का आरंभ मंगलाचरण और देवी सरस्वती की पूजा से किया जाता है। बालक को गोद में बैठाकर माता-पिता गुरु के निर्देशन में शिक्षा का संकल्प कराते हैं। सबसे पहले सरस्वती वंदना या गायत्री मंत्र का उच्चारण कराया जाता है, फिर बालक को अक्षर लिखवाया जाता है। प्राचीन काल में शिक्षा की शुरुआत प्रायः "अ" या "ॐ" से होती थी, क्योंकि ये ध्वनियाँ आद्य और पवित्र मानी जाती हैं। धीरे-धीरे बालक को अन्य अक्षरों का ज्ञान दिया जाता है।

विद्यारम्भ संस्कार का सामाजिक महत्व भी गहरा है। यह संस्कार बालक को यह बोध कराता है कि शिक्षा केवल व्यक्तिगत उन्नति के लिए नहीं, बल्कि समाज और संस्कृति के संरक्षण के लिए भी है। जब एक बालक शिक्षा पाता है तो वह ज्ञान और विवेक से समाज का कल्याण कर सकता है। इसीलिए प्राचीन भारत में शिक्षा को "साधना" कहा गया, जो केवल जीविका अर्जन का साधन नहीं बल्कि आत्मा की उन्नति और समाज की सेवा का मार्ग है।

प्राचीन काल में शिक्षा केवल गुरु के संरक्षण में दी जाती थी। इसीलिए विद्यारम्भ संस्कार से लेकर उपनयन संस्कार तक बालक को गुरु-शिष्य परंपरा में प्रवेश दिलाया जाता था। विद्यारम्भ संस्कार उस परंपरा की नींव है, जिसमें बालक धीरे-धीरे ज्ञान के आचार्यों के मार्गदर्शन में उच्च स्तर तक पहुँचता है।

अक्षरारम्भ संस्कार की महिमा -

अक्षराम्भ संस्कार क्षर (जीव) - का अक्षर (परमात्मा) - से सम्बन्ध कराने वाला संस्कार है, इस दृष्टि से इस संस्कार की मानव-जीवन में महती भूमिका है। गीता में स्वयं भगवान् अक्षर की महिमा बताते हुए कहते हैं कि अक्षरों में 'अ' कार मैं ही हूँ – अक्षराणामकारोऽस्मि । इसी प्रकार 'गिरामस्म्येकमक्षरम्' कहकर उन्होंने अपने को ओंकार अक्षर बताया है। इतना ही नहीं उन्होंने अक्षरकी महिमाका ख्यापन करते हुए कहा—' अक्षरं ब्रह्म परमं' अर्थात् परम अक्षर ही परम ब्रह्म परमात्मा है, जो ओंकार - पदसे अभिव्यक्त है - 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ।' इसीलिये पाटीपूजन में प्रारम्भ में 'ॐ नमः सिद्धम्' लिखाया जाता है । इस अक्षरारम्भसंस्कारको ही लोकमें विद्यारम्भसंस्कार और 'पाटीपूजन' आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है।

विद्यारम्भ संस्कार बालक के मन में यह संस्कार अंकित करता है कि जीवन में ज्ञान से बड़ी कोई संपत्ति नहीं है। यह संस्कार जीवन को उस दिशा में मोड़ देता है जहाँ से मनुष्य सदाचार, विवेक और प्रज्ञा की ओर अग्रसर होता है। यही कारण है कि प्राचीन काल से आज तक यह संस्कार शिक्षा की औपचारिक

शुरुआत का पवित्र पर्व माना जाता है।

प्रत्येक शुभ कर्मके पहले जैसे आदिपूज्य गणेशजी के पूजन का विधान है, वैसे ही इस अक्षरारम्भ या विद्यारम्भसंस्कारके श्रीगणेश में भी गणेशजी के ध्यान - पूजनका विधान है। श्रीगणेशद्वादशनामस्तोत्र की फलश्रुति में विद्यारम्भ संस्कार की चर्चा आयी है, जिसमें कहा गया है कि श्रीगणेशजीके द्वादश नामोंका स्मरण करनेसे विद्यारम्भ, विवाहादि संस्कारोंमें कोई विघ्न नहीं आते-

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।

संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥

इस प्रकार अक्षरारम्भ या विद्यारम्भसंस्कार मानव जीवनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार है, इसकी प्रयोगविधि आगे दी जा रही है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विद्यारम्भ संस्कार केवल अक्षरज्ञान नहीं, बल्कि जीवन के उच्चतर आदर्शों की ओर एक प्रेरणा है। यह संस्कार मनुष्य को यह सिखाता है कि विद्या से ही मनुष्य का उत्थान संभव है और विद्या ही वह शक्ति है जो समाज, संस्कृति और राष्ट्र को महान बनाती है। इसलिए इस संस्कार को केवल पारंपरिक अनुष्ठान न मानकर आत्मिक और सामाजिक उन्नति का आरंभ समझना चाहिए।

अक्षराम्भ मुहूर्त

गणेशविष्णुवाग्रमाः प्रपूज्य पञ्चमाब्द के
तिथौ शिवार्कदिद्विषट्शरत्रिके रवावुदक् ।
लघुश्रवोऽनिलान्त्यभादितीशतक्षमित्रभे
चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रहः सतां दिने ॥

जन्म से (उपलक्षण से गर्भाधान से) पाँचवें वर्ष में उत्तरायण सूर्य में (चैत्र को छोड़कर, १४ जनवरी से १४ मार्च तक तथा १४ अप्रैल से १७ जुलाई के भीतर) ११/१२/१०/ २।६।५।३ इन ७ तिथियों में, लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा तथा अनुराधा इन १० नक्षत्रों में चर (१।४।७।१०) राशियों को छोड़कर अन्य शुभ राशियों (२।३।९।१२) के लग्न में एवं शुभ (चं., बु., वृ., शु.) वारों में श्रीगणेश, विष्णु, सरस्वती तथा लक्ष्मी की विधिवत् षोडशोपचार से पूजन करके बालक को लिपिग्रहण (अक्षरारम्भ) कराना उत्तम होता है । (लग्न से

अष्टम शुद्ध हो, कुम्भ का नवांश न हो, ७।१०वें स्थान में बु., बृ., शु. हो तथा लग्न बली हो तो अक्षरारम्भ उत्तम होता है) ॥

विद्यारम्भ मुहूर्त

मृगात्कराच्छ्रुते स्त्रयेऽश्विमूलपूर्विकात्रये
गुरुद्वयेऽर्क जीववित्सितेऽह्नि षट्शरत्रिके ।
शिवार्कदिद्विके तिथौ ध्रुवान्त्यमित्रभे परैः
शुभैरधीतिरुत्तमा त्रिकोण केन्द्रगैः स्मृता ॥

मृगशिरा से तीन (मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु), हस्त से तीन (हस्त, चित्रा, स्वाती), श्रवण से तीन (श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा), अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा (पूर्वाफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा), पुष्य एवं आश्लेषा इन १६ नक्षत्रों में, रवि, बुध, बृहस्पति एवं शुक्र के वारों में, ६।५।६।३।११।१२।१०।२ इन ७ तिथियों में तथा केन्द्र और त्रिकोण (१।४।७।१०।५।९) में शुभ ग्रहों (च., बु., बृ., शु.) के रहने पर विद्यारम्भ उत्तम होता है। यहाँ भी लग्न से ८वाँ स्थान शुद्ध हो, उपचय (३।६।१०।११) में पापग्रह हो तो विद्यारम्भ उत्तम होता है।

1.4 उपनयन संस्कार

भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कारों का विशेष महत्व है। इनमें उपनयन संस्कार को शिक्षा और ब्रह्मचर्य जीवन का प्रवेश-द्वार माना गया है। यह संस्कार विशेषकर वैदिक काल से ही वेदाध्ययन की औपचारिक दीक्षा के रूप में प्रचलित है। "उपनयन" शब्द का अर्थ है – "आचार्य के समीप ले जाना।" इस संस्कार के बाद बालक को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त होता है और वह **"द्विज"** अर्थात् द्वितीय जन्म वाला कहलाता है। 'उपनयन' शब्द 'उप' उपसर्गपूर्वक 'नी' धातुसे 'ल्यु' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। उप अर्थात् आचार्य के समीप नयन अर्थात् बालक को विद्याध्ययन के लिये ले जानेको 'उपनयन' कहते हैं। बालक के पिता आदि अपने पुत्रादिकों विद्याध्ययनार्थ आचार्य के पास ले जायँ, यही उपनयन शब्दका अर्थ है। बालक में यह योग्यता आ जाय इसलिये विशेष- विशेष कर्मद्वारा उसे संस्कृत किया जाता है, उसे संस्कृत करने का संस्कार ही उपनयन या यज्ञोपवीत - संस्कार है। इसीका नाम व्रतबन्ध भी है। इसमें यज्ञोपवीत धारणकर बालक विशेष - विशेष व्रतों में उपनिबद्ध हो जाता है। द्विजोंका जीवन व्रतमय होता है, जिसका प्रारम्भ इसी व्रतबन्ध – संस्कार से होता है। इस व्रतबन्ध से

बालक दीर्घायु, बली और तेजस्वी होता है - 'यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे '(कौषीतकि ब्राह्मण) ।

संस्कारों में षोडश संस्कार मुख्य माने गये हैं, उनमें भी उपनयन की ही सर्वोपरि महत्ता है। उपनयनके बिना बालक किसी भी श्रौत - स्मार्त कर्मका अधिकारी नहीं होता । न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात्' (मनुस्मृ० २ । १७१) । यह योग्यता उपनयन-संस्कारके अनन्तर यज्ञोपवीत धारण करनेपर ही प्राप्त होती है। उपनयनके बिना देवकार्य और पितृकार्य नहीं किये जा सकते और श्रौत - स्मार्त-कर्मों में तथा विवाह, सन्ध्या, तर्पण आदि कर्मों में भी उसका अधिकार नहीं रहता। उपनयन - संस्कारसे ही द्विजत्व प्राप्त होता है। उपनयन संस्कारमें समन्त्रक एवं संस्कारित यज्ञोपवीत- धारण तथा गायत्री-मन्त्रका उपदेश - ये दो प्रधान कर्म होते हैं, शेष कर्म अंगभूत कर्म हैं। उपनयनका अधिकार केवल द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) - को है। प्रथम माता के गर्भसे उत्पत्ति तथा द्वितीय जन्म मौंजीबन्धन- उपनयनसंस्कारद्वारा होने से ब्राह्मण-क्षत्रिय – वैश्यों की द्विज संज्ञा है-

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः ॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति १ । ३९)

शंखस्मृति (१ । ६) - में कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य–इन तीन वर्णोंको द्विज कहते हैं, इनका दूसरा जन्म यज्ञोपवीत- संस्कारसे होता है—

ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं मौञ्जिबन्धनात् ॥

मौंजीबन्धन-संस्कारके अनन्तर द्वितीय जन्म होनेपर उनका पिता आचार्य होता है और माता गायत्री होती है-

आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा ।
ब्रह्मक्षत्रविशाञ्चैव मौञ्जिबन्धनजन्मनि ॥ (शंखस्मृति १। ७)
तत्र यद् ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते॥ (मनुस्मृति २ । १७०)

ब्रह्मपुराणमें कहा गया है कि ब्राह्मण माता - पिताके सविधि विवाहके अनन्तर उत्पन्न बालक ब्राह्मण है, जब उस बटुका ५ से ८ वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत संस्कार होता है तब वह द्विज (द्विजन्मा) कहा जाता है और वह वेदाध्ययन तथा यज्ञाग्निरूप धर्मकार्य आदि करनेका अधिकारी होता है।

वेदज्ञान प्राप्त करनेसे 'विप्र' तथा ये तीनों बातें होनेसे वह ' श्रोत्रिय' कहलाता है-

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।
विद्यया वापि विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ॥

इसीलिये द्विजोंका दो बार जन्म होता है और दो बार जन्म होने से ही द्विजसंज्ञा सार्थक होती है- 'द्विधा जन्म । जन्मना विद्यया च।' तैत्तिरीय संहिताने बताया है कि मनुष्य तीन ऋणोंको लेकर जन्म लेता है - १ - ऋषि ऋण, २- देव ऋण तथा ३ - पितृ ऋण । इन तीन ऋणोंसे मुक्ति बिना यज्ञोपवीत - संस्कार हुए सम्पन्न नहीं होती। मनुष्य यज्ञोपवीत-संस्कारके अनन्तर विहित ब्रह्मचर्यव्रतका पालनकर ऋषियोंके ऋणसे मुक्त होता है, यजन-पूजन आदिके द्वारा देव-ऋणसे मुक्त होता है और गृहस्थधर्मके पालनपूर्वक सन्तानोत्पत्तिसे पितृ ऋणसे उऋण होता है । यदि यज्ञोपवीत संस्कार न हो तो इन तीनों कर्मोंको करने का उसका अधिकार नहीं रहता, अतः यज्ञोपवीत - संस्कारका बहुत महत्त्व है। इस संस्कारमें मौंजीमेखलाधारण करनेके कारण इसे मौंजीबन्धन संस्कार भी कहते हैं। यह संस्कार उसके ब्रह्मचर्यव्रत और विद्याध्ययनका प्रतीक है।

उपनयन का समय

उपनयन संस्कार में मुख्य कर्म यज्ञोपवीत का धारण करना है । यज्ञोपवीत का धारण करना गृह्यसूत्रों के अनुसार ब्राह्मण-बालक का आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का ग्यारहवें तथा वैश्य का बारहवें वर्ष में- अष्टमे वर्षे ब्राह्मणं उपनयेत्, एकादशे क्षत्रियम्, द्वादशे वैश्यम् - यह विधान है। जिसका इन वर्षों में उपनयन संस्कार नहीं होता था उसे पतित माना जाता था-' अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति' ।

आचार्य पारस्करने ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य बालक के लिये क्रमसे जन्मसे अथवा गर्भ से आठ, ग्यारह और बारह वर्ष उपनयन का मुख्य काल बताया है - 'अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद् गर्भाष्टमे वा। एकादशवर्षं राजन्यम् । द्वादशवर्षं वैश्यम्' (पारस्करगृह्यसूत्र २।२।१-३) । यही समय मनुस्मृति (२। ३६) - में भी निर्धारित किया गया है-

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।

गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥

उपनयनका गौणकाल-

किसी कारणवश मुख्यकाल में यज्ञोपवीत-संस्कार न हो सका हो तो ब्राह्मण बालक का

सोलह, क्षत्रिय बालक का बाईस तथा वैश्य बालक का चौबीस वर्ष तक उपनयन संस्कार हो जाना चाहिये, यह उपनयनकालकी चरमावधि है-

आषोडशाद्वर्षाद् ब्राह्मणस्यानतीतः कालो भवति ।
आद्वाविंशाद्राजन्यस्य आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य ॥ (पा०गृ०सू० २।५ । ३६–३८)
आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ (मनु०)

यज्ञोपवीत या उपनयन संस्कार का इतना महत्त्व है कि जिनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता उनका विवाह से पहले नाममात्र का यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया जाता है ताकि यह न कहा जा सके कि इनका यह संस्कार नहीं हुआ। क्योंकि प्राचीनकाल में वाराणसी वैदिक-संस्कृति तथा वैदिक ज्ञान का केन्द्र थी और प्रायः बालक वहीं शिक्षा–ग्रहण के लिये जाया करते थे, इसलिये उन यादों को ताजा बनाये रखने के लिये विवाह के समय भी उपनयन-संस्कार करके कदम वाराणसी की तरफ चलने को कहा जाता है जो वहाँ जाकर वेदारम्भ करने की स्मृति दिलाता है।

उपनयन के बाद बालक 'द्विज' कहलाता है

'द्विज' का अर्थ है—जिसका दूसरा जन्म हो। माता-पिता से तो पहला जन्म होता है, परन्तु इस जन्म के बाद जब बालक संस्कृति की भट्टी में पड़ कर नवीन- मानव होने की प्रक्रिया में पड़ जाता है, तब उसे बालक का दूसरा जन्म कहा जाता है। मनुस्मृति में कहा है—'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते'-जन्म से तो सभी शूद्र पैदा होते हैं, संस्कारों से ही मनुष्य 'द्विज' बनता है। संस्कारों के बिना मनुष्य मनुष्य नहीं बन सकता। क्या हम देखते नहीं कि आयुर्वेद में संखिया जैसे विष को संस्कारों की भावना देकर मृततुल्य बना दिया जाता है, जंगली खूंखार शेर को संस्कारों द्वारा बकरी के साथ एक घाट पानी पिला दिया जाता है। उपनयन संस्कार का अभिप्राय यह है कि अब तक माता-पिता अपने परिश्रम से बालके के जीवन पर ऐसे संस्कार डाल रहे थे जिनसे वह इस जन्म के संस्कारों के कारण नव-मानव बन सके, अब वे उसे आचार्य के पास लानेका श्रीगणेश करने वाले हैं, जिससे आचार्य, जिसका काम ही बच्चों को नया जीवन देना है, उन्हें नये साँचे में ढालना है, बच्चे के जीवन को उसकी प्रवृत्तियों के अनुसार एक नई दिशा दे सके।

यज्ञोपवीत का महत्त्व

यज्ञोपवीत में तीन सूत्र होते हैं, जो क्रमशः तीन ऋणों के सूचक हैं- (क) ऋषिऋण, (ख)

पितृऋण तथा (ग) देवऋण। प्रथम ऋण ब्रह्मचर्य धारण कर वेद-विद्या के अध्ययन से, द्वितीय ऋण धर्मपूर्वक गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सन्तानोत्पत्ति से तथा तृतीय ऋण गृहस्थ का त्याग कर देश सेवा के लिये अपने को तय्यार करने से निवृत्त होते हैं, इसीलिये ये तीनों ऋण ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ - इन तीन आश्रमों के सूचक हैं। यही कारण है कि जब व्यक्ति इन तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है, तीनों आश्रमों को लाँघ जाता है, तब इस सूत्र को विधान के अनुसार यज्ञ की अग्नि में डाल देता है, फिर इसे धारण नहीं करता और-संन्यास आश्रम में प्रविष्ट हो जाता है। ये तीनों ऋण जिनसे उऋण होना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है, क्या हैं ?

(१) ऋषि ऋण - समाज में ऋषि लोगों ने ज्ञान-विज्ञान का परिचय प्राप्त कर हमें ज्ञान दिया। अगर उनके पास ज्ञान न होता, तो हम निरे मूर्ख-के-मूर्ख रह जाते। जैसे उन लोगों ने ज्ञान प्राप्त कर उस ज्ञान को हम तक पहुँचाया, वैसे हम भी ज्ञान प्राप्त कर समाज में आगे-आगे ज्ञान गंगा के बहते रहने का प्रबन्ध करें- इस बात को यज्ञोपवीत का एक सूत्र हमें याद दिलाता रहता है। जब हम ज्ञान प्राप्त कर रहे होते हैं तब ऋषियों द्वारा हम पर छोड़े गये ऋण की याद कर रहे होते हैं। यह कार्य ब्रह्मचर्याश्रम में ही होता है इसलिये ब्रह्मचर्याश्रम हमें ऋषि ऋण से उऋण होने की याद दिलाता है।

(२) पितृ ऋण - हमारे माता-पिता ने ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया और हमें उत्पन्न किया। अगर वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश न करते, तब हमारा जन्म कैसे होता। इसी प्रकार हम ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त कर युवावस्था में गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर समाज को उत्तम सन्तति प्रदान करें, जिससे समाज का पिता से पुत्र, पुत्र से प्रपौत्र - इस प्रकार का सिलसिला बँधा रहे। जब हम ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर रहे होते हैं, तब अपने माता-पिता द्वारा हम पर छोड़े गये पितृ-ऋण की याद कर रहे होते हैं। यह कार्य गृहस्थाश्रम में ही होता है, इसलिये यज्ञोपवीत का दूसरा सूत्र हमें गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर पितृ ऋण से उऋण होने की याद दिलाता है।

(३) देव ऋण-आश्रम-जीवन का मुख्य उद्देश्य सकामता से निष्कामता की तरफ अग्रसर होना है। हम संसार के काम-धंधों में इतने फँसे रहते हैं कि उनका मोह हमें बाँधे रखता है। अन्त में सब मोह-माया ने छूटना है, हमारे देश तथा समाज के बड़ों ने जीवन में प्रवेश कर उसके बन्धनों को छिन्न-भिन्न कर उसमें से निकलने तथा अपने को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न किया, उन्होंने गृहस्थ में प्रवेश कर गृहस्थ को छोड़ा, वानप्रस्थ आश्रम में पग धरा। इसी प्रकार गृहस्थाश्रम को समाप्त कर हम समाज के भले, उसकी सेवा के लिये वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करें, गृहस्थ में ही न धंसे रहें, इस बात को याद दिलाने के

लिये यज्ञोपवीत का तीसरा सूत्र हमें समाज के दिव्य पुरुषों द्वारा हम पर छोड़े गये ऋण की तरफ इंगित करता रहता है।

बोध प्रश्न-

1. उपनयन संस्कार के पश्चात् बालक को क्या कहा जाता है?

क. यति ख. द्विज ग. साधक घ. ऋषि

2. गौतम मतानुसार संस्कारों की संख्या है -

क. १६ ख. ४० ग. १३ घ. २५

3 उपनयन संस्कार से सम्बद्ध प्रमुख मन्त्र कौन-सा है?
क) पुरुषसूक्त ख) ऋग्वेद का नासदीय सूक्त

ग) गायत्री मन्त्र घ) शांति मन्त्र

4 विद्यारम्भ संस्कार सामान्यतः किस आयु में कराया जाता है?
क) जन्म के तुरंत बाद
ख) पाँच वर्ष की आयु में
ग) विवाह के समय
घ) उपनयन संस्कार के साथ

5 विद्यारम्भ संस्कार के समय बालक को सामान्यतः क्या लिखाया जाता है?
क) ओम् या अक्षर 'अ'
ख) वेद-मन्त्र
ग) यज्ञोपवीत मन्त्र
घ) गायत्री मन्त्र

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि भारतीय वैदिक सनातन परम्परा अथवा मानव धर्म की संस्कृति 'संस्कारों' पर ही आधारित है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने मानव

जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिए अथवा उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए ही संस्कारों का निर्माण किया था। मानव जीवन में इसका महत्व धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु वैज्ञानिक दृष्टि से भी है। सम्प्रति भारतीय संस्कृति को अविच्छिन्न बनाये रखने में संस्कारों का अद्वितीय योगदान है। भारतीय संस्कार परंपरा में शिक्षा को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सोलह संस्कारों में विद्यारम्भ और उपनयन संस्कार ऐसे दो चरण हैं जो बालक के बौद्धिक एवं सांस्कृतिक जीवन की नींव रखते हैं। विद्यारम्भ संस्कार बालक को प्रथम बार अक्षरज्ञान से जोड़ता है। यह केवल शैक्षिक शुरुआत ही नहीं है, बल्कि ज्ञान को ईश्वरीय तत्व मानकर उसे आदरपूर्वक ग्रहण करने की प्रक्रिया भी है। इस संस्कार के द्वारा बालक के जीवन में अध्ययन के प्रति उत्साह, श्रद्धा और पवित्र दृष्टिकोण का विकास होता है।

उपनयन संस्कार शिक्षा का दूसरा और अधिक गंभीर आयाम प्रस्तुत करता है। इसे वेदाध्ययन का प्रवेशद्वार माना गया है। उपनयन से बालक "द्विज" कहलाता है और वह आचार्य के संरक्षण में अध्ययन, संयम और अनुशासन का अभ्यास करता है। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन द्वारा वह केवल लौकिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि आत्मिक और नैतिक मूल्यों से भी समृद्ध होता है। इस प्रकार उपनयन संस्कार शिक्षा को जीवन-दर्शन और समाज-दर्शन से जोड़ता है।

इन दोनों संस्कारों का संयुक्त अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय परंपरा में शिक्षा का तात्पर्य केवल बौद्धिक विकास नहीं है, बल्कि यह चरित्र-निर्माण, आत्म-संयम, और सामाजिक उत्तरदायित्व का भी साधन है। विद्यारम्भ संस्कार जहाँ बालक को ज्ञान के पथ पर आरंभ कराता है, वहीं उपनयन संस्कार उसे अनुशासित और जिम्मेदार शिक्षार्थी बनाता है। दोनों संस्कार मिलकर भारतीय शिक्षा-दर्शन की उस व्यापक दृष्टि को प्रकट करते हैं जिसमें ज्ञान, आचरण और साधना का सुंदर समन्वय है।

1. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क 2. ख 3. ग 4. ख

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि - मूल लेखक- रामदैवज्ञ, टीका - प्रोफेसर रामचन्द्रपाण्डेयः

2. मुहूर्त्तपारिजात - पं. सोहन लाल व्यास

3. हिन्दू संस्कार पद्धति – डॉ0 राजबलि पाण्डेय

4. वीरमित्रोदय - आचार्य नारायण

5. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित

5. षोडश संस्कार पद्धति

6 संस्कार प्रकाश – गीताप्रेस

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1 उपनयन संस्कार और वेदारम्भ संस्कार के आपसी संबंध को स्पष्ट कीजिए।

2. संस्कारों के महत्व पर प्रकाश डालिये।

3. संस्कारों की उपयोगिता पर निबन्ध लिखिये ।

4 विद्यारम्भ संस्कार का सांस्कृतिक और सामाजिक महत्व स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 2 वेदारम्भ, केशांत एवं समावर्तन संस्कार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 संस्कार परिचय एवं स्वरुप

2.4 वेदारंभ संस्कार विधि, मुहूर्त एवं यज्ञ विधान

2.5 केशांत संस्कार विधि, महत्व एवं मुहूर्त विचार

2.6 समावर्तन संस्कार का महत्व एवं मुहूर्त विचार

2.7 सारांश

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

2.9 अभ्यास प्रश्न

2.10 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

2.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी.ए.के.एन (330) में हम सभी वेदारम्भ, केशांत , समावर्तन संस्कार के महत्व तथा विषय की जानकारी प्राप्त करते है की इन तीनों संस्कारों का जातक के जीवन से क्या सम्बन्ध तथा इन संस्कारों के करने से जातक को किस किस फल की प्राप्ति होती हैं। इस इकाई में केशांत, वेदारम्भ, समावर्तन संस्कारो को किस संस्कार के बाद करना होगा इसका भी क्रमशः वर्णन किया गया हैं। इस इकाई के अंतर्गत हम सभी संस्कार क्या हैं? इसकी जीवन मैं क्या उपयोगिता हैं। किसके द्वारा यह संस्कार सम्पन्न किया जाता हैं, यहाँ पर हम सभी कर्मकांड में पूजन तथा यज्ञ विधान का भी अध्ययन करेंगे। आइए जानते हैं कि संस्कार क्या है। संस्कार वह अमूल्य धरोहर हैं, जिसके द्वारा हमारा जीवन कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता बिना संस्कार तथा संस्कृति के हमारा यानि मनुष्य मात्र का जीवन अधूरा प्रतीत होता हैं। जो परिमार्जन करें जीवन को सत्मार्ग की और ले जाये जो पाप कर्मों से हमें बचाकर सत्कर्मों की और ले जाकर जीवन मैं श्रेष्ठता की और अग्रसर करता हुआ जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कराता हुआ लौकिक जगत से भी ऊपर उठकर पारलौकिकता की और ले जायें वह संस्कार कहलाता हैं। संस्कार से ही संस्कृति की और बढ़ा जा सकता हैं। जिससे हमारी संस्कृति सुरक्षित रहकर जनमानस का कल्याण करती रहें वह संस्कार हैं। हमारे सम्पूर्ण रंग रंग मैं संस्कार विद्यमान हैं परन्तु थोड़ा कोशिश करके उसको जानना होगा। और भी विषयों का समावेश इस ईकाई के अंतर्गत किया गया हैं। षोडश संस्कार के अंतर्गत सर्वप्रथम गर्भाधान किया जाता हैं। इस संस्कार को लेकर अन्त्येष्टि संस्कार पर्यंत संस्कारों को मुहुर्त के नियमानुसार किया जाता है। भारतीय संस्कृति में 16 सोलह संस्कारों का विशिष्ट स्थान है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत इन संस्कारों की आवश्यकता होती है। जब हिरण्यगर्भ प्रभु ने इस जगत की रचना की उस समय संस्कारों को करने का आदेश दिया। प्रत्येक संस्कार में कोन कोन सा कर्म करना चाहिए तथा संस्कारों का क्या विधान है। जन्मोत्तर संस्कारों में प्रथम संस्कार गर्भाधान संस्कार होता है। यह संस्कार जातक के उत्पन्न होने के बाद विधि विधान से संपन किया जाने वाला संस्कार कहलाता हैं। उसके बाद के संस्कारों में से नामकरण, अन्नप्राशनादि आदि संस्कार क्रमशः आते हैं। इस इकाई में आप सभी वेदारम्भ, केशांत , समावर्तन संस्कारों का परिचय, तथा मुहूर्त, इत्यादि विषयों के बारे में अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन करनेके पश्चात् आप-

- वेदारम्भ संस्कार क्या हैं ?इस विषय को जान सकेंगे।
- केशांत संस्कार की विधि एवं महत्व को समझ सकेंगे।
- संस्कारों के बारे में जानने का प्रयास करेंगे l
- समावर्तन संस्कार एवं मुहूर्त को जानने का प्रयास करेंगे ।
- संस्कार में कर्मकांड तथा षोडशोपचार पूजन से अवगत हो सकेंगेl

2.3 संस्कार परिचय एवं स्वरुप

संस्कार शब्द का निर्माण 'सम्' उपसर्ग में 'कृ' धातु "घञ् " प्रत्यय लगाने से संपन्न होता हैंl जिसका भावार्थ है परिष्कार, शुद्धता अथवा पवित्रता। इस प्रकार सनातन संस्कृति में इन 16 संस्कारों का विधान व्यक्ति के शरीर को पवित्र बनाने के उद्देश्य से किया गया ताकि वह व्यक्तिगत व सामाजिक विकास के लिए योग्य बन सके। यह वह क्रिया है जिसके सम्पन्न होने पर कोई वस्तु किसीउद्देश्य के योग्य बनती है। इसकी प्रमुख विशेषताओं शुद्धता, पवित्रता, धार्मिकता एवं आस्तिकता, आध्यात्मिकता की स्थितियां देखने को मिलती हैं। समाज कुछ में ऐसी धारणा दिखाई देती है कि मनुष्य जन्म से असंस्कारित होता है किन्तु वह इन संस्कारों के अनुसरण से संस्कार युक्त हो जाता हैंl अर्थात् इनसे उसमें अन्तर्निहित शक्तियों का पूर्ण विकास हो जाता है तथा वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता हैl ये व्यक्ति के जीवन में आने वाली बाधाओं का भी निवारण करते तथा उसकी प्रगति के मार्ग को निष्कंटक बनाते हैं। जिसके द्वारा से मनुष्य अपना आध्यात्मिक विकास के साथ साथ भोतिक विकास करते रहता हैं l हमारे धर्मग्रंथो में आचार्य मनु के कहते हैं की , यह शरीर को विशुद्ध करके उसे आत्मा का उपयुक्त स्थल बनाया जाता हैं । इस प्रकार के व्यक्तित्व की सर्वांगीण उन्नति हेतु भारतीय संस्कृति में इसके विधान का वर्णन प्राप्त होता हैं। संस्कार शब्द का उल्लेख वैदिक तथा ब्राह्मण साहित्य मे देखने में नहीं मिलता,परन्तु मीमांसक इसका प्रयोग यज्ञीय सामग्रियों को शुद्ध करने के अर्थ में करते हैं। वास्तविक रूप से इसका विधान सूत्र-साहित्य तथा गृहयसूत्र इत्यादि में वर्णित हैं। ये जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक सम्पन्न किये जाते था अधिकांश गृहयसूत्रों में अंत्येष्टि का उल्लेख नहीं मिलता है। स्मृति ग्रन्थों में इनका विवरण प्राप्त होता है। इनकी संख्या 40 है। गौतम धर्मसूत्र में इनकी संख्या 48 बतायी गयी है। मनु ने गर्भाधान से मृत्यु पर्यन्त तक तेरह संस्कारों का वर्णन किया गया हैंl अन्य स्मृतियों में सोलह संस्कार स्वीकार गई हैं। इस उक्ति के अनुसार संस्करणं सम्यकरणं वा संस्कारः' अर्थात् दोषों का निवारण, कमी या त्रुटि की पूर्ति करते हुए शरीर और आत्मा में अतिशय

गुणों का आधान करने वाले शास्त्र-विहित क्रिया-कलापों या कर्मकाण्ड के माध्यम से जो गुण विशेष प्राप्त हो वह 'संस्कार' कहलाता हैं l इस प्रकार मैल, दोष, दुर्गुण एवं त्रुटि या कमी का निवारण कर शारीरिक एवं आत्मिक अपूर्णता की पूर्ति करते हुए गुणातिशयों या सगुणों का आधान या उत्पादन ही संस्कार हैं। संस्कार से मनुष्य के जीवन में होने वाली समस्या तथा दुर्गुणों से सुरक्षित करती हैं।संस्कारों का महत्त्व बताते हुए 'मनुस्मृति' में कहा गया हैं-अर्थात् द्विजो के गर्भाधान, जातकर्म, चौल और उपनयनादि संस्कारों के द्वारा बीज-गर्भादिजन्य सभी प्रकार के दोषों और पापों का अपमार्जन होता हैं। आत्मिक व भौतिक विकास का मार्ग प्रशस्त कर मानव को मानव बनाने वाले, उसके जीवन को अकलुष एवं तेजोदीप्त बनाकर उसे धर्मार्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए अग्रसारित करता है। सतत प्रेरित करने वाले यज्ञोपवीत व विवाहादि षोडश संस्कारों का भारतीय जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं। । जो इस संसार में जन्म लेता हैं, उसे मृत्यु के मुख में भी जाना पड़ता हैं l जिसकी मृत्यु हो गयी हो उस व्यक्ति का पुनर्जन्म होना भी निश्चित ही हैं। शास्त्र में वर्णन हैं कि चौरासी लाख योनियोंमें भटकता हुआ जीव भगवत्कृपा से अपने पुण्यपुंजों से मनुष्य योनि प्राप्त करता है। यहाँ पर विचार करना आवश्यक हैं की यह मनुष्य जीवन बहुत ही पुण्य कर्मो के बाद प्राप्त होता हैं l वह पुण्य कर्म क्या हैं , वह पुण्य कर्म है मनुष्यशरीर प्राप्त करने पर इस मनुष्य देह का उदेश्य पूरा करना, अपने कार्य के साथ साथ उस परमपिता परमेश्वर के द्वारा कहा गया मुक्ति के मार्ग को प्राप्त करना, ईश्वर की भक्ति के साथ साथ परोपकार का कार्य करना ही जीवन का उदेश्य हैं। उसके द्वारा जीवनपर्यन्त किये गये सत – असत कर्मों के अनुसार उसे पुण्य-पाप अर्थात् सुख-दुःख आगे के जन्मों में भोगने पड़ते हैं- 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।' शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार ही विभिन्न योनियोंमें जन्म होता है, पापकर्म करनेवालों का पशु-पक्षी, कीट-पतंग और तिर्यक् योनि तथा प्रेत-पिशाचादि योनियों में जन्म होता है, तथा पुण्य-कर्म करनेवाले का मनुष्ययोनि, देवयोनि आदि उच्च योनियों में जन्म प्राप्त करता हैं। मानव योनि के अतिरिक्त संसारकी जितनी भी योनियाँ हैं, वे सब भोगयोनियाँ हैं, जिनमें अपने शुभ एवं अशुभ कर्मों के अनुसार पुण्य-पाप अर्थात् सुख-दुःख का भोग करना पड़ता हैं। केवल मनुष्य योनि ही ऐसी योनि है, जिसमें जीव को अपने विवेक बुद्धिके अनुसार शुभ-अशुभ कर्म करनेका सामर्थ्य प्राप्त होता हैं। अतः मनुष्य-जन्म लेकर प्राणी को विचार के साथ रहना पड़ता हैं। मनुष्य की नैतिक, मानसिक, आध्यात्मिक उन्नति के लिये, इसके साथ ही बल-वीर्य, प्रज्ञा और दैवीय गुणों के प्रस्फुटन के लिये संस्कार शब्दका अर्थ ही है, दोषोंका परिमार्जन करना। जीव के दोषों और कमियों को दूरकर उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन चारों पुरुषार्थ के मार्ग पर ले जाने में षोडश संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती हैं। आचार्य शबरस्वामी ने संस्कार शब्दका अर्थ बताया

है 'संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कश्चिदर्थस्य।' अर्थात् संस्कार वह है, जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्यके लिये योग्य हो जाना ही संस्कार हैं। तन्त्रवार्तिक ग्रन्थ के अनुसार 'योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्काराः इत्युच्यन्ते।' अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं। यह योग्यता दो प्रकार की होती है- पापमोचन से उत्पन्न योग्यता तथा नवीन गुणों से उत्पन्न योग्यता। संस्कारों से नवीन गुणोंकी प्राप्ति तथा पापों या दोषोंका मार्जन किया जाता हैं। संस्कार किस प्रकार दोषों का परिमार्जन करता है, कैसे-किस रूप में उनकी प्रक्रिया होती हैं। मनु का कथन है (वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।कार्यःशरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च) ॥ वेदोक्त गर्भाधानादि पुण्य कर्मों द्वारा द्विजगणोंका शरीर-संस्कार करना चाहिये। यह इस लोक और परलोक दोनों में पवित्र करनेवाला है।' संस्कार सामान्यतः दो प्रकार के होते हैं- एक है दोषापनयन और दूसरा है गुणाधान। कुछ विद्वानों ने इसीके तीन भेद भी बताये हैं, पहला दोषमार्जन, दूसरा अतिशयाधान तथा तीसरा हीनांगपूर्ति। किसी दर्पण आदिपर पड़ी हुई धूल आदि सामान्य मल को वस्त्र आदि से पोछना, हटाना या स्वच्छ करना मलापनयन कहलाता हैं। फिर किसी रंग या तेजोमय पदार्थ द्वारा उसी दर्पण को विशेष चमत्कृत या प्रकाशमय बनाना गुणाधान कहलाता है। संसार की कोई भी जड़ या चेतन वस्तु ऐसी नहीं है, जो बिना संस्कार किये हुए मनुष्यके उपयोग में आती हो। इस विषय को हम सभी एक दृष्टांत से समझने का प्रयास करते हैं। जेसे हम सभी हम अन्न ग्रहण करते हैं किंतु खेत में जैसा अन्न होता है, वैसा-का-वैसा नहीं ग्रहण नही करते हैं, सर्वप्रथम पहले उसको रौंध करके दाना निकाला जाता है और भूसी अलग की जाती है, उसमें जो दोष हैं उनको दूर करके, छान-बीन करके मिट्टी-कंकड़ सभी निकाले जाते हैं, यह दोषापनयन संस्कार कहलाता हैं। उस धान को चक्की में पीसकर आटा निकाला जाता है, जो गुण उनमें नहीं थे, उन्हें लाया जाता है फिर उसमें पानी मिलाकर उसका पिण्ड बनाकर रोटी बनाकर खाने योग्य बनाया जाता हैं। ये सभी गुणाधान संस्कार हैं। कोई भी चीज संस्कारसे हीन होनेपर सभ्य समाजके प्रयोगलायक नहीं होती है। खेतमें जिस रूपमें अनाज खड़ा रहता है, उसी रूपमें गाय, भैंस, घोड़ा, बछड़ा आदि उसे खा जाते हैं, लेकिन कोई मनुष्य खड़े अनाजको खेतोंमें ही खानेको तैयार नहीं होता। खायेगा तो लोग कहेंगे कि पशुस्वरूप है, इसीलिये संस्कार, संस्कृति और धर्म के द्वारा मानव में मानवता आती है। बिना संस्कृति और संस्कारों के मानव में मानवता का निर्माण नही हो सकता हैं। मनुष्य में मानवी शक्ति का आधान होने के लिये उसे सु संस्कृत होना आवश्यक है, अतः उसका पूर्णतः विधिपूर्वक संस्कार सम्पन्न करना चाहिये। वास्तवमें विधिपूर्वक संस्कार-साधनसे दिव्यज्ञान उत्पन्न कर आत्मा को परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित करना ही मुख्य संस्कार कहलाता हैं। और मानव जीवन प्राप्त करने की सार्थकता भी इसी में है। संस्कारों से आत्मा अन्तःकरण

शुद्ध होता है। संस्कार मनुष्य को पाप और अज्ञान से दूर रखकर आचार-विचार और ज्ञान-विज्ञानसे संयुक्त करते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य वर्णन करते हैं।

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रावर्णास्त्वाद्यास्त्रयोद्विजाः ।

निषेकादिश्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतःक्रियाः ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति १०

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- इनमें प्रथम तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं। गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त इनकी समस्त क्रियाएँ वैदिक मन्त्रों के द्वारा सम्पन होती हैं ।' उपनयन आदि संस्कारों को त्यागकर शेष संस्कार शूद्र वर्ण बिना मन्त्र के करना चाहिए । यम संहिता के अनुसार 'शूद्रोऽप्येवंविधः कार्यो विना मन्त्रेण संस्कृतः। ' महर्षि व्यास कहते हैं, गर्भाधान से कर्णवेध पर्यंत नौ संस्कार कहे गये हैं। उनमें से वे स्त्रियों के संस्कार अमन्त्रक करने की आज्ञा देते हैं, परंतु विवाह-संस्कारके लिये समन्त्रक के विधान का वर्णन करते हैं। और यह भी वर्णन करते हैं की शूद्र ये दशो संस्कार होते हैं जो बिना मन्त्र के ही सम्पादित किये जाते हैं।

नवैताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्णं क्रियाः स्त्रियाः ।

विवाहो मन्त्रतस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश ॥

व्याससमृति १।१५-१६

आचार्य याज्ञवल्क्य अपने ग्रंथो में उल्लेख करते हुये स्त्रियों के नौ संस्कारो के बारे में वर्णन करते हुये कहते हैं कि ये 9 संस्कार अमन्त्रक ही सम्पन्न कराये जाते हैं, परन्तु यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है की विवाह मन्त्र के साथ ही इन 9 संस्कारो को सम्पन्न कराना चाहिये।

'तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः ।'

अपनी-अपनी वेदशाखाके अनुसार संस्कार कराना चाहिये 'स्वे स्वे गृह्ये यथा प्रोक्तास्तथा संस्कृतयोऽखिलाः।' इसी बातको 'महानिर्वाणतन्त्र' में दूसरे शब्दों में भगवान् सदाशिव देवी पार्वती को बतलाते हुए कहते हैं कि संस्कारके बिना शरीर शुद्ध नहीं होता और अशुद्ध व्यक्ति देवताओं एवं पितरों (हव्य एवं कव्य) के कार्यों को करने का भी अधिकारी नहीं माना जाता हैं। अतःइस लोक-परलोक

में भी कल्याण की इच्छा रखनेवाले विप्रादि वर्णों को अपने-अपने वर्ण के अनुसार अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक संस्कार कर्म का सम्पादन कार्य करना चाहिये।

संस्कारेण विना देवि देहशुद्धिर्न जायते ।
नासंस्कृतोऽधिकारी स्यादैवे पैत्र्ये च कर्मणि ॥
अतो विप्रादिभिर्वर्णैः स्वस्ववर्णोक्तसंस्क्रिया।
कर्तव्या सर्वथा यत्नैरिहामुत्र हितेप्सुभिः।

संस्कार के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक मलों का अपाकरण होता रहता हैं। तथा आध्यात्मिक की और वह व्यक्ति पूर्णता की प्राप्ति करता रहता हैं। , संस्कार शब्द का अर्थ- 'संस्कार' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृञ्' धातुमें 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर 'संपरिभ्यां करोतौ भूषणे' जो व्यक्ति को असत मार्ग से सत मार्ग की और ले जाकर उन सभी का कल्याण करती है वह संस्कार कहलाता हैं।

2.4 वेदारंभ संस्कार विधि ,मुहूर्त एवं यज्ञ विधान

उपनयन संस्कार के बाद ही वेदारम्भ-संस्कार करने का विधान हैं। जब जातक यज्ञोपवीत धारण कर लेता है तो उसका दूसरा जन्म माना जाता हैं। यज्ञोपवीत के बाद ही जातक चारों वेदों को पढने का अधिकारी माना जाता हैं। जिसे वेदारम्भ संस्कार कहा जाता हैं। जैसा कि 'वेदारम्भ' इस नाम से ही स्पष्ट है कि इस संस्कार में आचार्य के द्वारा ब्रह्मचारी को अपनी वेदशाखा का ज्ञान और मन्त्रोपदेश कराया जाता है। आचार्य याज्ञवल्क्य स्मृतिमें बताया गया है कि आचार्य जातक का उपनयन करके उसे महाव्याहृतियों के साथ वेद का अध्ययन कराकर और शौचाचार की शिक्षा भी प्रदान करने का विधान हैं।

उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम् ।

वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ।।

इस संस्कार को करने की विधि का वर्णन किया जा रहा हैं। सर्वप्रथम वेदारम्भ वेदी का निर्माण करना चाहिए उसके बाद षोडशोपचार विधि के द्वारा पूजन कर पंचभू-संस्कारपूर्वक अग्नि-स्थापन तथा यज्ञ कर्म कर ब्रह्मचारी बटुक को चाहिये कि वह प्रारम्भ में गणेश आदि का पूजनकर वाग्देवी सरस्वती, गुरु का पूजन करे और उन्हें प्रणाम करके वेदमाता गायत्री का पाठ करने के अनन्तर वेदों की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। वेद का सम्पूर्ण स्वाध्याय करके अनन्तर अन्य वेदों की भी शिक्षा आचार्य से प्राप्त कर अन्त में प्रणवपूर्वक पुनः गायत्री का पाठ करके गुरु के द्वारा 'ॐ विरामोऽस्तु' ऐसा कहने पर शिष्य

गुरु के चरणोंमें प्रणाम करके विराम करे और आचार्य से अध्ययन के नियमों का ज्ञान प्राप्त करता हैं। वीरमित्रोदय-संस्कारप्रकाश में महर्षि वसिष्ठ के कहते हैं 'अधीत्य शाखामात्मीयां परशाखां ततः पठेत्' अर्थात् सर्वप्रथम अपनी वेदशाखा का सांगोपांग अध्ययन करने के अनन्तर दूसरी शाखाओं का अध्ययन करना चाहिए उपनयन के अनन्तर आचार्य वेदारम्भवेदी के समीप आकर जातक को अपने दाहिने एक शुद्ध आसनपर बैठाये। तदनन्तर आचमन, प्राणायाम आदि करके गणेशादि देवों का स्मरणात्मक पूजन कर ले। इसके बाद शास्त्रनुसार दीपक प्रज्वलित कर अग्नि देव की स्थापना करे। आगे हम यज्ञ कर्म की विधि का शास्त्रनुसार वर्णन कर रहे हैं।

अग्निस्थापन -

आचार्य वेदारम्भ-संस्कार के लिये बनायी गयी पंच-भूसंस्कार से सम्पन्न वेदी पर समुद्भव नामक अग्नि की स्थापना के लिये जल, अक्षत, पुष्प आदि लेकर विधि पूर्वक संकल्प करे।

ॐ अद्य गोत्रः शर्माहमस्य माणवकस्य वेदारम्भसंस्कार-

कर्मणि समुद्भवनामकमग्नेः स्थापनं करिष्ये। कहकर संकल्पजल छोड़ दे।

इसके बाद सुवासिनीके द्वारा लायी गयी प्रदीप्त, निर्धूम समुद्भव नामक अग्नि की स्थापना वेदी पर निम्न मंत्रो के द्वारा करे -

ॐ अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप बुवे। देवाँर आ सादयादिह।

इसके बाद अग्निके ऊपर उसकी रक्षाके लिये कुछ काष्ठ आदि डाल दे और अग्निको प्रज्वलित करे।

ब्रह्मावरण-

इसके बाद वरणसामग्री लेकर ब्रह्मा के वरण का संकल्प करे-

ॐ अद्य गोत्रः शर्माऽहमस्मिन् वेदारम्भहवनकर्मणि

परम्पराके अनुसार ब्रह्मा के न होने पर पचास कुशों में ग्रन्थि लगाकर कुशब्रह्मा बना लिया जाता है। इस स्थितिमें ब्रह्मावरण की प्रक्रिया आचार्य द्वारा की जाती हैं।

कृताकृतावेक्षणादिब्रह्मकर्मकर्तुं गोत्रं शर्माणं ब्राह्मणमेभि-र्वरणद्रव्यैर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे।

वरणसामग्री ब्रह्माको प्रदान करे। ब्रह्मा कहे-वृतोऽस्मि ।इसके बाद ब्रह्माकी प्रार्थना करे-

यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्ववेदधरः प्रभुः ।

तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ।।

ब्रह्मा को अग्निकी प्रदक्षिणा कराकर वेदी के दक्षिण भाग में आसन पर बैठा दे। इसके बाद कुश कंडिका का विधान है जो आगे दिया जा रहा हैं।

कुशकण्डिका -

अग्निप्रतिष्ठा - मंत्रो को बोलकर अक्षत छोड़ते हुए पूर्व में वेदीपर स्थापित अग्नि की प्रतिष्ठा करनी चाहिए l "समुद्भवनामाग्ने सुप्रतिष्ठितो वरदो भव" इस प्रकार प्रतिष्ठाकर अग्नि देव का ध्यान करना चाहिए l

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् । सुवर्णवर्णममलमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥

सर्वतः पाणिपादश्च सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः । विश्वरूपो महानग्निः प्रणीतः सर्वकर्मसु ॥

ॐ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या २ आ विवेश ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः समुद्भवनाम्ने अग्नये नमः सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि - कहकर अग्निका पूजन करना चाहिए ।

यज्ञ विधि आगे मंत्रो को दिय जा रहा हैं इन मन्त्रों से अग्निदेव की प्रतिष्ठा और पूजा करने का विधान हैं। इसके अनन्तर आचमन करके दक्षिण जानु को भूमि पर रखकर , मौन रहकर मूल और मध्य भाग के मध्य से सुरवा को पकड़कर घृत से हवन करना चाहिए । तदनन्तर निम्न मन्त्रों से घृत की आहुति प्रदान करे। सुवा में बचे घी को प्रोक्षणीपात्र में छोड़ना चाहिए ।

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।

ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम।

ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम।

इसके बाद ब्रह्मा हवनकर्ता से कुशों का स्पर्श हटा ले तत्पश्चात् यज्ञ करे।

पहले यजुर्वेद के मन्त्रों से आहुति प्रदान करे-

यजुर्वेद के लिये आहुतियाँ

ॐ अन्तरिक्षाय स्वाहा, इदमन्तरिक्षाय न मम ।

ॐ वायवे स्वाहा, इदं वायवे न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम।

इसके बाद ऋग्वेद के मन्त्रोंसे आहुति प्रदान करे -

ऋग्वेदके लिये आहुतियाँ -

ॐ पृथिव्यै स्वाहा, इदं पृथिव्यै न मम।

ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम।

इसके बाद सामवेद के मन्त्रों से आहुति प्रदान करे

सामवेद के लिये आहुतियों को देना चाहिए।

ॐ दिवे स्वाहा, इदं दिवे न मम।

ॐ सूर्याय स्वाहा, इदं सूर्याय न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम।

इसके बाद अथर्ववेदके मन्त्रों से यज्ञ में आहुति प्रदान करे।

अथर्ववेदके लिये आहुतियाँ -

ॐ दिग्भ्यः स्वाहा, इदं दिग्भ्यो न मम।

ॐ चन्द्रमसे स्वाहा, इदं चन्द्रमसे न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम।

सामान्य आहुतियाँ -

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।

ॐ देवेभ्यः स्वाहा, इदं देवेभ्यो न मम।

ॐ ऋषिभ्यः स्वाहा, इदमृषिभ्यो न मम।

ॐ श्रद्धायै स्वाहा, इदं श्रद्धायै न मम।

ॐ मेधायै स्वाहा, इदं मेधायै न मम।

ॐ सदसस्पतये स्वाहा, इदं सदसस्पतये न मम।

ॐ अनुमतये स्वाहा, इदमनुमतये न मम।

पुनः ब्रह्मा हवनकर्ता का कुशों से स्पर्श करे और निम्न मन्त्रों से
आहुति नवाहुति प्रदान करे।

ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम।

ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम।

ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्याय न मम।

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः ।

यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषासि प्र मुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा, इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।

ॐ स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणश्रराणो वीहि मृडीकः सुहवो न एधि स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।

ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमयाऽअसि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजः स्वाहा। इदमग्नये ऽयसे न मम।

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्त्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो ऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भयः स्वर्केभ्यश्च न मम।

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमः श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायादित्यायादितये न मम।ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम ।

स्विष्टकृत् आहुति -

इसके बाद ब्रह्मा द्वारा कुश से स्पर्श किये जाने की स्थितिमें निम्न मन्त्र से घृतद्वारा स्विष्टकृत् आहुति दे-

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते न मम। संस्त्रवप्राशन -यज्ञ पूर्ण होने पर प्रोक्षणीपात्र से घृत को दाहिने हाथ में लेकर यत्किंचित् प्राशन करे। हाथ धो ले। फिर आचमन करे।

मार्जनविधि -

इसके बाद निम्नलिखित मन्त्रद्वारा प्रणीतापात्र के जल से कुशों के द्वारा अपने सिर पर मार्जन करे-

ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः।
पवित्रप्रतिपत्ति -पवित्रक को अग्नि में छोड़ दे।
पूर्णपात्रदानविधान
पूर्व में स्थापित पूर्णपात्र में द्रव्य-दक्षिणा रखकर निम्न संकल्प कर दक्षिणासहित पूर्णपात्र ब्रह्मा को प्रदान करे-
ॐ अद्य गोत्रः शर्माहं अस्य कुमारस्य वेदारम्भसंस्कार-होमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरूपब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थमिदं वृषनिष्क्रय-द्रव्यसहितं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतं गोत्राय शर्मणे ब्रह्मणे भवते सम्प्रददे ब्रह्मा 'स्वस्ति' कहकर उस पूर्णपात्रको ग्रहण कर ले।

प्रणीताविमोक - प्रणीतापात्र को ईशानकोणमें उलटकर रख दे।

मार्जन -पुनः उपयमन कुशों द्वारा निम्न मन्त्र से उलटकर रखे गये प्रणीता के जल से मार्जन करे-

ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः

शान्ततमास्तास्तेण्वन्तु भेषजम् ।

उपयमन कुशों को अग्नि में छोड़ दे। बर्हिहोम -तदनन्तर पहले बिछाये हुए कुशाओं को जिस क्रम से बिछाये गये थे, उसी क्रम से उठाकर घृत में भिगोये और निम्न मन्त्र का उच्चारणकर अग्निमें डाल दे -

ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित।

मनसस्पत इमं देव यज्ञः स्वाहा वाते धाः स्वाहा।

इसका बाद कुश में लगी ब्रह्मग्रन्थिको खोल दे इसके बाद जातक देवपूजन करने के लिये हाथ में जल, अक्षत, पुष्प, सुपारी जो, तिल, लेकर विधिवत संकल्प करे।

ॐ अद्य गोत्रः शर्माहं पूर्वोच्चारितग्रहगुणगणविशेषण-विशिष्टायां पुण्यतिथौ मम ब्रह्मवर्चससिद्ध्यर्थं वेदारम्भकर्मणः पूर्वाङ्गत्वेन गणपतिसहितसरस्वतीविष्णुलक्ष्मीयजुर्वेदगुरूणां पूजनं करिष्ये।

इसके बाद लकड़ीके पाटे पर दक्षिण से उत्तर की ओरसे पाँच स्थानों पर दही-चावल मिलाकर (दध्यक्षतपुंज) रखे तथा उनपर सुपारी रखे और उन पर निम्न मन्त्रों से गणपति आदि देवताओं की यथाक्रम स्थापना करे - ॐ भूर्भुवः स्वः गणेश इहागच्छ पूजार्थं त्वामावाहयामि इह तिष्ठ।

आदौ गणपतिं चेष्ट्वा सम्पूज्य च सरस्वतीम्। गुरुपूजां ततः कृत्वा विद्याः सर्वाः समारभेत् ॥
प्राशनादिविमोकान्ते कृत्वा विघ्नेशपूजनम्। सरस्वतीं हरिं लक्ष्मीं स्वविद्यां पूजयेत्ततः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः विष्णो इहागच्छ पूजार्थं त्वामावाहयामि। इह तिष्ठ।

ॐ भूर्भुवः स्वः सरस्वति इहागच्छ पूजार्थ त्वामावाहयामि। इह तिष्ठ।

ॐ भूर्भुवः स्वः लक्ष्मि इहागच्छ पूजार्थं त्वामावाहयामि । इह तिष्ठ।

ॐ भूर्भुवः स्वः स्वविद्ये इहागच्छ पूजार्थं त्वा-मावाहयामि। इह तिष्ठ।

निम्न मन्त्रसे अक्षत छोड़ते हुए देवों की प्रतिष्ठा करे-

ॐ एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्वृहस्पतये ब्रह्मणे। तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ॥

नाममन्त्रों से गन्धाक्षतपुष्पों द्वारा सबका पूजन करे।

जातक गन्ध-पुष्पादि द्वारा गुरु का पूजन करे और उनके चरणों में प्रणाम करे। इन सभी कर्मो के बाद जातक वेदारम्भ यानि वेदों के अध्ययन के लिए कुशल पात्र बन जाता हैं। इसके बाद सर्वप्रथम प्रणवव्याहृतिपूर्वक गायत्री मन्त्र को पढ़कर अपने वेद की शाखा का आरम्भ करे।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

शुक्लयजुर्वेद आरम्भ करने का विधान

ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्व मघ्न्या इन्द्राय भागम्प्रजावती-रनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशः सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥

ऋग्वेदारम्भ

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ।

सामवेदारम्भ -

ॐ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि।

अथर्ववेदारम्भ -

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः ।

पुनः गायत्रीमन्त्र का पाठ करे और 'विरामोऽस्तु'- ऐसा गुरु के कहने पर शिष्य उनके चरणों में प्रणाम करता हैं। इसके बाद आचार्य के द्वारा बुलाने पर लेटे हुए शिष्य द्वारा बैठकर, बैठे हुए शिष्यद्वारा खड़े होकर, खड़े हुए शिष्यद्वारा चलते हुए, चलते हुए शिष्यको दौड़ते हुए उत्तर देना चाहिये। इसके बाद आचार्य बैठकर सुवाद्वारा भस्म ले और दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली से निम्न मन्त्रों का पाठ करता हुआ शिष्य को भस्म लगाना चाहिए।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः- ललाटपर भस्म लगाये।

ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम् - ग्रीवामें भस्म लगाये।

ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम् - दक्षिण बाहुके मूलमें।

ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् - हृदयमें भस्म लगाये।

इसके बाद अग्निदेव का पूजन कर अग्नि का विसर्जन करना चाहिए।

गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर ।

यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन ।

इन सभी का विधिवत पूजन अर्चन, विसर्जन कर भगवान् विष्णु का ध्यान करना चाहिए।

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताऽध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्ण स्यादिति श्रुतिः ॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु । न्यूनं सम्पूर्णतां यातु सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

यत्पादपङ्कजस्मरणात् यस्य नामजपादपि । न्यूनं कर्म भवेत् पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम् ॥

ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः। ॐ विष्णवे नमः ।

ॐ साम्बसदाशिवाय नमः । ॐ साम्बसदाशिवाय नमः ।ॐ साम्बसदाशिवाय नमः । इस प्रकार से वेदारम्भ संस्कार का विधिवत पालन करना चाहिए।

2.5 केशांत संस्कार विधि, महत्व एवं मुहूर्त विचार

वेदारंभ संस्कार के पूर्ण होने पर केशांत संस्कार किया जाता है, इस संस्कार को करने से बालक को बताया जाता है कि अब उसे सामजिक जिम्मेदारियों का पालन करना है. आइए जानते है केशांत संस्कार का महत्व, क्या है इसे कब करना चाहिए। केशांत दो शब्दों से मिलकर बनता है केश और अर्थ (केश -बाल, अंत पूर्ण) अर्थात किसी व्यक्ति के बालों को पूरी तरह से काटना ही केशांत कहलाता है। पहली बार बालक अपने दाढ़ी और मूंछ को काटता है. यहीं से उसका किशोरावस्था पूर्ण होता है और वो गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारी उठाने योग्य बन जाता है. केशांत संस्कार एक युवा के वेदारंभ संस्कार की समाप्ति के पश्चात किया जाता है क्योंकि उसके बाद वह गुरुकुल से अपने घर और समाज में दोबारा लौटता है केशांत संस्कार 16 साल की उम्र से पहले नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे पहले वह वेदारंभ संस्कार के नियमों का पालन कर रहा होता है। जिसमें उसे गुरुकुल में रहकर सिर तथा दाढ़ी के बाल कटवाने के लिए निषेध होता है।इस संस्कार को करने के बाद इस संस्कार का अधिकारी हो जाता हैं। आचमन, प्रणायाम, कर केशान्त संस्कार का संकल्प करे। पश्चात गणपति पूजनादि करके पुण्यावाचन आदि करे। उसके पश्चात शुद्ध भूमि में स्थाण्डिल वेदिका बना के विधि पूर्वक हवन करें। चूड़ाकरण की भांति सब विधि सम्पन्न कर घृतादि मिले शीत और उष्ण जल से केशों को भिगोकर नाई शिखा को छोड़कर शेष सब बाल, दाढ़ी, मूंछ को बनाये। तब ब्रह्मचारी स्वयं स्नान कर आचार्य को गौ दान करें। इसके पश्चात ब्रह्मचारी तीन दिन तक ब्रह्मचर्य रहे और केशच्छेदन न करावे। यह संस्कार कब करवाना चाहिये? मनुस्मृति के अनुसार- ब्राह्मण बालक का केशांत संस्कार (मुंडनसंस्कारविशेष) सोलहवें वर्ष में किया जाता है, क्षत्रिय का बाइसवें वर्ष में किया जाता हैऔर वैश्य का उस में से दो वर्ष ज्यादा (चौबीसवें) वर्ष में केशांत संस्कार किया जाता है।

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबन्धोर द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः ।।

मुहूर्तचिन्तामणी के अनुसार केशांत संस्कार सोलहवें वर्ष में और मुंडन में कहे हुए समय में केशांत कर्म करना चाहिये। तथा उपनयन में कहे हुये समय में समावर्तन कर्म करना चाहिये।

केशान्तं षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे शुभम् ।

व्रतोक्तदिवसादौ हि समावर्त्तनमिष्टते ।।

शुभमास - माघ, वैशाख, ज्येष्ठ, फाल्गुन, मार्गशीर्ष,

शुभ तिथि - 1,2,3,5,6,7,8,10,11,12,13,15

शुभ वार सोम-बुध-गुरु-शुक्र

शुभ नक्षत्र अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, स्वाति, मूल श्रवण, धनिष्ठा

2.6 समावर्तन संस्कार का महत्व एवं मुहूर्त विचार

शास्त्रों में षोडश संस्कारो के अंतर्गत उपनयन-संस्कार करने के बाद जातक या ब्रह्मचारी गुरुकुल में निवास करता हुआ वहाँ पर वेदादि की शिक्षा ग्रहण करता है। जब जातक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो उसके बाद मन्त्राभिषेकपूर्वक गुरु की आज्ञा से उस जातक का स्नान किया जाता हैं,तथा ब्रह्मचर्यके चिह्न मेखला आदि का त्याग कर जटा-लोम आदि का छेदन करके गार्हस्थ्य के उपयुक्त चन्दन, पुष्पमाला, पगड़ी, वस्त्राभूषण, अलंकार आदिका धारण होता है। जिन कर्मों का ब्रह्मचर्यव्रत में निषेध आदि का वर्णन था, उनका ग्रहण किया जाता हैं। ये सब कर्म आचार्य की देख-रेख में समन्त्रक होते हैं। फिर आचार्य को दक्षिणा देकर अपने घ रमें आगमन होता है। समावर्तन का सामान्य अर्थ है- गुरुकुल से शिक्षा ग्रहणकर अपने गृह वापस आना ही समावर्तन संस्कार कहलाता हैं। इसे शिक्षाप्राप्ति का दीक्षान्त संस्कार भी कहते हैं । इस संस्का रमें ब्रह्मचर्याश्रम विद्याध्ययन की पूर्णता होती है और फिर विवाहके अनन्तर गृहस्थाश्रम प्रवेश की अधिकारसिद्धि होती है। वेदविद्या प्राप्तकर उसकी ब्रह्मचारी संज्ञा नहीं रहती, बल्कि अब वह 'स्नातक' अर्थात् विद्यारूपी प्रवाहमें स्नान किया हुआ कहलाता है। श्रुतिका आदेश है- 'आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः ।' अर्थात् आचार्यको दक्षिणारूप में यथाशक्ति धन देकर प्रजातन्तु की रक्षा के लिये स्नातक द्विज गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। इस विषयमें महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं ,

वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वा ह्युभयमेव वा ॥

अविप्लुतब्रह्मचर्योलक्षण्यांस्त्रियमुद्वहेत् ।

अर्थात् समग्र अथवा एक या दो वेद का अध्ययनकर अस्खलित ब्रह्मचारी सुलक्षणा स्त्री से उद्वाह करे। वेदविद्या प्राप्त यह स्नातक विद्याव्रत स्नातक कहलाता है, वह चूँकि वेदादि के अध्ययन एवं स्वाध्याय से महान् ब्रह्मतेज से सम्पन्न होता है। अतः उस समय पिता तथा आचार्य के द्वारा भी मधुपर्क आदि के द्वारा पूज्य होता हैं।

गुरु द्वारा स्नातक के लिये उपदेश देना

आश्वलायनस्मृति में उल्लेख किया गया है कि गुरु की आज्ञासे मंगलमय कलशों से मन्त्रद्वारा जल से स्नान सम्पन्न कर वह नवीन वस्त्र-आभूषणों को धारण कर गुरुके चरणों के समीप बैठता है, तब गुरु उसे आगे कैसे जीवन व्यतीत करना है, इसकी शिक्षा प्रदान करते हैं। विद्याध्ययनपर्यन्त गुरु के समीप रहता हुआ वह ब्रह्मचर्यपू र्वक शम-दमादि नियमों के पालन में तत्पर रहता है, अग्नि की उपासना करता है और गुरु-शुश्रूषामें तत्पर रहता है। किंतु अब उसे वापस घर लौटना होता है। यहाँ पर गुरुकुल के परिवेश को छोड़कर उसे नये परिवेश में रहना होता है। गृहके वातावरण में माता-पिताके स्नेहसे कहीं वह नियमों के पालन में च्युत न हो जाय, शम-दमादि का उसका आचरण कहीं शिथिल न हो जाय, इसलिये गुरु उसे शिक्षा प्रदान करते हैं कि आगे भी तुम सावधान होकर यम-नियमोंका दृढ़ता से पालन करते रहना। कामवाद, कामाचार और कामभक्षण से सदा बचते रहना। नृत्य-गीतादिमें अभिरुचि न रखना, सभी के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार रखना इत्यादि। विवाह हो जाने तक इन सभी नियमोंका पालन करते रहना प्राचीनकाल में उपनयनके बाद वेदारम्भसंस्कार कर के गुरुकुल में रहकर वेदाध्ययन सम्पन्नकर समावर्तनसंस्कार करने की परम्परा थी, परंतु आजकल सामान्यतः उपनयन-संस्कार के अनन्तर वेदारम्भ-संस्कारकी प्रक्रिया पूरी कर समावर्तन संस्कार शीघ्र ही कर दिया जाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् की शीक्षावल्ली के ११वें अनुवाक में स्नातकों के लिये समावर्तन-संस्कार के अनन्तर गृहस्थ धर्म में प्रवेश करके कैसे रहना चाहिये-इसका बड़ा ही सुन्दर उपदेश आया है, जो दीक्षान्त उपदेश कहलाता है, प्रत्येक गृहस्थके लिये बहुत उपयोगी होने से उसको यहाँ दिया जा रहा है, इन उपदेशों का पालन करनेसे स्नातक से गृहस्थ हुए व्यक्ति का जीवन पूर्ण सदाचारमय, भगवद्भक्तिमय तथा आनन्दमय हो जाता है, वह उपदेश इस प्रकार है-

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ।

यह कहा गया है की तुम सदा सत्य-भाषण करना, आपत्ति पड़ने पर भी झूठ का कदापि आश्रय न लेना; अपने वर्ण-आश्रम के अनुकूल शास्त्रसम्मत धर्म का अनुष्ठान करना; स्वाध्याय से अर्थात् वेदों के अभ्यास, सन्ध्यावन्दन, गायत्री जप और भगवन्नाम गुणकीर्तन आदि नित्यकर्म में कभी भी प्रमाद न करना- अर्थात् न तो कभी उन्हें अनादरपूर्वक करना और न आलस्यवश उनका त्याग ही करना। गुरुके लिये दक्षिणा के रूप में उनकी रुचि के अनुरूप धन लाकर प्रेमपूर्वक देना; फिर उनकी आज्ञासे

गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके स्वधर्मका पालन करते हुए संतान-परम्पराको सुरक्षित रखना- उसका लोप न करना। अर्थात् शास्त्रविधि के अनुसार विवाहित धर्मपत्नी के साथ ऋतुकाल में नियमित सहवास करके संतानोत्पत्ति का कार्य अनासक्तिपूर्वक करना। शक्ति को न तो नष्ट करना चाहिये और न परिहास आदि के बहाने कभी झूठ ही बोलना चाहिये। इसी प्रकार धर्मपालन में भी भूल नहीं करना चाहिये अर्थात् कोई बहाना बनाकर या आलस्यवश कभी धर्म की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। लौकिक और शास्त्रीय- जितने भी कर्तव्यरूप से प्राप्त शुभ कर्म हैं, उनका कभी त्याग या उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, अपितु यथा योग्य उनका अनुष्ठान करते रहना चाहिये। धन-सम्पत्ति को बढ़ानेवाले लौकिक उन्नति के साधनों के प्रति भी उदासीन नहीं होना चाहिये। इसके लिये भी वर्णाश्रमानुकूल चेष्टा करनी चाहिये। पढ़ने और पढ़ानेका जो मुख्य नियम है, उसकी कभी अवहेलना या आलस्यपूर्वक त्याग नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार अग्निहोत्र और यज्ञादि के अनुष्ठानरूप देवकार्य तथा श्राद्ध-तर्पण आदि पितृकार्य के सम्पादन में भी आलस्य या अवहेलनापूर्वक प्रमाद नहीं करना चाहिये।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकः सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयाःसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।

इस श्लोक में कहा गया है पुत्र ! तुम माता में देवबुद्धि रखना, पिता में भी देवबुद्धि रखना, आचार्य में देवबुद्धि रखना तथा अतिथि में भी देवबुद्धि रखना। आशय यह कि इन चारोंको ईश्वरकी प्रतिमूर्ति समझकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सदा इनकी आज्ञाका पालन, नमस्कार और सेवा करते रहना; इन्हें सदा अपने विनयपूर्ण व्यवहारसे प्रसन्न रखना संसार में जो-जो निर्दोष कर्म हैं, उन्हीं का तुम्हें सेवन करना चाहिये। उनसे भिन्न जो दोषयुक्त-निषिद्ध कर्म हैं, उनका कभी भूलकर- स्वप्न में भी आचरण नहीं करना चाहिये। हमारे अपने गुरुजनों के आचार-व्यवहारमें भी जो उत्तम (शास्त्र एवं शिष्ट पुरुषों द्वारा अनुमोदित) आचरण हैं, जिनके विषयमें किसी प्रकार की शंका को स्थान नहीं है, उन्हीं का तुम्हें अनुकरण करना चाहिये, उन्हीं का सेवन करना चाहिये। जिनके विषयमें जरा-सी शंका हो, उनका अनुकरण कभी नहीं करना चाहिये। जो कोई भी हमसे श्रेष्ठ-वय, विद्या, तप, आचरण आदि में बड़े तथा ब्राह्मण आदि पूज्य पुरुष घ रपर पधारें, उनको पाद्य, अर्घ्य, आसन आदि प्रदान करके सब प्रकारसे उनका सम्मान तथा यथा योग्य सेवा करनी चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार दान करनेके लिये तुम्हें सदा उदारतापूर्वक तत्पर रहना चाहिये। जो कुछ भी दिया जाय, वह श्रद्धापूर्वक देना चाहिये।

अश्रद्धापूर्वक नहीं देना चाहिये; क्योंकि बिना श्रद्धा के किये हुए दान आदि कर्म असत् माने गये हैं लज्जापूर्वक देना चाहिये। यह सारा धन भगवान् का है, मैंने इसे अपना मानकर उनका अपराध किया है। इसे सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित भगवान्की सेवा में ही लगाना उचित था, मैंने ऐसा नहीं किया। मैं जो कुछ दे रहा हूँ, वह भी बहुत कम है। यों सोचकर संकोच का अनुभव करते हुए देना चाहिये। मन में दानीपन के अभिमानको नहीं आने देना चाहिये। सर्वत्र और सबमें भगवान् हैं, अतः दान लेनेवाले भी भगवान् ही हैं। उनकी बड़ी कृपा है कि मेरा दान स्वीकार कर रहे हैं। यों विचारकर भगवान्से भय मानते हुए दान देना चाहिये। 'हम किसीका उपकार कर रहे हैं' ऐसी भावना मनमें लाकर अभिमान या अविनय नहीं प्रकट करना चाहिये।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः । एष आदेशः । एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम् ।

यह सब करते हुए भी यदि तुमको किसी अवसर पर अपना कर्तव्य निश्चित करने में दुविधा उत्पन्न हो जाय, अपनी बुद्धि से किसी एक निश्चयपर पहुँचना कठिन हो जाय तुम किं कर्तव्यविमूढ़ हो जाओ, तो ऐसी स्थितिमें वहाँ जो कोई उत्तम विचार रखनेवाले, उचित परामर्श देनेमें कुशल, सत्कर्म और सदाचारमें तत्परतापूर्वक लगे हुए, सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेवाले तथा एकमात्र धर्म-पालन की ही इच्छा रखनेवाले विद्वान् ब्राह्मण (या अन्य कोई वैसे ही महापुरुष) हों- वे जिस प्रकार ऐसे प्रसंगों पर आचरण करते हों, उसी प्रका रका आचरण तुम्हें भी करना चाहिये। ऐसे स्थलोंमें उन्हींके सत्परामर्शके अनुसार उन्हींके स्थापित आदर्शका अनुगमन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जो मनुष्य किसी दोष के कारण लांछित हो गया हो, उसके साथ किस समय कैसा व्यवहार करना चाहिये-इस विषयमें भी यदि तुमको दुविधा प्राप्त हो जाय-तुम अपनी बुद्धिसे निर्णय न कर सको तो वहाँ भी जो विचारशील, परामर्श देने में कुशल, सत्कर्म और सदाचारमें पूर्णतया संलग्न तथा धर्मकामी (सांसारिक धनादिकी कामनासे रहित) निःस्वार्थी विद्वान् उसी को माना जाता हैं।

शुभ तिथि 12,3,5,6,7,8,10,11,12,13,15

शुभ वार सोम, बुध, गुरु, शुक्र

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा,

शुभ लग्न 2.7,9.12

2.7 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत आप सभी ने केशान्त, वेदारंभ, समावर्तन, संस्कार के बारे मैं मेरे विधि पूर्वक अध्ययन किया होगा। भारतीय परम्परा मैं षोडश संस्कारों का वर्णन मिलता हैं। यहां पर अलग अलग आचार्यों के विभिन्न विभिन्न मत प्राप्त होते हैं किसी के मतानुसार 16, किसी के मत मैं, 18,48, इत्यादि संस्कारों का उल्लेख शास्त्रों मैं प्राप्त होता हैं। महर्षि व्यास के अनुसार 16संस्कार को ही आचार्यों ने स्वीकार किया हैं। इन संस्कारों मैं वेदारंभ संस्कार का भी विशेष महत्व बताया गया हैं। यज्ञोपवीत होने के बाद वेद पढ़ने के अधिकारी होते हैं। इसके पश्चात् केशांत संस्कार के विषय मैं कहां गया हैं। 25वर्षो तक गुरुकुल मैं अध्ययन के पश्चात् जातक केशांत संस्कार मैं प्रवेश करता हैं। केशांत संस्कार को भी आचार्यों ने स्वीकार किया गया हैं। केशांत क्या हैं इस बारे मैं जानते हैं। केश यानि बाल जातक के केश को शस्त्रके द्वारा सर से उतारा जाता हैं। जिसे मुंडन संस्कार के समान ही माना जाता हैं। इस संस्कार मैं जातक के बालों को अमोनिया कर उतारा जाता हैं। जिससे वो समावर्तन संस्कार मैं प्रवेश करता हैं। सम्यक् आवर्तनं समावर्तनं इस संस्कार मैं गुरु शिष्य को सदाचार आचरण करनें के लिए कहता हैं, इन सभी को देखते हुए गुरुजी शिष्य को आशीर्वाद देकर दीक्षांत शिक्षा देकर घर जानें के लिए कहते हैं। जिसे समावर्तन संस्कार कहा जाता हैं। उसके पश्चात् वह जातक विवाहादि संस्कार के अधिकारी हो जाते है, जिससे सृष्टि प्रक्रिया चलती रहें। आप सभी ने संस्कार का महत्व, विधि, मुहूर्तों के विषय मैं विधिवत अध्ययन किया होगा।

2.8 पारिभाषिक शब्दावली

1. वेदारंभ वेदिक ग्रंथों का आरंभ
2. विधिवत सत्यं निष्ठा से
3. संस्कार पवित्रता
4. केशांत बालों को अमोनिया करना
5. समावर्तन जातक का अभिषेक कर गुरुकुल से निवृत्त करना
6. अद्य: आज

7. अतिथि देवो भव   मेहमानों का स्वागत

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. महर्षि व्यास के मत मैं कितने संस्कार हैं।
2. संस्कार क्या हैं।
3. अतिथि देवो भव या हैं।
4. समावर्त क्या हैं।
5. केशांत किसे कहते हैं।
6. सत्यं वद।
7. स्वाध्यायान्मा प्रमद: का अर्थ हैं।
8. 25 संस्कार कोन स्वीकार करता हैं।
9. आश्वालायन के अनुसार संस्कार हैं।
10. वैखानस के मत मैं संस्कार हैं।

2.10 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. षोडश संस्कार
2. जीवन को सत्मार्ग की ओर ले जाने वाला
3. हमारे देश में मेहमानों का आंगमन
4. गुरुकुल से निवृत्त होना
5. बालों को केश तथा बालों को काटना ही केशांत कहलाता है।
6. अध्ययन मैं आलस नहीं करना चाहिए।
7.अध्ययन मैं आलस नहीं करना चाहिए।
8. ऋषि अंगिरा
9. 10
10.अष्टादश

2.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मुहूर्त चिंतामणि, श्रीरामाचार्य विरचित
2. नारदज्योतिषसंहिता, नारद मुनि
3. मुहूर्त मार्तण्ड, नारायण दैवज्ञ

4. वृहद्देवज्ञरंजन
5. संस्कार एवं शान्ति रहस्य
6. शांति विधानं

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. वेदारंभ, संस्कार की विधि एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. समावर्तन संस्कार क्या हैं। विस्तार पूर्वक उल्लेख कीजिए।
3. संस्कार के स्वरूप एवं महत्व पर टिप्पणी लिखिए।
4. समावर्तन संस्कार की विधि एवं पूजन यज्ञादि का विवेचन कीजिए।
5. केशांत संस्कार क्या हैं विस्तृत उल्लेख कीजिए।

इकाई – 3 विवाह संस्कार

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 विवाह परिचय

3.4 विवाह प्रकार

3.5 गुण-दोष विचार

3.6 सारांश

3.7 अभ्यासप्रश्नों का उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई विवाह संस्कार नामक शीर्षक से सम्बन्धित है| भारतीय सनातन परम्परा में विवाह को मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है| वैवाहिक बन्धन जीवन का सबसे महत्वपूर्ण बन्धन है। विवाह प्रेम तथा स्नेह पर आधारित एक बन्धन है। जिस पर सम्पूर्ण परिवार का भविष्य निर्भर करता है इसलिए इसका विचार बहुत ही महत्वपूर्ण है। सृष्टि चक्र को अनवरत् चलाने के उद्देश्य से विवाह संस्कार का जन्म दिया गया विवाह संस्कार का उद्देश्य यह था कि स्त्री और पुरूष के मध्य नैतिक सम्बन्ध स्थापित हो ताकि समाज में स्वस्थ वातावरण का निर्माण हो। इन सभी विषयों की जानकारी आप लोगों को बहुत ही सरलतापूर्वक इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् जानकारी होगी।

3.2 उद्देश्य

❖ विवाह के महत्व को समझ सकेंगें|

❖ विवाह कितने प्रकार के होते है, इसे जान पायेंगें|

❖ विवाह के गुण-दोषों को आसानी से समझ पायेंगें|

3.3 विवाह परिचय

विवाह, जिसे शादी भी कहा जाता है, दो लोगों के बीच एक सामाजिक या धार्मिक मान्यता प्राप्त मिलन है विवाह मानव-समाज की अत्यंत महत्वपूर्ण प्रथा या समाजशास्त्रीय संस्था है। यह समाज का निर्माण करने वाली सबसे छोटी इकाई है। एक-दूसरे से पूर्णतः अपरिचित वर-वधू को सुखद दाम्पत्य प्रदान करने में, ज्योतिष विज्ञान की सर्वाधिक उपयोगी भूमिका है। पूर्णतः अपरिचित वर-वधू जब दाम्पत्य के सोपान पर पहला पद रखते हैं, तभी उन्हें एक-दूसरे के स्वभाव, व्यवहार का आभास होता है, किस बात पर पत्नी की क्या प्रतिक्रिया होगी? कब वह प्रसन्न होगी और कब रुष्ट? पति के आचरण में आत्मीयता है या शुष्कता? पति प्रातः विलम्ब तक सोता है या प्रातःकाल शीघ्र जागकर व्यस्त दिनचर्या में संलग्न हो जाता है। पति को किस तरह का व्यवहार हर्षित करता है और कौन सी बात उसे उग्र कर देती है? ऐसी सहस्रों वास्तविकताएँ तथा प्रतिक्रियाएँ, वर-वधू को विवाह के उपरान्त एक-दूसरे के सान्निध्य में आकर ही ज्ञात होती हैं। विवाह से पूर्व किसी को भी यह ज्ञात नहीं होता है कि विवाहोपरान्त एक-दूसरे का साथ कैसा प्रतीत होगा? विवाहोपरान्त मानसिक संरचना, प्रतिक्रियात्मक चिन्तन तथा अभिनव स्थितियों, परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन प्रस्फुटित होता है जिसकी अनुकूलता, एकरूपता तथा शुभता ही सुखमय वैवाहिक जीवन का आधार है। विरोधात्मक प्रतिक्रिया तथा नकारात्मक विचार-विमर्श, उत्तेजना, उग्रता, व्यग्रता, संशय तथा भययुक्त आशंका का समावेश वर-वधू के दाम्पत्य जीवन में प्रवेश कर जाय तो परिणय सम्पुष्ट न होकर खण्डित हो जाता है। पार्थक्य, परित्याग, हिंसा, कलह, तर्क-वितर्क, वाद-विवाद, आघात-प्रतिघात आदि जीवन के सबसे

महत्त्वपूर्ण तथा श्रेष्ठतम सुख, हर्षोल्लास और आनन्द के स्रोत विवाह को ध्वस्त कर देते हैं। ज्योतिष विज्ञान की सर्वाधिक उपयोगी देन है जिसके सविधि उपयोग और प्रयोग से दाम्पत्य जीवन, प्रेम विश्वास, समर्पण तथा अटूट सम्बन्धों तथा आत्मीयता की भावना से अभिसिंचित हो उठता है। सभी नकारात्मक स्थितियाँ, परिस्थितियाँ तथा परस्पर विरोधी विचारों का शमन होता है और स्वार्थपरता में विरोधाभास कदापि उत्पन्न नहीं होता तथा परस्पर प्रीति के साथ वंश परम्परा का विस्तार-प्रसार होता है।

3.4 विवाह प्रकार

मुख्यतः विवाह आठ प्रकार के माने गये है, उनमे से भी प्रथम चार विवाह शुभ व इनमे भी परम दो को अत्यंतशुभ की श्रेणी में रखा गया है|
1. ब्रह्म विवाह, 2. दैव विवाह, 3. आर्ष विवाह, 4. प्राजापत्य विवाह, 5. गांधर्व विवाह, 6. आसुर विवाह, 7. राक्षस विवाह, 8. पैशाच विवाह

1. ब्रह्म विवाह

ब्रह्म विवाह को सबसे श्रेष्ठ और आदर्श विवाह माना गया है। इस प्रकार के विवाह में कन्या का विवाह उस वर से होता है जो विद्वान, चरित्रवान और योग्य हो। इस विवाह में कोई लेन-देन या दहेज नहीं होता। यह विवाह पूरी तरह से धार्मिक और सामाजिक नियमों के अंतर्गत होता है। इसमें कन्या का पिता वर को अपनी कन्या प्रदान करता है, यह कहते हुए कि वह धर्म का पालन करे और जीवन में उच्च आदर्शों को अपनाए।

2. दैव विवाह

दैव विवाह धार्मिकता का प्रतीक है। इस प्रकार के विवाह में कन्या को यज्ञ या धार्मिक अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण को पत्नी रूप में दान दिया जाता है। यह विवाह तब प्रचलित था जब यज्ञ और धार्मिक अनुष्ठानों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। हालांकि, इसे ब्रह्म विवाह से कमतर माना गया है।

3. आर्ष विवाह

आर्ष विवाह में वर पक्ष कन्या के पिता को गाय या अन्य उपहार देकर विवाह करता है। यह विवाह ऋषियों और मुनियों द्वारा स्वीकार किया गया था, क्योंकि इसमें दहेज की अवधारणा नहीं थी, बल्कि

गाय जैसे उपयोगी वस्त्र का आदान-प्रदान होता था। इसे श्रेष्ठता में ब्रह्म और दैव विवाह से नीचे रखा गया है।

4. प्राजापत्य विवाह

यह विवाह समाज में पारिवारिक परम्परओं का पालन करते हुये किया जाता है|जिसमें कन्या की सहमती होती है |और विवाह का उद्देश्य जीवन के धर्म-अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति में सहयोग करना होता है| इस प्रकार के विवाह में पारिवारिक समरसता और परम्परा का विशेष महत्व होता है|

5. गांधर्व विवाह

गांधर्व विवाह को प्रेम विवाह कहा जा सकता है। इसमें वर और कन्या दोनों की आपसी सहमति से विवाह होता है। यह विवाह नियमों और परंपराओं से परे होता है और प्रेम को प्राथमिकता देता है। हालांकि, वैदिक काल में इसे समाज की दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं माना गया, लेकिन इसे मान्यता दी गई थी।

6. आसुर विवाह

इस प्रकार का विवाह तब होता है जब वर, कन्या के परिवार को धन देकर विवाह करता है। यह विवाह भौतिकता और लेनदेन पर आधारित है-, इसलिए इसे निम्न स्तर का माना गया है।

7. राक्षस विवाह

राक्षस विवाह में बल और सामर्थ्य का उपयोग होता है। यह तब होता है जब युद्ध में विजेता राजा या योद्धा पराजित पक्ष की कन्या का बलपूर्वक अपहरण करके उससे विवाह करता है। इसे धर्म और सामाजिक दृष्टि से अनुचित माना गया है।

8. पैशाच विवाह

पैशाच विवाह को सबसे अधम और अनैतिक विवाह माना गया है। इसमें वर कन्या को धोखे से, नशे की अवस्था में, या बलपूर्वक प्राप्त करता है। यह विवाह घोर पाप माना गया है और इसे समाज में कभी भी स्वीकार्यता नहीं मिली।

गुण-दोष विचार

१. ज्येष्ठा नक्षत्र में जन्म : वैवाहिक संत्रास की आशंका

ज्येष्ठ जातिका या ज्येष्ठ मास में किया गया विवाह 'ज्येष्ठ द्वन्द्व' या द्विज्येष्ठ' विवाह कहलाता है। इस विवाह को मुहूर्तकारों ने मध्यम (सामान्य फल वाला-न अच्छा न बुरा) लिखा है। कुछ मुहूर्तकार तो इस 'ज्येष्ठ द्वन्द्व' विवाह को मान्यता नहीं देते, वे इसका निषेध 1 करते हैं। कुछ मुहूर्तकार का मत है कि कृतिका गत सूर्य के काल को छोड़कर शेष ज्येष्ठ मास में 'ज्येष्ठ द्वन्द्व' का विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है।

ज्येष्ठ जातक और ज्येष्ठ जातिका का परस्पर विवाह ज्येष्ठ मास में किया जाए तो उस विवाह को 'त्रिज्येष्ठ' विवाह कहा जाता है। त्रिज्येष्ठ विवाह की सभी मुहूर्तकारों ने निन्दा की है। कुछ दैवज्ञों का मत है कि कृतिकागत सूर्य के काल को छोड़कर ज्येष्ठ मास में ज्येष्ठ जातिका व ज्येष्ठ जातक का भी परस्पर विवाह किया जा सकता है। लेकिन जहाँ तक हो सके, त्रिज्येष्ठ' विवाह से बचना ही चाहिए ऐसा अधिकांश आचार्यों का मत है।

आद्यगर्भसुतकन्ययोर्द्वयो र्जन्ममासभतिथौ करग्रहः।
नोचितोऽथ विबुधैः प्रशस्यते चेद् द्वितीयजनुषोः सुतप्रदः ।।

ज्येष्ठ पुत्र या कन्या का जन्ममास, जन्मनक्षत्र, जन्मतिथि में विवाह उचित नहीं है। किन्तु यदि द्वितीय, तृतीय आदि, पुत्र या कन्या हो, तो दोष नहीं है।

ज्येष्ठद्वन्द्वं मध्यमं सम्प्रदिस्टं त्रिज्येष्ठं चेन्नैव युक्तं कदापि
केचित्सूर्य वह्निगं प्रोज्झय चाहुनै वान्योन्यं ज्येष्ठयोः स्याद्विवाहः।।

दो ज्येष्ठ मध्यम है, तीन ज्येष्ठ सर्वथा वर्जित हैं। किसी आचार्य के मत से कृतिका

नक्षत्र के सूर्य को छोड़कर शेष भाग ज्येष्ठ मारा का शुभ है। ज्येष्ठ पुत्र तथा ज्येष्ठ कल्या का परस्पर विवाह नहीं होता है।

२. ज्येष्ठ संतान का विवाह ज्येष्ठ में नहीं -

जन्मज्यैष्ठ्यमथोदरे निपतनं रेतोनिषेकक्रमा-
द्यद्वक्त्रं प्रथमं तु पश्यति पिता स ज्येष्ठ इत्युच्यते।
त्रिज्यैष्ठ्यं परिवर्जनीयमथ तज्ज्येष्ठं द्वयं मंगलं

रुग्मिण्यार्तवशोधनं त्वितरयोः स्पृश्यावगाहैः कृते ।।

(उत्तर कालामृत/कर्मकाण्ड/श्लोक-१८)

यमल जातक हो, तो उनमें बड़ा वह है जिसका बीज पहले पड़ा है, परन्तु इस बात का निर्णय इस प्रकार है कि जिसको पिता ने पहले देखा हो, वह ज्येष्ठ है। त्रिज्येष्ठ से बचना चाहिए अर्थात् ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र अथवा पुत्री का विवाह ज्येष्ठ के महीने में नहीं करना चाहिए। यह नियम उपनयन संस्कार के लिए भी है। इसी प्रकार 'ज्येष्ठ द्वय' को भी छोड़ना चाहिए अर्थात् सबसे बड़े पुत्र का विवाह अथवा अन्य शुभ संस्कार ज्येष्ठ के महीने में नहीं करना चाहिए। भाई-बहन के लिए किए गए दो शुभ कृत्यों में न्यूनतम दो मास का अन्तर होना चाहिए। अन्य कृत्य अस्पृश्यता न होने की दशा में स्थानान्तर किए जा सकते है।

विवाह-मुहूर्त

वर-कन्या के जन्मांगों के मिलान के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के दोषों का उल्लेख किया गया है। परन्तु प्रत्येक दोष का कोई न कोई परिहार अवश्य होता है। परिहार का अर्थ है दोष में अपेक्षाकृत न्यूनता, परन्तु दोष, गुण में परिवर्तन नहीं हो जाते अपितु उनकी तीव्रता, न्यूनता में रूपान्तरित हो जाती है। मेलापक सम्बन्धी कुछ बहु चर्चित परिहार अग्रांकित हैं -

१. कन्या की जन्मराशि विषम हो तथा कन्या की राशि से वर की राशि आठवीं हो तो शुभ स्थितियाँ प्रदर्शित होती है। उसी प्रकार यदि कन्या की राशि सम हो तथा वर की राशि कन्या की राशि से छठी हो तो भी स्थितियाँ शुभ होती हैं।

२. नाड़ीदोष कुछ नक्षत्रों में नहीं होता है वे नक्षत्र है- रोहिणी, रेवती, मृगशिरा, पुष्य, कृत्तिका, उ.भा., श्रवण, आर्द्रा, ज्येष्ठा।

३. वर और कन्या का जन्म उपर्युक्त नक्षत्रों में न हो परन्तु उनके जन्मनक्षत्र समान हों तथा उनमें चरणभेद और अंश भेद हो तो नाड़ीदोष का स्वतः ही परिहार हो जाता है। परन्तु यदि वर व कन्या के जन्मनक्षत्र समान हों तथा उनमें चरण भेद न हो तो अत्यधिक दोष होता है। यदि पाद भिन्न हो तो शुभ स्थिति होती है। इनके साथ यदि वर का चरण आगे हो तो शुभता में वृद्धि होती है। यदि वर व कन्या की राशि के स्वामी शुक्र, बृहस्पति व बुध हों तो नाड़ीदोष निरस्त हो जाता है।

४. यदि वर व कन्या के राशियों के स्वामियों या दोनों की चन्द्र नवांश राशि के स्वामियों में मैत्री हो तो सभी दोषों का परिहार हो जाता है।

इसके साथ ही विषकन्या, काकबन्ध्या तथा मंगलीदोष का समन्वय करने के उपरान्त कोई भी मांगलिक कार्य प्रतिपादित किया जाना चाहिए।

पक्ष व तिथि शुद्धि-

हमारे दिव्य ऋषि-मनीषियों ने कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष में से शुक्ल पक्ष को समस्त कार्यों हेतु शुभ कहा है। कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि तक, मतान्तर से दशमी तक भी कार्य किये जा सकते हैं। तिथियों को ऋषियों ने विशेष महत्त्व नहीं दिया है। परन्तु रिक्ता तिथि को त्यागना चाहिए। तिथियों में भी चतुर्दशी, अमावस्या तथा शुक्त पक्ष की प्रतिप्रदा त्याज्य होती है।

कार्तिक मास का विशेष नियम-

आचार्यों ने कार्तिक मास की पूर्णिमा से पाँच दिन पहले व पीछे, विवाह में दोष नहीं बताया है अर्थात् तिथिवार, नक्षत्र तथा त्रिबल शुद्धि अविचारणीय होती है। इन तिथियों में बृहस्पति शुक्रास्त होने पर भी विवाह सम्पन्न हो सकता है। परन्तु ग्रहण सूतक तथा चन्द्रबल पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए और गोधूलि तथा गोधूलि व लग्न को प्राथमिकता देनी चाहिए।

विवाह-मासादि-

आचार्यों ने माघ, फाल्गुन, बैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ व मार्गीर्ष इन मासों को विवाह हेतु उपयुक्त बताया है। इसके अतिरिक्त आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि तक यदि कर्क संक्राति न हुई हो तो भी विवाह हो सकता है। पौष मास के उत्तरार्ध में यदि मकर संक्रान्ति हो गयी हो तो भी विवाह सम्भव है। अर्थात् विवाह मुहूर्त में मास, सौरस्थिति के आधार पर होता है। अतः मेष, वृष, मिथुन, वृश्चिक, मकर, कुम्भ संक्रान्ति मास विवाह हेतु उपयुक्त होते हैं।

वार-शुद्धि-

महर्षि वशिष्ठ ने सप्ताह के सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र दिवस को विवाह हेतु शुभ बताया है। रविवार और शनिवार को मध्यम तथा मंगलवार को विशेषकर त्यागना चाहिए, ऐसा कहा है।

नक्षत्र शुद्धि-

समस्त आचार्यों तथा दिव्य मनीषियों ने नक्षत्रों में रोहिणी, उ.भा., उ.षा., उ.फा., मूल, स्वाति, अश्विनी नक्षत्रों को उपयुक्त कहा है।

रोहिण्युत्तररेवत्यो मूलं स्वाती मृगौ मघा। अनुराधा च हस्तश्च विवाहे मंगलप्रदाः ।।
त्रिषु उत्तरादिषु ।।

अर्थात् उ.फा., उ.षा., उ.भा. से अगले दो-दो नक्षत्र भी विवाह में ग्राह्य हैं।

प्रचेतस ऋषि ने पू.फा. की विवाह में ग्राह्यता स्वीकार किया है तथा पुष्य नक्षत्र को सबसे प्रमुख बताया है। एक मत यह भी है कि ब्रह्मा जी का विवाह पुष्य नक्षत्र में हुआ था, तथा यही ब्रह्माजी शम्भु के विवाह के समय पार्वती पर मुग्ध हो गये थे, इस प्रकार यह शापित नक्षत्र है। पुष्य नक्षत्र में जो कार्य किया जाय वह बढ़ोत्तरी को प्राप्त होता है, इसलिए विवाह में यह वर्जित है।

सीताजी सम्पूर्ण जीवन वनवासादि दुःख भोगती रहीं, उनका विवाह पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में हुआ था। इस प्रकार पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र भी विवाह कार्य के लिए त्याज्य है।

एक अन्य मत से मघा को या केवल मघा व मूल के प्रथम चरण मात्र को त्याज्य माना है।

योग शुद्धि-

वैधृति में वैधव्य, व्याघात में व्याधि, शूल में घाव, व्यातिपात में वंश नाश, अतिगण्ड में विषपान व वज्र में मृत्यु होती है। विषकुम्भ में प्राण संशय, गण्ड में रोग, परिधि में पति हानि एवं हर्षण में शोक होता है। हर्षण रहित उक्त ९ योग का वर्जना भी कुछ विद्वानों के अनुसार स्वीकरणीय है।

करण शुद्धि-

विष्टी या भद्रा के सम्बन्ध में सभी विद्वानों ने सर्वसम्मत रूप से इसका पूर्णतया त्याग करने को कहा हैं। शुकनादि चार स्थिर करण भी त्याज्य है। इनका त्याग स्वयमेव हो जाता है, यदि कृष्ण चतुर्दशी, अमावस्या आदि तिथि को छोड़ दिया जाय।

विवाहे करणाः सर्वे शोभना विष्टिवर्जिताः।

अतः सम्भावित विवाह तिथि का निर्णय, तिथि, वार नक्षत्र व मासादि के योगों के आधार पर किया जाता है। तदुपरान्त जिस तिथि का निर्णय किया गया है, उस तिथि को भी विशेष दस दोषों का निराकरण एवं लग्न का निर्धारण करते हैं। वो दस दोष कोन-कोन से है, उनका अध्ययन आगे किया जा रहा है|

विवाह में विशेष १० दोष निम्नलिखित हैं-

१. लत्ता, २. पात, ३. युति, ४. वेध, ५. जामित्र, ६. वाण पंचक, ७. एकार्गल, ८. उपग्रह, ९. क्रान्तिसाम्य, १०. दग्धा तिथि का त्याग यथासंभव किया जाना चाहिए। यहाँ इसके अतिरिक्त वेध व क्रान्तिसाम्य का विचार करके इनका सर्वत्र त्याग ही किया जाना चाहिए।

१. लत्ता दोष-

इस दोष को लात दोष भी कहते हैं। बृहस्पति जिस नक्षत्र पर हो उससे आगे के छठे नक्षत्र पर सूर्य १२वें नक्षत्र पर, मंगल तीसरे नक्षत्र पर, शनि आठवें पर लात मारता है।

इसी प्रकार पूर्ण चन्द्र अपने नक्षत्र से पिछले २२वें नक्षत्र पर, राहु नौवें पर, बुध सातवें पर, शुक्र पाँचवें नक्षत्र पर लात मारता है। राहु के वक्री होने पर उसका पिछला नक्षत्र सदैव अगला ही समझना चाहिए। वैसे तो किसी भी ग्रह की लत्ता या लात अच्छी नहीं होती, किन्तु मतान्तर से सिर्फ पाप ग्रहों की लत्ता ही त्याग करने की बात कही गयी है। तात्पर्य इतना है कि विवाह नक्षत्र या. मुहूर्त निश्चय करने के लिए इन दोषों का विचार किया जाता है।

हम पंचांग देखते समय पाते हैं कि विवाह मुहूर्त या विवाह नक्षत्र के सामने कुछ खड़ी रेखाएँ लगी हुई हैं। वहाँ पर जो रेखा मुड़ी होती है वही दोष होता है ऐसा समझना चाहिए। यथा जिस दिन पंचांग में विवाह-मुहूर्त के सामने इस प्रकार रेखाएँ लगी है, यहाँ छठी रेखा मुड़ी है। अतः उस दिन छठा दोष या बुध पंचक दोष है।

उदाहरणार्थ अनुराधा नक्षत्र में विवाह है तो अनुराधा से आगे सातवें धनिष्ठा नक्षत्र में बुध, इसी प्रकार आगे २२वें नक्षत्र में पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र इत्यादि न पड़े तो लत्ता दोष नहीं होगा।

२. पात दोष-

पात दोष का त्याग प्रायः विवाहादि शुभ कार्यों में करना उचित होता है। इसका दूसरा नाम "चण्डीश चण्डायुध" भी है। इसका सम्बन्ध पंचाग में बताये गये साध्य, हर्षण, शूल, वैधृति , व्यतिपात व गण्ड योगों से है। इन योगों का जो अन्तसमय पंचांग में लिखा हो, उस समय जो नक्षत्र (चिन्न सक्षम या दिन नक्षत्र) होगा, वह पात दोष से दूषित होता है पात दोष का त्याग सिर्फ कौशल देश या कुरु जांगल प्रदेश (कुरुक्षेत्र, राजपूताना) में ही किया जाता है।

३. युति दोष-

युति अर्थात् योग/युति दोष उस समय होता है जब विवाह के समय चन्द्र नवर से पाप ग्रह युति करते हों तो युति दोष का निर्माण होता है। चन्द्रमा यदि अपनी राशि में हो या उच्च का हो तो विशेष प्रभाव नहीं होता है।

कुछ विद्वानों का मानना है कि किसी भी ग्रह की युति हो वह अच्छा नहीं होता है। युति का परिहार केवल चन्द्रमा के बलवान होने से ही होता है।

दारिद्र्यं रविणा कुजेन मरणं सौम्येन नष्टप्रजा ।
दौर्भाग्यं गुरुणां सितेन सहिते चन्द्रेण सापल्यकम ।।

शुभ ग्रह बुध व गुरु दोष कारक नहीं माने जाते हैं। चन्द्रमा और अन्य ग्रह का भी नक्षत्र एक ही हों पर दोनों राशि अलग हों तो भी युति दोष माना जायेगा। युति दोष का विचार बंगाल में किया जाता है।

४. वेध दोष-

वेध दोष का त्याग सर्वत्र किया जाता है। पंचशलाका व सप्तशलाका वेध दो प्रकार से किया जाता है। इस बात को इस प्रकार से समझा जाता है कि यदि सीधी पाँच आड़ी रेखाओं से वेध चक्र बनता है तो पंचशलाका और सात रेखाएँ सीधी व सात आड़ी खींचे तो सप्तशलाका चक्र बनेगा। पंचशलाका वेध का विचार विवाह, वधू प्रवेश, वरण आदि में किया जाता है। इसके अतिरिक्त कार्यों में सप्तशलाका वेध का विचार करना चाहिए।

वधू प्रवेशने दाने वरणे पाणिपीडने।
धः पंचशलाकाख्योऽन्यत्र सप्तशलाककः।।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि नक्षत्रों का वेध होता है यदि वे एक ही रेखा पर पड़ते हों। विवाह नक्षत्र का जिसके साथ वेध हो, उस नक्षत्र में यदि कोई ग्रह स्थित हो तो वेध माना जायेगा।

यामित्र दोष विचार -

लग्नाचन्द्रान्मदनभवनगे खेटे न स्यादिह परिणयनम् ।
किं वा बाणाभुगमितलवगे यामित्रं स्यादशुभकरमिदम् ।।

लग्न या चन्द्रमा से सप्तम स्थान में कोई ग्रह हो तो यामित्र दोष होता है। यदि लग्नगत नवमांश या चन्द्रगत नवमांश से ५५ वें नवमांश में ग्रह हो अर्थात् लग्न ग्रह का अन्तर ६ राशि हो तो पूर्ण यामित्र दोष होता है, यह विवाह में अशुभप्रद होता है। साधारण यामित्र कम दोष देनेवाला और पूर्ण यामित्र अधिक दोष देने वाला होता है, एवं शुभग्रह कृत यामित्र स्वल्पदोषप्रद और पापग्रह कृत अधिक दोषप्रद होता है।

बाण दोष विचार -

रसगुण शशिनागाब्ध्याढयसंक्रान्तियातां - शकमिति - रथतष्टाकैर्यदा पञ्चशेषः।
रूगनल नृपचौरा मृत्यु संज्ञश्च बाणो नवहृतशरशेषे शेषकैक्ये सशल्यः।।

तात्कालिक सूर्य के भुक्तांशों को ५ स्थान में रखकर क्रम से ६,३,१,८,४ जोड़कर सब में ९ के भाग देने से प्रथम स्थान में ५ शेष तचे तो रोगबाण, द्वितीय स्थान में अग्नि, तृतीय स्थान में राज, चतुर्थ स्थान में चोर और पंचम स्थान में मृत्युबाण होता है।

विशेष - सूर्य के गतांशा के अनुसार भी बाणों का निर्धारण किया जाता है।
जैसे- १,८,१७,२६ इन अंशों में सूर्य हो तो रोगबाण होता है।
२,११,२०२९ इन अंशों में सूर्य रहे तो अग्नि बाण होता है।
४,१३,२२ इन अंशों पर सूर्य हो तो राज बाण जानना चाहिए।
६,१५,२४ इन अंशों पर सूर्य हो तो चौर बाण होता है।
१,१०,१९,२८ इन अंशों में सूर्य हो तो मृत्युबाण समझना चाहिए।

एकार्गल दोष दोष विचार –

व्याघात गण्ड व्यतिपात पूर्वे शूलान्त्यवचे पारिघाति गण्डे।
एकार्गलाख्यो ह्यभिजित समेतो दोषः शशी चेद् विषमर्क्षगोऽर्कात् ।।

व्याघात, गण्ड, व्यतिपात, वज्र, परिघ, अतिगण्ड इन योगों में कोई योग हो उस दिन सूर्याश्रित नक्षत्र से चन्द्राश्रित नक्षत्र की संख्या विषम हो तो एकार्गल दोष होता है यहाँ नक्षत्रों की गणना अभिजित् समेत होती है।

उपग्रह दोष विचार

शराष्टदिक् शक्रनगातिधृत्या स्तिथिधृतिश्च प्रकृतेश्च पञ्च ।
उपग्रहाः सूर्यभतोऽब्जताराः शुभा न देशे कुरूवह्निकानाम् ।।

यदि सूर्याश्रित नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गणना करने से

५,८,१०,१४,७,१९,१५,१८,२१,२२,२३, २४, २५ इनमें से कोई संख्या हो तो उपग्रह दोष होता है या कहलाता है। यह कुरू और वाह्लिक देश में शुभ नहीं होता है।

९. क्रान्तिसाम्य दोष

इस दोष को 'महापात दोष' भी कहते हैं। सूर्य-चन्द्रमा की क्रान्ति समान होने पर क्रान्तिसाम्य दोष होता है। शुभ कार्यों में इस दोष की बड़ी निन्दा की गयी है। इसमें विवाह करना सर्वत्र ही वर्जित है। इस दोष के होने पर यहाँ तक कहा गया है कि क्रान्तिसाम्य दोष में विवाह करने पर पति-पत्नी दोनों का ही निधन हो जाता है। गणित के पातोऽध्याय के अनुसार इसका विचार किया जाना चाहिए।

शस्त्राहतोऽग्निदग्धो वा नागदष्टोऽपि जीवति।
क्रान्तिसाम्यकृतोद्वाहो न जीवति कदाचन ।।

सिंह व मेष, वृष व मकर, तुला व कुंभ, मिथुन व धनु, कर्क व वृश्चिक, कन्या व मीन राशि युगलों में सूर्य व चन्द्रमा रहें तभी इसकी संभावना होती है।

व्यतीपात योग -

जब सायन सूर्य - चन्द्रमा का योग ६ राशि के समान होता है अर्थात् १+५,२+४,४ + २,५ + १, तो दोनों के भिन्न अयन और एक गोल होते हैं तथा दोनों के भुजांश तुल्य होने से क्रान्ति भी तुल्य होती है इसलिए इसे व्यतिपात नाम का महापात कहते हैं।

दग्ध तिथि विचार -

चापान्त्यगे गो घटगे पतङ्गे कर्काजगे स्त्रीमिथुने स्थिते च ।
सिंहालिगे नक्रघटे समाः स्युस्तिथ्यो द्वितीया प्रमुखाश्च दग्धा ।।

सूर्य यदि धुनु या मीन में हो तो द्वितीय, वृष, कुम्भ में हो तो चतुर्थी, कर्क मेष में हो तो षष्ठी, मिथुन कन्या में हो तो अष्टमी, सिंह वृश्चिक में हो तो दशमी और मकर या तुला में हो तो, द्वादशी तिथि दग्ध होती है यह भी विवाहादि शुभ कार्यों में वर्जित है।

लता पात आदि दस दोष निवारण के बिना 'विवाह संस्कार' अहित कारक हो जाता है। विवाह में मुख्य रूप से लता, पात, युति, जामित्र, बाण, एकार्गल, उपग्रह, क्रान्तिसाम्य एवं दग्धा तिथि इन दस दोषों का विचार किया जाता है। इनमें से पापग्रह कृत युति, वेध, मृत्युबाण एवं क्रान्तिसाम्य अपरिहार्य होने से नहीं माने गये हैं।

विवाह में लग्न शुद्धि

वर-कन्या के विवाह के लिए जो सबसे प्रमुख या जिसको सबसे अधिक प्रधानता दी जानी चाहिए वह

है मुहूर्त काल के लग्न की। विवाहादि जैसे मांगलिक कार्य के लिए लग्न और नवांश की शुद्धि प्रमुखतया विचारणीय विषय होना चाहिए।

त्याज्य या वर्जित लग्न

वर्जित लग्न का विचार वर-कन्या की क्रमशः जन्मराशि व जन्मलग्न से करना उपयुक्त होता है। इसी तरह यदि वर या कन्या किसी का भी जन्मलग्न से अष्टमेश यदि विवाह लग्न में स्थित हो तो उस लग्न में विवाह नहीं करना चाहिए। वर-कन्या की जन्मराशि या जन्मलग्न से अष्टम राशि का लग्न व नवांश यदि बहुत हद तक उपयुक्त भी हो तो
भी त्याग करना उचित होता है।

लग्न भंग योग

किसी भी ग्रह का विवाह लग्न से, लग्न में पापयुक्त या क्षीण चन्द्र तथा अन्य कोई भी पापग्रह अथवा बारहवें शनि, दसवें मंगल, तीसरे शुक्र ग्रह का होना शुभ नहीं होते हैं। ऐसी भी मान्यता है कि सप्तम या अष्टम स्थान ग्रह रहित होने चाहिए या इस बात को इस प्रकार से कह सकते हैं कि कोई भी ग्रह प्रशस्त नहीं माना जाता यदि विवाह लग्न से सप्तम स्थान में कोई भी ग्रह हो। इसी प्रकार लग्नेश, चन्द्र तथा शुक्र षष्ठ में तथा चन्द्र लग्नेश शुभ ग्रह और मंगल आठवें स्थान में होने पर विवाह-लग्न नहीं बनेगी।

कर्तरी-दोष

कर्त्तरी दोष लग्न की शुभता में कमी करता है। यदि लग्न के दोनों ओर पापग्रह हों तब कर्त्तरी दोष का निर्माण होता है तथा यदि लग्न के एक ओर शुभ ग्रह तथा दूसरी ओर अशुभ ग्रह हो तो मध्य कत्त्तरी दोष होता है। इसका भी त्याग करना उचित होता है। ठीक इसी प्रकार कर्तरी दोष का विचार चन्द्रमा से भी करना चाहिए। विवाह लग्न से द्वितीय में वक्री पापी ग्रह तथा द्वादश स्थान।

कर्त्तरीभंग-योग

बृहस्पति बहुत बलशाली होकर लग्न या विवाह लग्न में हो तो पाप कर्त्तरी दोष का प्रभाव कम हो जाता है या कर्त्तरी योग उस स्थिति में भी भंग हो जाता है जब शेष ग्रह शुभ स्थानों में हों। कई अन्य दोषों का शमन उस स्थिति में भी हो जाता है जब केन्द्र (१,४,७,१०) में शुभ ग्रह बलवान हों।

अन्ध, बधिर व पंगु लग्न

मेष से कन्या तक अन्ध राशि, तुला से मकर तक बधिर व कुम्भ मीन राशियाँ पंगु होती है। ये लग्न किस प्रकार से दोष प्रद होते हैं, इसका विचार निम्न प्रकार से करते हैं।

१,२,५ लग्न दिन में व ३,४,६ रात्रि में अन्ध होते हैं। ७,८ दिन में तथा ९,१० रात में बधिर होते हैं। ११ दिन में व १२ रात में पंगु होती हैं। यदि ये राशियाँ अपने स्वामी या गुरु, बुध से दृष्ट्युक्त हों तो उक्त दोष नहीं लगता है। इसी प्रकार चर लग्न, उसमें भी विशेषतया चर नवांश सर्वथा वर्जित करना चाहिए। राशि का अन्तिम नवांश भी विवाह में वर्जित होना चाहिए। लेकिन उक्त स्थिति में वर्गोत्तम स्थिति होने पर लग्न शुभ माना जायेगा।

गोधूलि-लग्न विचार

ऐसी मान्यता है कि विवाह के लिए सबसे उत्तम लग्न गोधूलि लग्न ही होता है, यहाँ तक कि यदि विवाह का सम्पन्न होना कठिन लग रहा हो तो गोधूलि लग्न में विवाह करना उपयुक्त होता है। गोधूलि लग्न में सभी दोषों का शमन हो जाता है, सिवाय कुलिक क्रान्ति साम्य व १,६,८ भावगत चन्द्रमा इन पाँच स्थितियों का ही शमन नहीं हो पाता है।

कुलिक क्रान्तिसाम्यं च मूर्तीषष्ठाष्टमः शशी। पंच गोधूलिके त्याज्या अन्य दोषाः शुभावहाः।।

यहाँ पर यह उल्लेख करना अनिवार्य है कि गोधूलि लग्न का उपयोग उसी स्थिति में करना चाहिए जब शुद्ध लग्न न मिल पा रहा हो। शुद्ध लग्न उपलब्ध हो और उसका त्याग करके गोधूलि लग्न लेना विशेष उपयुक्त नहीं होता है। बृहस्पतिवार को सूर्यास्त के बाद का व शनिवार को सूर्यास्त से पहले का समय छोड़कर लग्न लेने से कुलिक दोष का भी बचाव हो जाता है।

गोधूलि काल ज्ञात करने के लिए सबसे उपयुक्त विधि यह है कि उस स्थान का पंचांग या स्थानीय पंचांग से सूर्यास्त काल देखकर उसमें १२ मिनट कम करने के पश्चात् जो समय आये, उसे लेकर सूर्यास्त से १२ मिनट आगे तक का कुल २४ मिनट का काल गोधूलि काल होता है। एक अन्य मत यह भी है कि सूर्यास्त से २४ मिनट पहले द २४ मिनट बाद तक का २ घड़ी या ४८ मिनट का कुल समय 'गोधूलि काल' मानते हैं।

विवाह मुहूर्त के दिन का विचार उस स्थिति में ही किया जाता है जब क्रान्ति दोष उपस्थित न हो। इस प्रकार गोधूलि लग्न में ग्रहस्थिति लग्न का विचार करना युक्ति संगत नहीं है, वह भी उस स्थिति में जब शुद्ध विवाह मुहूर्त का दिन निर्धारित कर लिया गया हो। अतः कहा जा सकता है कि चन्द्रमा मंगल इत्यादि कहीं भी रहे तो भी हानि नहीं होती है। जैसाकि बताया गया है कि विवाह लग्न में सप्तम स्थान में जब किसी भी ग्रह की स्थिति अच्छी नहीं मानी गयी है, उस स्थिति में भी गोधूलि लग्न को ग्राह्य माना गया है, जबकि सूर्य सदा ही गोधूलि काल में सातवें स्थान में रहेगा।

परिणामस्वरूप गोधूलि काल में ग्रहयोगादि का विचार करना उपयुक्त नहीं होगा। केशवार्क ने ऐसा ही कहा है।

गोधूलिकेऽपि विधुमष्टमषष्ठ मूर्ति यन्मोचयन्ति तदयं स्वरुवि प्रपंचः।
पंचांगशुद्धिमयमेव विवाहधिष्ण्ये, यस्मादिदं सततमस्तगते पतंगे।।

इस बात का समर्थन राजमार्त्तण्डादि ग्रन्थों में भी किया गया है। अतः विवाह मुहूर्त बनने पर गोधूलि काल का लग्न सदैव सबके लिए प्रशस्त कहा गया है।

3.5 सारांश:

इस इकाई के माध्यम से आप यह जान सके होंगे की सनातन परम्परा में विवाह का क्या महत्व है|सनातन धर्म अपनी मान्यताओं के लिए जाना जाता है। यहां पूजापाठ-, वेद, ग्रंथ आदि को बेहद महत्वपूर्ण माना गया है। वेदों में विवाह सहित जीवन के विभिन्न पहलुओं के बारे में बताया गया है। वेदों के अनुसार, विवाह किसी भी व्यक्ति के जीवन में संपन्न होने वाले महत्वपूर्ण संस्कारों में से एक है। इसमें ज्योतिष विज्ञान की सर्वाधिक उपयोगी भूमिका है। पूर्णतः अपरिचित वर-वधू जब दाम्पत्य के सोपान पर पहला पद रखते हैं, तभी उन्हें एक-दूसरे के स्वभाव, व्यवहार का आभास होता है| शादी सिर्फ सन्तान प्राप्ति के लिए नहीं होती है। विवाह को सनातन परम्परा में मुख्यतः विवाह आठ प्रकार के माने गये है, उनमे से भी प्रथम चार विवाह शुभ व इनमे भी परम दो को अत्यंतशुभ की श्रेणी में रखा गया है|

1. ब्रह्म विवाह, 2. दैव विवाह, 3. आर्ष विवाह, 4. प्राजापत्य विवाह, 5. गांधर्व विवाह, 6. आसुर विवाह, 7. राक्षस विवाह, 8. पैशाच विवाह| ब्रह्म विवाह को सबसे श्रेष्ठ और आदर्श विवाह माना गया है। इस प्रकार के विवाह में कन्या का विवाह उस वर से होता है जो विद्वान, चरित्रवान और योग्य हो। दैव विवाह धार्मिकता का प्रतीक है। इस प्रकार के विवाह में कन्या को यज्ञ या धार्मिक अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण को पत्नी रूप में दान दिया जाता है। आर्ष विवाह में वर पक्ष कन्या के पिता को गाय या अन्य उपहार देकर विवाह करता है। यह विवाह ऋषियों और मुनियों द्वारा स्वीकार किया गया था, यह विवाह समाज में पारिवारिक परम्परओं का पालन करते हुये किया जाता है|जिसमें कन्या की सहमती होती है | गांधर्व विवाह को प्रेम विवाह कहा जा सकता है। इसमें वर और कन्या दोनों की आपसी सहमति से विवाह होता है। इस प्रकार का विवाह तब होता है जब वर, कन्या के परिवार को धन देकर विवाह करता है। राक्षस विवाह में बल और सामर्थ्य का उपयोग होता है। पैशाच विवाह को सबसे अधम और अनैतिक विवाह माना गया है।

अभ्यास प्रश्न-

विवाह कितने प्रकार के होते है|

क. चार ख. पांच ग. आठ घ. दश

अधम विवाह कौन सा है|

क. पैशाच ख. राक्षस ग.आशुर घ. गांधर्व

कन्या के पिता को गाय या अन्य उपहार दिया जाता है,उस विवाह का नाम है

क. ब्रह्म विवाह ख. आर्ष विवाह ग. देव विवाह घ.गांधर्व विवाह

'गोधूलि काल' का समय होता है|

क. 40 मिनट ख. 50 मिनट ग. 58मिनट घ. 48मिनट

किन अंशों में सूर्य रहे तो अग्नि बाण होता है।

क. २,११,२०२९ ख. ११,२०२९ ,२ ग. २०२९, २,११ घ. २९, २,११,२०

3.6 अभ्यासप्रश्नों का उत्तर

ग. क. ख. घ. क.

3.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

मुहूर्तचिंतामणी

मेलापक मीमांशा

मुहूर्त गणपति

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. वर्तमान समय के आधार पर विवाह के महत्व का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए|
2. विवाह के प्रकार और उसके गुणदोषों का वर्णन कीजिए|

इकाई – 4 अन्त्येष्टि संस्कार

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अन्त्येष्टि संस्कार
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक पाठ्यसामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-330 के तृतीय खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने षोडश संस्कार के अन्तर्गत विविध संस्कारों का अध्ययन कर लिया है। अब आप षोडश संस्कार में अंतिम संस्कार अन्त्येष्टि संस्कार के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

अन्त्येष्टि संस्कार को 'मृत्यु संस्कार' के रूप में भी जाना जाता है। मानव सृष्टि में

यह ध्रुव सत्य है कि जो जन्म लेता है उसकी एक दिन अवश्य मृत्यु हो जाती है। अत: मृत्यु शाश्वत सत्य है।

आइए इस इकाई में हम सभी अन्त्येष्टि संस्कार को समझने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि –

- अन्त्येष्टि क्या है।
- अन्त्येष्टि संस्कार कैसे किया जाता है।
- अन्त्येष्टि में आवश्यक तत्व कौन-कौन से होते हैं।
- अन्त्येष्टि का ज्ञान क्यों आवश्यक है।

4.3 अन्त्येष्टि संस्कार

मृत्यु (अन्त्येष्टि) एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। कभी कभी उपयुक्त पुरोहित या पंडित के अभाव में यह कर्मकाण्ड नहीं हो पाता है; जबकि यह अत्यन्त सीधा कर्मकाण्ड है। मृत्यु से लेकर पीपल घट स्थापन तक कि यह साधारण विधि यहाँ दे दी गयी है। थोड़ा सा भी पढ़ा लिखा आदमी इसे आसानी से कर सकता है।

पिण्डदान- मृत्यु स्थान से लेकर चिता के जल जाने के बाद तक कुल छः पिण्ड दान दिये जाते हैं। बिना घबड़ाये सुस्थिर चित्त से पिण्डदान कर्म करना चाहिए।

जौ के आटे में घी, तिल मिला कर छः पिण्ड बनायें। दायें हाथ से ही इसे बनाते हैं- गोला, चिकना। जौ के आटे के अभाव में चावल का आटा लेना चाहिए। थोड़ा-सा आटा बचाये रखते हैं। यह सबसे अंत में श्मशान देवों को दिया जाता है। इसे अर्थी की दायीं ओर दक्षिण मुख बैङ्ग कर बनाते हैं। पिण्ड में छिद्र नहीं होना चाहिए।

१. मृत्युस्थान, २. द्वारस्थान, ३. चौराहा स्थान, ४. विश्रामस्थान, ५. काष्ठचयन (चिता पर), और ६.

अस्थि संचयन (चिता जल जाने के बाद) श्मशान में, एक एक पिण्डदान किया जाता है-

मृतस्थाने तथा द्वारे चत्वरे ताक्षर्यकारणात्।
विश्रामे काष्ठचयने तथा संचयने च षट्।।

शवनामक पहला पिण्ड

जनेऊ को दायें कंधे पर रख कर दायें हाथ में कुश, जल, तिल लेकर संकल्प लेते हैं- अद्य अमुक गोत्र: अमुक शर्मा/वर्मा/गुप्त/दासोऽहम् अमुक गोत्रस्य / गोत्रायाः अमुक प्रेतस्य/प्रेताया: प्रेतत्वनिवृत्तिपूर्वकं भूम्यादिदेवतातुष्ट्यर्थं मृतिस्थाने शवनामकं पिण्डदानं करिष्ये। (मैं अमुक गोत्र का अपने पिता, अपनी माता या सम्बन्धी का प्रेतत्वनिवृत्ति कामना से भूमिदेवता की तुष्टि हेतु मृत्यु स्थान पर शवनामक पिण्डदान कर रहा हूँ।) अंगूठा तर्जनी के बीच से इसे पृथ्वी पर गिरायें (इसे पितृतीर्थ कहते हैं)। संकल्प करने के बाद तीन कुश भूमि पर स्थापित करें एवं पिण्ड, जल, तिल, चन्दन, सफेद फूल लेकर कहें- अद्य अमुक.......गोत्र/गोत्रे, अमुक प्रेत/प्रेते मृतिस्थाने शवनामक एष पिण्डः ते मया दीयते, तवोपतिष्ठताम्। (स्त्री होने पर गोत्रे एवं प्रेते कहा जाता है)। पिण्ड को नीचे कुशा पर रखें। पुनः इसे कुशा सहित उठाकर अर्थी पर रख दें। प्रार्थना करें- अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः । अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव ।।

पान्थ नामक दूसरा पिण्ड

अर्थी को दरवाजे पर रखें। अपसव्य हो कर दक्षिण मुख दायें हाथ में त्रिकुश, जल, तिल, लेकर अर्थी की दाहिनी ओर बैठ कर संकल्प बोलें- अद्य अमुकगोत्रः/. .अमुक शर्मा/वर्मा/गुप्त/दासोऽहम् अमुक गोत्रस्य/गोत्रायाः प्रेतस्य/प्रेतायाः प्रेतत्वनिवृत्तिपूर्वकं द्वारस्थाने पान्थनामकं पिण्डदानं करिष्ये।प्रेत/प्रेते द्वारस्थाने जल भूमि पर पितृतीर्थसे छोड़ें। हाथ में पिण्ड, कुश, जल, तिल लें- अद्य-गोत्र/गोत्रे....पान्थ नामक एष पिण्डः ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम्। तीन कुश के ऊपर पितृतीर्थ से पिण्डदान कर प्रार्थना करें – **अनादिनिधनो देव: शंखचक्रगदाधर:। अक्षय्य: पुण्डरीकाक्ष: प्रेतमोक्षप्रदोभव।।**

खेचर नामक तीसरा पिण्ड -

'राम नाम सत्य है' या **'हरि बोल'** कहते हुए शव यात्रा आरम्भ करें। चौराहा आने पर अर्थी को भूमि पर उत्तरमुख रखें। दक्षिणमुख अपसव्य होकर त्रिकुश, जल, तिल लेकर संकल्प करें- अद्य अमुक गोत्र शर्मा/ वर्मा/गुप्त / दासोऽहम् अमुक गोत्रस्य/गोत्रायाः अमुक प्रेतस्य/प्रेतायाः प्रेतत्वनिवृत्तिपूर्वकं चतुष्पथे खेचरनामकं पिण्डदानं करिष्ये। जल भूमि पर गिरा दें और कुश भूमि पर रखें। पुनः पिण्ड लेकर बोलें-

अद्य अमुक गोत्र/गोत्रे अमुक प्रेत/ प्रेते चतुष्पथे खेचरनामक एष पिण्डः ते मया दीयते, तवोपतिष्ठताम्। तीन कुश के ऊपर पितृतीर्थ से पिण्ड रखें। पिण्ड को अर्थी पर रख दें और सव्य हो कर प्रार्थना करें –

अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः। अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव।

भूत नामक चौथा पिण्ड

विश्राम स्थान पर पहुँच कर अर्थी को भूमि पर उत्तर मुख रखें। दक्षिणमुख, अपसव्य, अर्थी के सिर के पास दायें बैठ कर संकल्प करें- (त्रिकुश, जल, तिल, दायें हाथ में रहे)- अद्य अमुक गोत्रः शर्मा/वर्मा/गुप्त/ दासोऽहम् अमुक गोत्रस्य/गोत्राया; अमुक प्रेतस्य/प्रेतायाः प्रेतत्वनिवृत्तिपूर्वकं विश्रामस्थाने भूतनामकं पिण्डदानं करिष्ये। जल भूमि पर गिरा दें। हाथ में पिण्ड लेकर बोलें- अद्य अमुक गोत्र/गोत्रे अमुक प्रेत/ प्रेते विश्रामस्थाने भूतनामक एषपिण्डः ते मया दीयते, तवोपतिष्ठताम्।। कुश के ऊपर पितृतीर्थ से पिण्ड रखें। पिण्ड को अर्थी पर रख दें और सव्य होकर प्रार्थना करें-

अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः । अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव।।

साधक नामक पाँचवा पिण्ड

श्मशान में अर्थी सहित शव को स्नान कराकर साफ सुथरी भूमि पर रखा जाता है। चार हाथ की लम्बी चिता उत्तर-दक्षिण की बनती है। चिता पर शव को उठाकर उत्तर सिर रखें। मुख पर घृत, कर्पूर आदि रखें। ओढ़नी को उतार कर श्मशानपति को दे दें। कफन नहीं उतारा जाता। नग्न दाह वर्जित है। चिता के ऊपर चन्दन, बेल, तुलसी, शमी, गूलर, आम आदि की लकड़ी रखें। सिर की दाहिनी ओर बैठ कर दक्षिण मुख अपसव्य संकल्प करें- अद्य अमुक गोत्रः शर्मा/वर्मा/ गुप्त / दासोऽहम् अमुक गोत्रस्य/गोत्रायाः प्रेतस्य/ प्रेतायाः प्रेतत्वनिवृत्तिपूर्वकं चितायां शवहस्ते साधकनामकं पिण्डदानं करिष्ये। जल, तिल भूमि पर गिरा दें। भूमि पर तीन कुशा रख कर पिण्डदान का संकल्प करें- अद्य अमुक गोत्र/गोत्रे अमुक प्रेत/प्रेते चितायां साधकनाम एष पिण्डः ते मया दीयते, तवोपतिष्ठताम्। पितृतीर्थ से कुश पर पिण्ड रखें। चिता पर स्थित शव के हाथ पर पिण्ड को उठा कर रख दें। सव्य होकर प्रार्थना करें- अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः। अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव।।

अग्निपूजन

चिता की अग्नि को क्रव्याद या क्रव्य कहते हैं। 'क्रव्यादनामाग्निं प्रतिष्ठापयामि' कहते हुए अग्नि के

ऊपर गंधाक्षतपुष्प छोड़ें। अपसव्य होकर चिता पर जल छिड़कें। सरपत आदि पर अग्नि को रखकर चिता की तीन या एक प्रदक्षिणा करें। 'असौ स्वर्गाय लोकाय' बोलते हुए सिर की ओर चिता में अग्नि लगायें।

कपालक्रिया

चिता जब आधा से अधिक जल जाए तो बांस से सिर पर चोट मारनी चाहिए। इसे कपाल क्रिया कहते हैं। पुन: सिर पर घृत डालें। एक एक बित्ते की सात लकड़ियों को लेकर चिता की परिक्रमा करते हुए एक एक बार में डालें। अन्त में शव का थोड़ा सा भाग लकड़ी से पकड़ कर जल में शांत करना चाहिए। पूरा शव नहीं जलाया जाता है। थोड़ा सा, कपोत (कबूतर) के बराबर मांस को जल में शांत करना आवश्यक होता है।

अस्थिसञ्चयन नामक छठा पिण्ड

चिता शान्त होने पर अपसव्य दक्षिणमुख होकर त्रिकुश, तिल, जल लेकर संकल्प करें- अद्य अमुक गोत्रः शर्मा/ वर्मा/ गुप्त / दासोऽहम् अमुक गोत्रस्य / गोत्रायाः प्रेतस्य / प्रेतायाः अस्थिसञ्चयननिमित्तकं पिण्डदानं करिष्ये। जल को भूमि पर पितृतीर्थ से छोड़ें। भूमि पर कुशा को दक्षिणाग्र रख कर हाथ में त्रकुश, तिल,जल, पिण्ड लेकर संकल्प करें- अद्य अमुक गोत्र/गोत्रे अमुक प्रेत/प्रेते अस्थिसंचयन निमित्तक एष पिण्डः ते मया दीयते, तवोपतिष्ठताम् । पितृतीर्थ से कुश पर पिण्ड रख दें। इस पिण्ड को उठा कर नदी या जल में डाल दें। सव्य होकर प्रार्थना करें-

अनादि निधनो देवः शंखचक्रगदाधरः। अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव।।

इस प्रकार छः पिण्ड दान पूर्ण होते हैं और शवदाह संस्कार पूर्ण होता है। आरम्भ में जो थोड़ा-सा जौ का आटा बचाया गया था उसे हाथ में लेकर श्मशान में रहने वाले सूक्ष्म आत्माओं और देवों को दोने में रख कर दिया जाता है, दीप जला देते हैं और मंत्र पढ़ते हैं- **श्मशानवासिभ्यो देवेभ्यो नमः, सर्वे स्वभागं सदीपं बलिं गृह्णन्तु।**

अस्थि संचयन -

पलाश की दो लकड़ियों से हड्डियों को चुनते हैं। सर्वप्रथम सिर की हड्डियों को कनिष्ठा उँगली से चुनें। अन्त में पैर की हड्डियों को चुनें। कुशा या रेशम के वस्त्र पर इन्हें रखें। गाय के दूध से इन्हें तर कर दें। इन पर स्वर्ण, मधु, पंचगव्य, घी, तिल डालते हैं। इन हड्डियों को हड़िया में रख कर दक्षिण दिशा की ओर देखते हुए बोलें- **नमोऽस्तु धर्माय।** पुनः जल में प्रवेश कर पात्र को जल में डाल दें और बोलें- **स मे प्रीतो भवतु।** जल से बाहर आकर सूर्य दर्शन करें और ब्राह्मणों को दान करें। काशी में हड्डियों

को तत्काल गंगा में प्रवाहित करने की परंपरा है। यहाँ अलग से अस्थिसञ्चयन नहीं किया जाता है। कहीं कहीं हड्डियों को गाड़ने की परंपरा है। जहाँ गाड़ने की परंपरा है वहाँ गोघृत से हड्डियों को तर कर कुशा के ऊपर हल्दी से रंगा वस्त्र डाल कर उस पर हड्डियों को रख कर मिट्टी से ढंक दिया जाता है।

घड़ा फोड़ना

अस्थियों को विसर्जित कर चिता पर घड़े का जल डाल कर उसे शांत किया जाता है। दाह कर्त्ता के कंधे पर जल भरा घड़ा रखा जाता है जिसे वह पीछे की ओर गिरा देता है और कहता है- 'एवं कदापि माऽभूत्' (ऐसा कभी न हो)। दूसरे घाट पर जाकर मौन स्नान किया जाता है। हाथ से पानी को बायीं ओर हटाते हुए स्नान करते हैं।

तिलाञ्जलि

स्नान करने के पश्चात् दक्षिणमुख अपसव्य हो त्रिकुश, जल, तिल लेकर संकल्प बोलते हुए पितृतीर्थ से तिलाञ्जलि दी जाती है- अद्य अमुक गोत्र/गोत्रे अमुक प्रेत/प्रेते चितादाहजनिततापतृषा उपशमनाय एष तिलतोयाञ्जलिः ते मया दीयते, तवोपतिष्ठताम्।। इसके बाद दाह कर्ता कपड़ा बदल ले और लंगोटी, कौपीन एवं धोती शरीर पर डाले। शवदाह करके रास्तें में मधुर खाने की परंपरा है।

गृहद्वार कृत्य-

घर के दरवाजे पर आकर नीम की पत्तियाँ चबायें। घर की महिलायें या नाई पत्तियों को देता है। मिर्च दाँत से काटें। अग्नि का स्पर्श करें। पत्थर पर पैर रखकर घर में प्रवेश करें। उस दिन घर में भोजन नहीं बनता है। पड़ोसी, सम्बन्धी या दुकान से मंगा कर भोजन करें। दाहकर्त्ता को अलग सोना चाहिए। उसके भोजन का पात्र, लोटा, बच्छीं सब कुछ अलग रहता है। दाहकर्ता सब से अलग रहे। सूर्यास्त से पूर्व भोजन करे। पत्तल में भोजन करे। नमक न खाये। प्रात: दस दिन फलाहार ले। गोग्रास निकाले। कौआ के लिए भी भूमि पर भोजन रखे। पूरा परिवार सूतक में मांस न बनाये न खाये। साबुन तेल का प्रयोग न करे। प्रतिदिन स्नान कर बन्धु बान्धव सहित जलतिल दान दे।

बोध प्रश्न –

1. मृत्यु के पश्चात् मृत्यु स्थान से श्मशान तक कुल कितने पिण्ड दिए जाते है।
   क. 4 ख. 5 ग. 6 घ. 7
2. प्रथम पिण्ड का क्या नाम है?
   क. शव ख. पान्थ ग. खेचर घ. साधक
3. अस्थिंसंचयन नामक पिण्ड का कौन सा क्रम है।
   क. 5 ख. 6 ग. 7 घ. 4
4. शवयात्रा के आरम्भ में क्या बोला जाता है?
   क. राम नाम सत्य है ख. हरि बोल ग. दोनों घ. कोई नहीं
5. मानव जीवन का शाश्वत सत्य क्या है?
   क. सत्य ख. मृत्यु ग. जीवन घ. सृष्टि

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आपने जान लिया है कि मृत्यु (अन्त्येष्टि) एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। कभी कभी उपयुक्त पुरोहित या पंडित के अभाव में यह कर्मकाण्ड नहीं हो पाता है; जबकि यह अत्यन्त सीधा कर्मकाण्ड है। मृत्यु से लेकर पीपल घटस्थापन तक कि यह साधारण विधि यहाँ दे दी गयी है। थोड़ा सा भी पढ़ा लिखा आदमी इसे आसानी से कर सकता है।

पिण्डदान- मृत्यु स्थान से लेकर चिता के जल जाने के बाद तक कुल छः पिण्ड दान दिये जाते हैं। बिना घबड़ाये सुस्थिर चित्त से पिण्डदान कर्म करना चाहिए।

जौ के आटे में घी, तिल मिला कर छः पिण्ड बनायें। दायें हाथ से ही इसे बनाते हैं- गोला, चिकना। जौ के आटे के अभाव में चावल का आटा लेना चाहिए। थोड़ा-सा आटा बचाये रखते हैं। यह सबसे अंत में श्मशान देवों को दिया जाता है। इसे अर्थी की दायीं ओर दक्षिण मुख बैङ्ग कर बनाते हैं। पिण्ड में छिद्र नहीं होना चाहिए।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

अन्त्येष्टि – मृत्यु

घट – घड़ा

श्मशान – जहाँ शवदाह किया जाता है।

छिद्र – छेद

अस्थि संचयन – शवदाह के पश्चात् हड्डीयों का संचयन

दाह कर्ता – मुखाग्नि देने वाला

निमित्तक – निमित्त

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. क
3. ख
4. ग
5. ग

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

श्राद्धपद्धति

प्रेतमंजरी

हिन्दू संस्कार

षोडश संस्कार

अन्त्य कर्म प्रकाश

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

श्राद्धपद्धति

प्रेतमंजरी

हिन्दू संस्कार

षोडश संस्कार

अन्त्य कर्म प्रकाश

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्त्येष्टि संस्कार का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. अन्त्येष्टि के समय दिए जाने वाले पिण्ड दान का वर्णन करें।
3. कर्मकाण्ड में अन्त्येष्टि संस्कार का क्या महत्व है।